संक्षिप्त

गुरु प्रताप सूरज

सम्पादक

डा० जयभगवान गोयल

भाई संतोखसिंह कृत

गुरु प्रताप सूरज (संक्षिप्त)

(गुरुमुखी लिपि में रचित ब्रज भाषा का ५२००० छन्दों का महाकाव्य)

सम्पादक

डॉ० जयभगवान गोयल

रीडर, पंजाब विश्वविद्यालय स्नातकोत्तर प्रादेशिक केन्द्र, रोहतक

प्रकाशक

पंजाब यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन ब्यूरो, चण्डीगढ़

आमुख

पंजाब विश्वविद्यालय ने १६५१ में हिन्दी विभाग स्थापित करने का निर्णय लिया। तब से लेकर अब तक मुझे गुरुमुखी लिपि में हिन्दी की रचनाओं का पता चलता रहा है। इन ग्रन्थों का नाम तक साहित्य के इतिहासों में इसलिए नहीं लिया गया कि ये नागरी लिपि में उपलब्ध नहीं हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के हिन्दी-साहित्य के इतिहास में भी इनका उल्लेख नहीं हो सका। इसलिए हिन्दी-साहित्य के इतिहास मुझे अधूरे लगे। इन्हें पूरा करने के लिए शोधकों की आवश्यकता थी।

डॉ० जयभगवान गोयल को जब यह सुझाव दिया गया तो उन्होंने यह बीड़ा उठाने का निश्चय किया। भाई संतोखसिंह का 'गुरु प्रताप सूरज' इनके शोध का विषय बना। इस प्रबन्ध-काव्य की उपलब्धि तथा सीमा के बारे में मेरे लिए राय कायम करना अनाधिकार चेष्टा होगी। इतना कहना आवश्यक समझता हूँ कि हिन्दी साहित्य के भावी साहित्यकार डॉ० गोयल तथा अन्य शोधकों के प्रयासों से पूरा लाभ उठाएँगे, साहित्य के अधूरे इतिहास को पूरा करने की कोशिश करेंगे, और पंजाब की देन की उपेक्षा नहीं करेंगे।

पंजाब यूनिवर्सिटी के प्रकाशन विभाग ने इसे छापकर एक सही कदम उठाया है। मुझे आशा है कि इसके छपने के बाद इस दिशा में कदम और आगे बढ़ेंगे।

चण्डीगढ़
नवम्बर १७, १६६८

इन्द्रनाथ मदान
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग

क्रम

लोकनायक महाकवि भाई सन्तोखसिंह

ग्रब ग्रौर को ग्रास निरास भई,
कलगीधर बास कियो मन मांहि ।

—संतोखसिंह

भूमिका

हिन्दी के उत्तर-मध्यकालीन साहित्य में विलासपूर्ण श्रृङ्गारिक दरबारी वातावरण के प्रभावस्वरूप श्रृङ्गारिकता अथवा रसिकता की प्रधानता थी। वीरता का चित्रण भी प्रायः श्रृङ्गाराश्रित है। उसमें बृहत्तर सामाजिक चेतना का सर्वथा अभाव है। परन्तु उसी युग के पंजाब के साहित्य में भक्ति एवं वीरता की प्रवृत्तियाँ प्रमुख हैं और उसके माध्यम से एक प्राणवान् सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय आन्दोलन का अभ्युत्थान हुआ है।

पंजाब प्राचीनकाल से भारत का सिंहद्वार रहा है। उत्तर-पश्चिम से जो भी आक्रमणकारी भारत आये, वे पंजाब से होकर ही आगे बढ़ते थे। अरब, तुर्क और मुगल शताब्दियों तक पंजाब को झकझोरते रहे। गज़नवी, गौरी, चंगेज़खां, तैमूर, बाबर, नादिरशाह तथा अब्दाली के क्रूर एवं भीषण आक्रमणों का भार भी पहले पंजाब को सहना पड़ा और पंजाब की वीर-शक्ति ने इनका बराबर ज़ोरदार मुकाबला किया। स्थानेश्वर (थानेसर) के पराक्रमी राजा हर्षवर्धन के पश्चात् भारत से एक संगठित, सबल हिन्दू शक्ति का ह्रास हो गया था। यही कारण है कि ९वीं, १०वीं शती के बाद मुसलमान आक्रान्ता भारत की पुण्य भूमि को पद्दलित करते हुए निरन्तर आगे बढ़ते रहे। भारत का मध्यकालीन इतिहास इन संघर्षों और युद्धों का ही इतिहास है। १४वीं शती से १८वीं शती तक क्रमशः दास, खिलजी, तुगलक, सैय्यद, लोदी एवं मुगल वंशों ने भारत की शासन सत्ता को अपने अधीन रखा। इन सभी वंशों के शासकों की पराजित हिन्दू जनता के प्रति नीति एवं व्यवहार एक-सा था। भारतीय धर्म एवं संस्कृति को वे घृणा और द्वेष की दृष्टि से देखते थे तथा उसे विनष्ट करने के लिये सदा तत्पर रहते थे। हिन्दू जनता के प्रति उनकी दमन नीति उसी प्रकार चलती रही। परन्तु हिन्दुओं में भी एक अद्भुत जीवन्त शक्ति थी। वे हार कर भी हारते नहीं थे। ज्योंही यवन सेना एक प्रदेश को जीतकर दूसरी ओर अपना मुँह मोड़ती थी, वहां के हिन्दू शासक तुरन्त स्वतन्त्रता की घोषणा कर देते थे। यही कारण है कि मुसलमान शासकों को उनसे निरन्तर युद्ध करना पड़ता था।

मुगलकाल इस्लामी शासन का चरम उत्कर्ष काल था। अब तक पंजाब, हरयाणा तथा राजपूताने के हिन्दू शूरवीर यवन आक्रमणकारियों का डटकर प्रतिरोध करते रहे।

परन्तु मुगल साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् हिन्दू राजाओं ने उनके सम्मुख घुटने टेक दिये। 'आन पर मर मिटने वाले' बहुत से राजपूत भी पराजित हो जाने पर अपनी दुहिताओं से मुगल सम्राटों के रणिवासों को सुशोभित करके उनकी अनुकम्पा प्राप्त करने में ही गौरव का अनुभव करने लगे। राणा सांगा, महाराणा प्रताप आदि शूरवीरों के पश्चात् देश-भक्ति का दीपक उनमें बुझने-सा लग गया। औरंगज़ेब जैसे धर्म असहिष्णु, आततायी शासकों के आतंक और अत्याचारों से भारतीय जनता इतनी पीड़ित थी कि या तो उनको इस्लाम कबूल करना पड़ता था या उन्हें मृत्यु-दंड दिया जाता था, अथवा भारी जज़िया देकर ही वे अपने प्राण बचा सकते थे।

इस समय दो ही ऐसे राष्ट्रनायक थे, जिन्होंने यवनों के विरुद्ध स्वतन्त्रता की पताका बुलन्द की। एक थे दक्षिण की ढाल सिरजा शिवाजी और दूसरे गुरु गोविंदसिंह। पंजाब में मुसलमानों के नृशंस अत्याचारों के विरुद्ध विरोध की ज्वाला भीतर ही भीतर धधक रही थी। 'दशमगुरु' के नेतृत्व में उसने विद्रोह का रूप धारण कर लिया। हिन्दुओं की दीन हीन एवं अपमानित दशा तथा अपने पिता की नृशंस हत्या से क्षुब्ध होकर उन्होंने यह घोषणा करते हुए असत्य, अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध खड्ग को धारण किया—

चू कार अज़ हमह हीलते दरगुज़श्त
हलाल अस्त बुरदन ब शमशीर दस्त। (जफ़रनामा)

अर्थात् जब अन्य सभी साधन विफल हो जायें तो खड्ग को धारण करना सर्वथा उचित है।" राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक स्वातन्त्र्य भावना से प्रेरित होकर गुरु गोविन्दसिंह ने हिन्दुओं की सैनिक-शक्ति को संगठित करना प्रारम्भ किया और खालसा की स्थापना की। 'खालसा' की स्थापना पंजाब के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। इस पंथ के माध्यम से दशमगुरु ने पंजाब के जन-जीवन को एक नई दिशा प्रदान की। उसमें एक नई स्फूर्ति एवं गति उत्पन्न की और उसमें एक नई प्राणवान् शक्ति का संचार किया। सेवा और त्याग को जीवन का आदर्श मानने वाले सिक्ख अनुयायियों को साहस एवं वीरता का जीवन व्यतीत करने के लिये उत्साहित किया। प्रसिद्ध इतिहासकार डा० गोकुलचंद नारंग के शब्दों में गुरु गोविन्दसिंह ने साधारण कृषक को अद्भुत वीर बना दिया और उसमें अत्याचारी सिंह को उसकी माँद में ललकारने और पकड़ने की शक्ति भर दी।[१]

स्पष्ट है कि जिस समय मध्यभारत के हिन्दू राजा मुगलों से पराजय स्वीकार कर निरीह एवं शक्तिहीन होकर विलासिता का जीवन व्यतीत कर रहे थे, पंजाब में गुरु गोविन्दसिंह उनके विरुद्ध एक सशक्त सैनिक एवं सांस्कृतिक आन्दोलन का संचालन कर रहे थे। गुरु गोविन्दसिंह के पश्चात् उनके कार्य को बंदा वैरागी ने आगे बढ़ाया। इसके अनन्तर भी मुसलमानों द्वारा सिक्खों के दमन का कार्य भी तेज़ी से चलता रहा। १७००

१. *Transformation of Sikhism* : G. C. Narang, p. 262

से १७७० वि० का समय सिक्खों के लिये घोर संकट का समय था। बहादुरशाह (१७००), फरखसियर (१७१६), खान बहादुर (१७३५-४५), लखपतराय (१७६३) आदि ने समय समय पर सिक्खों के कत्लेआम का आदेश दिया। उनके केशों और सिर के लिये भारी पुरस्कार रखे गये। सिक्खों को आश्रय भी प्राणों के जोखम से दिया जा सकता था। मुसलमानी सेना सदा उनका पीछा करती रहती थी। परन्तु सिक्खमत इन सभी संकटों एवं आघातों के बावजूद जीवित रहा। अब तक सिक्ख शक्ति ने एक निश्चित सैनिक शक्ति का रूप धारण कर लिया था। अवसर पाकर वे यवनों पर आक्रमण भी करते रहते थे। बाद में मिसलों के रूप में उन्होंने अपनी सत्ता भी स्थापित की जिसने सशक्त एवं सुदृढ़ रूप रणजीतसिंह के समय में प्राप्त किया।

यहाँ हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि सिक्खों का यह सारा उपक्रम सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना से आन्दोलित था और जिस समय सिक्ख राज्यों की भी स्थापना हो गई, उस समय भी उन राजाओं की धर्म-भावना सदा जागरुक रही। इन राजदरबारों का वातावरण निश्चित रूप से हिन्दी भाषी प्रदेश के राजदरबारों के विलासी वातावरण से सर्वथा भिन्न था।

पंजाब के इन देशभक्त वीरों की धर्म-भावना, सांस्कृतिक चेतना एवं स्वातन्त्र्य-भावना की ही अभिव्यक्ति उस युग के सिक्ख साहित्य में हुई है।

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

भारत धर्म-प्रधान संस्कृति का देश है। इस संस्कृति की एक निजी, विशिष्ट चेतना है, जिससे हमारा वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन, नैतिक आदर्श, राजनैतिक विधान, कला कौशल आदि परिचालित रहा है। भारतीय संस्कृति एक विशाल वट वृक्ष के समान है जिसकी जड़ें बड़ी गहरी और मज़बूत हैं। कालक्रम से उससे अनेक मतमतान्तरों, पंथों, सम्प्रदायों, चिन्तन धाराओं अथवा साधना पद्धतियों की शाखायें, उपशाखायें उद्भूत हुईं और जितना इन शाखाओं ने विस्तार, विकास अथवा प्रसार प्राप्त किया, जड़ें उतनी ही गहरी होती गईं। कई बार ऐसा भी भ्रम हुआ कि वे शाखायें—जटायें पृथ्वीतल में इतनी दृढ़ता से जम गई हैं कि लगा, मानो कोई स्वतन्त्र वृक्ष है, परन्तु यह भ्रांति ही थी, क्योंकि मूल जड़ तो एक ही है—वही आर्य संस्कृति। वैष्णव, बौद्ध, जैन, शैव सभी उसके अंग प्रत्यंग हैं।

भारतीय संस्कृति ने समय-समय पर जो रूप धारण किये, उसका इतिहास बड़ा रोचक है। इन विभिन्न विचार-पद्धतियों में बहुधा संघर्ष भी हुआ, परन्तु साथ-साथ समन्वय एवं संतुलन के प्रयत्न भी चलते रहे। यही कारण है कि शताब्दियों तक रहने वाले बाह्य सांस्कृतिक आक्रमणों एवं आन्तरिक कलह के बावजूद वह प्राणवान् एवं शक्ति सम्पन्न है।

भारतीय धर्म-साधना का विकास मुख्यतः ज्ञान-प्रधान, कर्म-प्रधान तथा भाव-प्रधान, इन तीन पद्धतियों पर हुआ। इनमें संघर्ष भी हुआ और 'भगवद्गीता' में इनका समन्वय भी सामने आया। वैदिक-युग की साधना कर्म-प्रधान थी, उपनिषदों में ज्ञान को महत्त्व दिया गया, बौद्धों ने भी वैदिक-कर्मकांड का खण्डन करके सम्यक्-ज्ञान का प्रतिपादन किया। आगे चलकर भावना-प्रधान उपासना पद्धति का भी प्रचार हुआ। पौराणिक-युग में इसी साधना-पद्धति को अधिक प्रश्रय मिला, क्योंकि अपनी सरलता और सरसता के कारण जन-साधारण के लिये वह सुगम एवं ग्राह्य थी। इस भागवत-धर्म का बौद्ध-धर्म और जैन-धर्म से भी संघर्ष हुआ, (गया और बौद्ध गया; तथा काशी और सारनाथ आज भी इस संघर्ष की कहानी सुना रहे हैं) जिसका सामना करने के लिये इस धर्म के उन्नायकों ने ईश्वर के अवतारी रूप की कल्पना की तथा उसकी अनेक आकर्षक, लोकरंजनकारी एवं लोकरक्षक लीलाओं की उद्भावना की, जिसके आधार पर बहुत से पुराणों की रचना की गई। प्रचार को और अधिक जीवन्त बनाने के लिये बहुत से भव्य मन्दिरों का निर्माण किया गया जिनमें अत्यन्त सुन्दर एवं मोहक मूर्तियों की स्थापना की गई और पूजा-पाठ की भी सरल एवं सरस विधियों का प्रचलन किया गया।

सातवीं-आठवीं शती तक बौद्धमत अनेक शाखाओं-प्रशाखाओं के रूप में खण्डित एवं विकृत होकर अपना प्रभाव खो बैठा। शंकराचार्य का वैदिक-धर्म की ज्ञान-प्रधान पद्धति की पुनः प्रतिष्ठा द्वारा बौद्धमत के उन्मूलन का प्रयास बहुत सफल रहा। बौद्धमत ने महायान, हीनयान, वज्रयान, मंत्रयान आदि की अवस्थाओं को पार करके सहजयान की स्थिति को प्राप्त किया। कुछ सहजयानी सिद्धों ने मुद्रा सेवन एवं मदिरापान आदि सम्बन्धी अनेक कुत्सित साधनाओं द्वारा उसके स्वरूप को और भी विकृत कर दिया। इनके विरोध में नाथमत का प्रवर्त्तन हुआ, जिसमें सिद्धों की सहज साधना के साथ शिव की आराधना एवं हठ-योग के महत्त्व को स्वीकार किया गया। बौद्धमत के ह्रास के साथ ही भागवत-धर्म फिर से पल्लवित एवं विकसित होने लगा। वस्तुतः भारत का मध्यकालीन सांस्कृतिक इतिहास सिद्धों, नाथों, शैवों, शाक्तों, वैष्णवों, वेदान्तियों,—ज्ञान-मार्गियों, कर्म-काण्डियों आदि के द्वन्द्व का इतिहास है। इसी समय भारत के उत्तर-पश्चिम से यवन-शक्ति के साथ इस्लामी धर्म का एक ज़ोरदार हमला हुआ। यह आक्रमण धर्मान्ध शासकों द्वारा हुआ, जिन्होंने लोभ अथवा भय से धर्म-प्रचार आरम्भ किया। भारतीय-धर्म के उन्नायकों ने इससे टक्कर लेने के लिये एक संयुक्त, सशक्त एवं प्राणवान् मोर्चा खड़ा किया। इस्लाम-धर्म के आतंक की प्रतिक्रिया स्वरूप उसमें एक नई चेतना ने जन्म लिया और एक नई स्फूर्ति एवं उत्साह के साथ वे उसका मुकाबला करने के लिये कटिबद्ध होकर खड़े हो गये। इस कार्य में उनका नेतृत्व किया दक्षिण ने। दक्षिण में रामानुजाचार्य, निम्बार्क, मध्वाचार्य तथा विष्णुस्वामी आदि धर्म-प्रवर्त्तकों ने दर्शन की दृढ़ आधार-भूमि पर भक्ति के एक शक्तिशाली आन्दोलन का सूत्रपात किया। जिस समय यह आन्दोलन उत्तर भारत में पहुंचा, यहां हिन्दू धर्म विभिन्न मतमतान्तरों के पारस्परिक संघर्ष के कारण जर्जरित एवं शक्तिहीन हो रहा था, उधर मुसल-

धीरे-धीरे यह उत्साह मंद पड़ने लगा। मुगल दरबार का विलासपूर्ण वातावरण भक्ति की स्वच्छ धारा को भी दूषित करने लगा। कृष्ण-भक्ति की रसमय लीलाओं ने विहारलीला तथा छद्मलीला का शृङ्गारिक रूप धारण कर लिया। हिन्दी-भाषी प्रदेश के विलास-ग्रस्त हिन्दू राजदरबारों से भी इस प्रवृत्ति को प्रश्रय मिला। मंदिर वैभव और ऐश्वर्य के केन्द्र बन गये और नर्तकियों एवं वेश्याओं की विभिन्न कामोत्तेजक भाव-भंगिमाओं से युक्त नृत्यों की झंकार में भक्ति की सात्त्विकता लुप्त हो गई। राम की मर्यादित भक्ति भी रसिकता और विहारलीला का रूप धारण करने लगी। संतमत में गुरू-गद्दियाँ स्थापित हो गईं। जिन बाह्याचारों के विरोध में संतमत खड़ा हुआ था, वैसे ही बाह्य चिह्न तथा मिथ्या एवं पाखण्ड-पूर्ण आचरण उनकी विशिष्टता रह गए। उधर औरंगज़ेब का धार्मिक जिहाद पूरे जोरों पर था। उसने फिर से मंदिरों को गिरवाना तथा मूर्तियों का तुड़वाना शुरू कर दिया था। मथुरा, वृन्दावन, पुष्कर, काशी जैसे धर्म-स्थानों पर उसने हिन्दू मंदिरों को तुड़वा कर मसजिदों का निर्माण किया। जज़िया फिर से लगा दिया। इस समय इस क्षेत्र में हिन्दुओं के सांस्कृतिक आन्दोलन का नेतृत्व करने वाला कोई नहीं था। परन्तु पंजाब में अभी भी सिक्खों के 'दशम गुरु' इस आन्दोलन का संचालन कर रहे थे। अन्य संतों, भक्तों एवं धर्म उन्नायकों से उनमें एक अन्तर भी था। क्योंकि उन्होंने केवल धर्म-प्रचार द्वारा सांस्कृतिक आन्दोलन को दृढ़ ही नहीं किया वरन् यवन आततायियों के विरुद्ध खड्ग को भी धारण किया। हिन्दू राष्ट्र की रक्षार्थ जो कार्य शिवाजी एवं छत्रसाल कर रहे थे, उस दिशा में भी गुरु गोविन्दसिंह ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया और साथ-साथ सांस्कृतिक पुनरुत्थान का प्रयत्न भी करते रहे। पंजाब के लब्धप्रतिष्ठ इतिहासकार श्री कृपालसिंह नारंग के मतानुसार, 'जिस समय खालसा की स्थापना हुई, कोई ८०,००० सिक्ख आनन्दपुर में एकत्रित हुए थे।'[१] इससे उन लोगों की उद्दीप्त धर्म-भावना एवं साहस का अनुमान लगाया जा सकता है। गुरु गोविन्दसिंह के नेतृत्व में सोया पंजाब एक बार फिर जाग उठा और अपनी संस्कृति की रक्षार्थ वे कटिबद्ध होकर खड़े हो गये। गुरु गोविन्दसिंह तथा अन्य सिक्ख गुरुओं के इस सांस्कृतिक आन्दोलन ने पंजाब के जन-साधारण में एक प्राणवान् चेतना, शक्ति और साहस का संचार किया। इस युग की वीर-भावना, सांस्कृतिक चेतना एवं राष्ट्रीय-भावना की स्पष्ट अभिव्यक्ति 'दशम ग्रंथ' तथा 'गुरु शोभा' आदि ग्रंथों में हुई है। सिक्ख-गुरुओं के बाद भी यह सांस्कृतिक आन्दोलन तीव्र गति से आगे बढ़ता गया। सिक्खमत की प्राणवत्ता एवं जीवन्त शक्ति दिन प्रतिदिन बढ़ती ही गई। यद्यपि यहाँ भी अनेक सम्प्रदायों ने जन्म लिया, जिनमें से प्रमुख थे : उदासी, सेवापंथी, सहजधारी, निर्मले आदि। परन्तु इन सम्प्रदायों के अनुयायी सिक्ख साधकों ने भी उस आन्दोलन को क्षीण नहीं पड़ने दिया, वरन् उसे संशक्त और दृढ़ ही किया; जिसके प्रभावस्वरूप यहाँ ऐसा साहित्य प्रचुर परिमाण में लिखा गया, जिसमें उस युग के राजनैतिक एवं सांस्कृतिक संघर्ष का चित्रण हुआ है और उस संघर्ष में से उभरती हुई हिन्दू-शक्ति की वीर-भावना, तेजस्विता, स्वाभिमान, राष्ट्र-प्रेम एवं सांस्कृतिक-चेतना की भी

---

१. *History of the Punjab :* K.S.Narang, p. 154

अभिव्यक्ति हुई है। 'महिमा प्रकाश', 'गुरुबिलास', 'गुरुबिलास पातसाही ६', 'गुरु नानक विजय', 'गुरु नानक प्रकाश', 'साखी नानकशाह की' तथा 'गुरु प्रताप सूरज' ऐसी ही रचनायें हैं, जिनमें भारतीय संस्कृति के प्रमुख तत्त्वों का विशदता से प्रतिपादन किया गया है। भारत के अन्य भागों में भी इस समय कुछ वीर-काव्यों की रचना हुई, परन्तु उनका सम्बन्ध भारतीय सामूहिक राष्ट्रीय चेतना और सांस्कृतिक उत्थान से नहीं है, बल्कि उनका सम्बन्ध आश्रयदाता राजाओं अथवा सामन्तों की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा से है। वे 'चारण पद्धति' पर रचित वीरकाव्य हैं। जबकि पंजाब के उपरोक्त वीरकाव्य राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना से सम्पन्न हैं। वैसे भी उत्तर भारत के अन्य भागों में इस समय ऐसी सांस्कृतिक चेतना का अभाव था, इसलिये इस युग में वहाँ कोई भी ऐसी महत्त्वपूर्ण रचना नहीं लिखी गई जो इन भावनाओं से ओत-प्रोत हो। पंजाब को ही यह प्रतिष्ठा और गौरव प्राप्त है। पंजाब ने इस युग में देश का सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व किया और यहीं वह साहित्य लिखा गया जो भारतीय सांस्कृतिक सम्पन्नता और गौरव से युक्त है।

ललित कलाओं का स्वरूप और चमत्कार-प्रदर्शन

यह समय भारत के राजनैतिक इतिहास में मुगल साम्राज्य के चरम उत्कर्ष तथा उसकी अवनति, ह्रास एवं विनाश का युग है। संवत् १७०० में शाहजहां शासनारूढ़ हुआ। उस समय मुगल साम्राज्य ऐश्वर्य की दृष्टि से मालामाल था। भारत की कला अपने चरम उत्कर्ष पर थी। शाहजहां स्वयं कला तथा सौन्दर्य-प्रेमी शासक था। इसीलिए उसके शासन-काल में ललित कलाओं को पूरा प्रोत्साहन मिला, जिससे उनका खूब विकास हुआ। मयूर शासन और ताजमहल जैसी कलाकृतियों का निर्माण उसी के शासन-काल में हुआ। 'बर्नियर, टेवर्नियर, मेनूची आदि विदेशी यात्री सम्राट के दरबार के ऐश्वर्य को देख कर स्तब्ध हो गए थे। उन सभी ने चित्रमय मुगल दरबार की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की थी।' सम्पूर्ण मुगल दरबार में बहुमूल्य रत्नों और मणियों का मुक्त प्रयोग होता था। बर्नियर ने मुगल बेगमों के वस्त्राभूषणों का विवरण देते हुए लिखा है कि "मैंने (मुगल हरम में) प्रायः प्रत्येक प्रकार के जवाहरात देखे हैं, जिनमें बाज़ तो असाधारण है।···वे (बेगमें) मोती की मालाओं को कंधों पर ओढ़नी की तरह पहनती हैं। इनके साथ दोनों तरफ मोतियों की कितनी ही मालाएं होती हैं। सिर में मोतियों का गुच्छा-सा पहनती हैं जो माथे तक पहुँचता है और जिसके साथ एक बहुमूल्य आभूषण जवाहरात का बना हुआ सूरज और चाँद की आकृति का होता है। दाहिनी तरफ एक गोल छोटा-सा लाल होता है। कानों में बहुमूल्य आभूषण पहनती हैं और गर्दन के चारों तरफ बड़े-बड़े मोतियों तथा अन्य बहुमूल्य जवाहरात के हार जिनके बीच में एक बहुत बड़ा हीरा, लाल, याकूत या नीलम और इसके बाहर चारों तरफ बड़े-बड़े मोतियों के दाने होते हैं···।[1] इस विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि उन बेगमों का सारा शरीर बहुमूल्य आभूषणों से ढका रहता था। यह अलंकरण-प्रवृत्ति मुगल शासकों की

१. रीतिकाल की भूमिका पृ० १०।

रसिकता को आप्यायित भले ही करती हो, उसमें स्वाभाविकता नहीं है। शासकों की इस अलंकरण-प्रवृत्ति का तत्कालीन साहित्य पर भी बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है। उस युग के काव्य में भी अलंकरण की प्रवृत्ति रसिकता की आड़ में ही पनपी है।

तत्कालीन स्थापत्य, चित्र, संगीत एवं मूर्तिकला में भी इसी अलंकरण-प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। अकबर की अपेक्षा शाहजहाँ द्वारा निर्मित रंगमहल, ताजमहल, जामा मसजिद, दिवाने-खास आदि में चमत्कार, कलात्मक-सौन्दर्य तथा अलंकरण कहीं अधिक हैं। जॉन मार्शल का कथन है कि "उस युग में हिन्दू और मुसलमान स्थापत्य कला की शैलियों में अलंकृति की समानता थी। इन दोनों शैलियों में यह तत्त्व इतना प्रमुख था कि उनका अस्तित्व ही मानो इन पर निर्भर था[१]···। दुर्ग के भीतर के भवन इतने अधिक अलंकृत थे कि वे चीनी आर्ट-गैलरियों से होड़ लेते थे"[२]। डा० ईश्वरी प्रसाद के मतानुसार भी मुगल-कला में आने से पूर्वकालीन कला की स्थूलता एवं सादेपन की अपेक्षा कहीं अधिक कोमलता तथा अलंकृति थी[३]। दिवाने-खास में यह प्रवृत्ति अपने चरम उत्कर्ष पर है।

मुगल शासकों ने चित्रकला का भी अभ्युदय किया। परन्तु इस युग की चित्रकला में भी अनुभूति की अपेक्षा अलंकारिकता अधिक है। सभी चित्रों को फूलों, पत्तों, पक्षियों आदि के सुन्दर रंगीन हाशियों से सजाया गया है। चित्रों में अलंकरण का इतना प्राचुर्य है तथा रंगों का इतना सूक्ष्म प्रयोग है कि लोगों को प्रायः यह भ्रम हो जाता है कि रंगों के स्थान पर इन चित्रों में मणियों के टुकड़े ही जड़ दिये गए हैं[४]। यही नहीं, "इस युग में साधारण-से-साधारण पत्रों के भी किनारे रंगे जाते थे। शासनकार्य में प्रयुक्त होने वाले आदेश-पत्रों तक के किनारों को अनेक प्रकार के डिज़ाइनों से सजाया जाता था[५]। इस युग में रचित काव्य-ग्रंथों में भी किनारों को सुन्दर रंगीन हाशियों से सुशोभित किया गया है। दैनिक-जीवन में प्रयोग की वस्तुओं को भी सुन्दर चित्रों से अलंकृत करते थे। गृहद्वारों, दीवालों, देहरियों तथा मंगल-कलशों को भी सुन्दर चित्रकारी से सजाया जाता था। लोग हथेलियों और भुजाओं तक पर चित्रकारी करवाते थे।

शाहजहां के समय में संगीत की भी यही अवस्था थी। "तानसेन के वंशज, लालखां और हिन्दू कलावन्त जगन्नामी ने तानसेन आदि के संगीत में सूक्ष्मताओं की सृष्टि करते हुए अलंकरण की श्रीवृद्धि की।···रीतियुग में संगीत की प्रवृत्ति भी मौलिक उद्भावना की ओर न होकर अलंकरण और रसीलेपन की ओर ही थी।[६]" उस युग की गुफ़ाओं, पर्वत-

---

१. *History of Muslim Rule in India* : Ishwari Prashad, p. 26। २. वही, पृ० ६०३। ३. वही, पृ० ७२२। ४. रीतिकाल की भूमिका : डा० नगेन्द्र, द्वि० संस्करण, पृ० २३। ५. मतिराम और मध्यकालीन हिन्दी कविता में अलंकरण-प्रवृत्ति : डा० त्रिभुवन सिंह। ६. रीतिकाल की भूमिका : डा० नगेन्द्र, द्वि० संस्करण, पृ० २६-२७।

अपुत्रेणमयापुत्रः श्रमेणमहतामहान् ।
रामोलब्धोमहात्तेजाः स कथं त्यज्यते मया ।।८।।
शूरश्चकृतविद्यश्चजितक्रोधः क्षमापरः ।
कथंकमलपत्राक्षो मया रामो विवास्यते ।।९।।
कथमिदीवरश्यामंदीर्घबाहु महाबलम् ।
अभिराममहंरामंस्थापयिष्यामिदंडकान् ।।१०।।
सुखानामुचिस्यैव दुःखैरनुचितस्य च ।
दुखंनामानुपश्येयंकथंरामस्यधीमतः ।।११।।
यदि दुःखे संक्रुत्वातुममसंक्रमणंभवेत् ।
अदुखार्हस्य रामस्यततः सुखमवाप्नुयात् ।।१२।।
(श्रीमद्‌वाल्मीकीये रामायणे, अयोध्योकाण्डे, सर्ग १३)

भाई संतोखसिंह ने इसका अनुवाद इस प्रकार किया है :

चौपई : केतिक बेगि बंतेक कहि तांहि । हे दुरमते कसट उपजांही ।
राम गए बन मम न्रित होही । पूरन होहि कामना तोही ।।

दोहरा : राजतिलक हुई राम को सुध पहुँची सुरलोक ।
क्या करिहों मैं जगत के निंदक रहि सभि लोक ।।६।।
कैकई कै बस होइ कै राम दयो बनवास ।
अस कहि नर मिलि परसपरि करहि मोहि उपहास ।।७।।

चौपई : या बिनु जैसे साच उबाचो । कोइ न लखहि मोहि बचि साचो ।
सुल बिनु मैं किये खेद प्रयासा । भा तबि पूत राम सुखरासा ।।८।।
क्रोध जीत विद्वान जु सूरा । महा तेज महिं जिह तन पूरा ।
मम सेवा ततपरि दिन राती । कमल पत्र लोचन बख्याती ।।९।।
कस अस राम देउं बनबासा । तयागनि करिव आपने पासा ।
इंदीवर स्याम सलौना । दीरघ बाहु म्रिदु जनु दौना ।।१०।।
रामचंद सुंदरि तन ऐसे । दंडक बन गमने पिखौ कैसे ।
दुख अनुचित उचतै अति सुख को । कैसे मैं पिखौ राम के दुख को ।।११।।

दोहरा : ब्रिह दुख देखनि ते पुरा, जाइ छूटि जे प्राण ।
बड़ी बाति मो कउ भली, हो इन कसट महान ।।१२।।
(वा० रा० भाषा अ० का० सर्ग १३)

तुलना करने से स्पष्ट हो जायगा कि अनुवाद में करुणा की धारा उसी वेग से प्रवाहित हो रही है जैसे 'वाल्मीकि रामायण' में। दशरथ की मानसिक स्थिति का भी वैसा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है।

५. आत्मपुराण टीका—इस अनुवाद से प्रसन्न होकर कैथल-नरेश भाई उदयसिंह ने उन्हें 'मोरथली' ग्राम भेंट किया। परन्तु उनकी अक्षय-कीर्ति का आधार उनका अन्तिम बृहदाकार प्रबन्ध-काव्य **'गुरु प्रताप सूरज'** है, जिसमें ५१,८२९ छन्द हैं। इतने बड़े आकार का कोई भी हिन्दी का ग्रंथ अभी तक प्रकाश में नहीं आया। 'आत्मपुराण टीका' अभी तक उपलब्ध नहीं है।

६. गुरु प्रताप सूरज अपभ्रंश की रासो, रासक, रूपक, प्रकाश, विलास आदि चरित-काव्यों की परम्परा में रचित एक कथा-प्रधान ऐतिहासिक प्रबन्ध-काव्य है। इसमें गुरु नानक के अतिरिक्त अन्य नौ गुरुओं एवं बंदा वैरागी का जीवन-चरित्र अत्यन्त विस्तृत रूप में वर्णित है। पंजाब में ऐसे चरित-काव्य लिखने की परम्परा का आरम्भ 'दशम ग्रंथ' की 'अपनी कथा' से होता है और 'गुरु शोभा', 'महिमा प्रकाश', 'गुरु विलास' आदि के माध्यम से उसका विकास हुआ है। सिक्ख-गुरुओं का अधिकांश इतिहास इन्हीं ग्रंथों में उपलब्ध है। इन सभी ग्रंथों में गुरुओं के चरित्र को अलौकिक शक्ति सम्पन्न अवतारी पुरुषों के रूप में अत्यधिक महत्त्व देकर चित्रित किया गया है। भाई संतोखसिंह ने भी अपनी कथा का आधार मुख्यतः इन्हीं ग्रंथों को बनाया है, यद्यपि कुछ अन्य स्रोतों से भी उन्होंने कुछ सामग्री एकत्रित की है। सभी गुरुओं के सम्बन्ध में जो भी सामग्री इधर-उधर बिखरी हुई थी, उस सारी को एकत्रित, एवं सुनियोजित करके सम्बद्ध-रूप में एक स्थान पर प्रस्तुत करने का श्रेय भाई संतोखसिंह को ही है। इससे पहले या बाद में कोई भी ऐसा ग्रंथ नहीं लिखा गया, जिसमें सभी गुरुओं का चरित इतने विस्तार से वर्णित हो।

धर्म-प्रचार का जितना सरल, सरस एवं सशक्त साधन कथात्मक-काव्य है उतना शक्तिशाली साधन अन्य शायद ही कोई होगा। जातक-कथाओं अथवा पौराणिक उपाख्यानों के माध्यम से धर्म-प्रचार को जो सफलता प्राप्त हुई वह इसका ज्वलन्त प्रमाण है। अपभ्रंश-काल में भी जैन-कवियों ने अपने धार्मिक आदर्शों एवं नैतिक आचरणों के प्रतिपादन का मुख्य साधन कथा-काव्यों को ही बनाया और उन्हें इसमें सफलता भी मिली। इसी प्रकार रामभक्ति का जितना प्रचार 'रामचरितमानस' की मार्मिक कथा के द्वारा हुआ उतना किसी अन्य प्रकार से नहीं। सिक्ख-कवियों एवं धर्म-प्रचारकों ने भी सिक्खमत के सिद्धान्तों की सरल एवं प्रभावशाली अभिव्यक्ति के लिये कथा-काव्यों का आश्रय लिया। ऊपर जिन ऐतिहासिक प्रबन्ध-काव्यों का उल्लेख हुआ है उन सभी में गुरुओं के चरित्रांकन के माध्यम से 'गुरुमत' का ही प्रतिपादन किया गया है। 'महिमा प्रकाश' जैसे कुछ ग्रंथों में तो 'गुरु वाणी' भी आई है, जिसकी विशेष प्रसंगों में व्याख्या और महत्ता प्रतिपादित है। 'गुरु प्रताप सूरज' में भी कवि का लक्ष्य 'गुरुमत' प्रतिपादन है। गुरुओं के उपदेशों के माध्यम से कवि ने उनके धार्मिक तथा नैतिक आदर्शों एवं आचरणों का प्रतिपादन करते हुए भारतीय-संस्कृति के सभी प्रमुख तत्त्वों को प्रस्तुत किया है और उनकी महिमा एवं महत्ता पर प्रकाश डाला है। जहां गुरुओं की चरित्र-कथा का वर्णन करना उसके लिये ध्येय है, उनकी उपासना का एक अंग

है, वहां कवि का लक्ष्य 'गुरुमत' प्रतिपादन एवं प्रचार भी है और इस लक्ष्य में कवि को असाधारण सफलता मिली है। अनेक साखियों का आधार लेकर कवि ने 'महिमा प्रकाश' की शैली में 'गुरु वाणी' की विविध प्रसंगों में व्याख्या भी की है और अनेक परिसंवादों के माध्यम से उसका विद्वत्तापूर्ण स्पष्टीकरण भी किया है। इस दृष्टि से यह रचना एक विशिष्ट सांस्कृतिक महत्त्व रखती है। इसके आधार पर उस युग का सांस्कृतिक इतिहास ही निर्मित करने में सहायता नहीं मिलती, वरन् कवि की भारतीय संस्कृति के प्रति निष्ठा एवं उसके पुनरुत्थान की उत्कट अभिलाषा भी प्रकट होती है। गुरुओं ने सांस्कृतिक पुन-र्जागरण का जो महत् उपक्रम किया था उसका वास्तविक एवं यथार्थ रूप इस ग्रंथ के द्वारा हमारे सामने आ जाता है। यह ठीक है कि इस ग्रंथ में कुछ ऐसे सांस्कृतिक तत्त्व भी विद्य-मान हैं जो गुरुओं की मान्यताओं से मेल नहीं खाते। अवतारी भावना, पुजारी प्रवृत्ति, देवी-देवताओं की बंदना आदि कुछ ऐसे ही प्रसंग हैं। ये तत्त्व कवि के अपने युग के प्रभाव के परिणाम कहे जा सकते हैं। कुछ सीमा तक इसमें समन्वय की प्रवृत्ति भी कार्य करती प्रतीत होती है। इसे निर्मल संतों की संगति का भी परिणाम कहा जा सकता है। इस वर्ग में ऐसी उदारता और समन्वय-भावना दृष्टिगत होती है।

नामकरण एवं स्वरूप

'गुरु प्रताप सूरज' का बाह्य रचना-विधान शास्त्रीय आधार पर हुआ है। इसमें कुल मिलाकर २० अध्याय १,१५१ अंशु तथा ५१,८२६ छन्द हैं। सम्पूर्ण कथानक सूर्य की गति के आधार पर १२ राशियों, ६ ऋतुओं एवं २ अयनों में विभक्त है। वे पुनः अंशुओं (किरणों) में विभाजित हैं। रचना के नामकरण में भी एक सुन्दर रूपक की कल्पना की गई है। इसकी प्रेरणा सम्भवतः कवि को संस्कृत के 'कथा-सरित-सागर' अथवा 'राजतरंगिणी' आदि ग्रंथों से मिली है, यद्यपि 'गुरु प्रताप सूरज' नाम का सीधा सम्पर्क भाई गुरुदास की "सूरज प्रकाश, नास उडगन अगणित ज्यों"·········तथा "सतगुरु नानक प्रगटिआ, मिटि धुन्ध जग चानन होइआ" आदि पंक्तियों से है। कवि के अनुसार गुरु प्रताप एवं गुरु ज्ञान रूपी सूर्य की किरणें किसी भी युग के साम्प्रदायिक-अंधविश्वास, संकीर्णता, भ्रम, पाखण्ड, अज्ञान, अन्याय, असत्य आदि के अंधकार को विदीर्ण करके ज्ञान एवं सत्य का प्रकाश फैलाती हुई सज्जन रूपी कमल-वृन्दों को विकसित एवं उल्लसित करती हैं।

मंगलाचरण

ग्रंथ के आरम्भ में सभी गुरुओं की वंदना सम्बन्धी मंगलाचरण हैं जिनमें उनके चरित्र की विशिष्टता एवं महत्ता का स्तुतिगान करते हुए उनके चरण-कमलों की वंदना की गई है। इसके अतिरिक्त सभी राशियों अथवा ऋतुओं आदि के आरम्भ में भी ऐसे मंगला-चरण आये हैं। अकाल पुरुष तथा गुरु ही कवि के इष्टदेव हैं, इसलिये अधिक मंगलाचरण उन्हीं से सम्बन्धित हैं, तथापि कवि ने सरस्वती, भगवती, राम, कृष्ण, इन्द्र तथा अन्य देवी-

देवताओं की भी वंदना की है जोकि उनकी उदारता की परिचायक है। ये सभी मंगलाचरण प्राय: आलंकारिक शैली में लिखे गये हैं, जिनमें कवि के पांडित्य एवं रचना-विधान कौशल का भी परिचय मिलता है। इन छन्दों में यमक एवं श्लेष का चमत्कार दर्शनीय है। श्री गुरु नानकदेव की वंदना कवि ने इस प्रकार की है—

सवैया

करितारनि से शुभ बाक बिलास बिहंग बिकारन को करि तारनि।
करतार नही मन जानति जे तिनके हित को सिफती करि तारन।
करि तारिनि पाप उतारन को गन दंभ छपै सविता करितारन।
करतार निहार गुरूबर नानक दास उधारन जिउं करितारनि। १।८।

इन मंगलाचरणों में ब्रह्म, जीव आदि के सम्बन्ध में उनके आध्यात्मिक विचारों का भी परिचय मिलता है। 'अकाल पुरुष' का जो मंगलाचरण उन्होंने दिया है उससे ब्रह्म के स्वरूप पर भी प्रकाश पड़ता है। यथा—

तीनों काल सु अचल रहि अलंब सकल जगजालि।
जाल काल लखि मुचति जिसि करता पुरष अकाल।१।१
छौनी, सूरज, अगनि, जम, वायु, त्रास, जिस पाइ।
निज सुभाव महिं थिति रहति, अस ब्रह्म रिद बिदताइ। २।
मरम न जान्यो जाइ जिसि, भरम भिटे मिलि जाइ।
करम धरम अरु भगति फल अस अभेद को पाइ। ३।

अर्थात्—जो त्रिकाल में एकरस रहता है, जो समस्त जगत् के प्रसार का आश्रय है, जिसे जान लेने से काल के फंदे टूट जाते हैं, जिसके भय से पृथ्वी, सूर्य, अग्नि, यम तथा वायु अपने-अपने स्वभाव में दृढ़ रहते हैं, जिसका रहस्य जाना नहीं जा सकता, जिसके मिलने से भ्रम मिट जाते हैं, ऐसा अकाल पुरुष मेरे हृदय में प्रकट हो, जिसे कर्म, भक्ति एवं धर्म आदि के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

कवि ने गुरुओं की इस पावन-कथा का भी मंगलाचरण लिखा है जोकि चित्त को स्थिर करने वाली, नित्य धन (नाम) को देने वाली, श्रवण से 'हउमै' (अहंकार) की विनाशक, हृदय को शुद्ध करने वाली, तीनों तापों को नष्ट करने वाली, सब सुखों की खान, गुरु चरणों में चित्त को लगाने वाली तथा सब तत्त्वों की सार है।[1] ग्रंथ की पूर्णता हेतु कवि ने उन गुरुओं से प्रार्थना भी की है जिन्होंने मनुष्यों के उद्धार के लिए जगत् में सिक्खी को प्रकट किया और तुर्कों के राज्यरूपी वन को दावाग्नि की भांति जला कर क्षार कर दिया।[2] खालसे को कवि ने कल्पवृक्ष के समान सभी कामनाओं को पूरा करने वाला कहा है जिसका

१. गुरु प्रताप सूरज १ : १ : ४०। २. वही १ : १ : ३२-३३।

तेज सिंह की तेजस्विता से युक्त है। 'खालसा पंथ' की श्रेष्ठता एवं पवित्रता का वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया है—

सरब शिरोमणि खालसा रच्यो पंथ सुखदाइ।
इक बिन गंदे धूम ते जग में अधिक सुहाइ। १।४३
श्री सतिगुर को रूप जगहि जोति जाहर जगत।
पुंज सु पंथ अनूप करि बंदन रचिबे लगति। ४४।

खालसा स्वयं गुरु-रूप है, इसकी उत्तम ज्योति जगत् में जगमगा रही है, इसीलिये यह वंदनीय है।

प्रस्तुत संग्रह के आरम्भ में हमने प्रत्येक गुरु के सम्बन्ध में, जो मंगलाचरण कवि ने लिखे हैं, उन्हें एक स्थान पर एकत्रित कर दिया है, जिससे कवि की उनके प्रति इष्ट भावना, निष्ठा एवं भक्ति, गुरुओं के चरित्र एवं स्वरूप, कवि की आध्यात्मिक भावना, पौराणिक प्रवृत्ति, उदार एवं समन्वय दृष्टि आदि का सही परिचय प्राप्त हो सके।

प्रबन्धात्मकता

'गुरु प्रताप सूरज' एक सफल प्रबन्ध-काव्य है। कथानक में सम्बद्धता, संतुलन, रोचकता, प्रवाह, उदात्तता एवं संगठन है। मुख्य कथानक गुरुओं के जीवन से सम्बन्धित हैं; उनमें भी गुरु हरिगोबिंद तथा गुरु गोबिंदसिंह के चरित्र को अधिक विस्तार दिया गया है। (गुरु गोबिन्दसिंह की चरित्र-कथा को तो एक स्वतन्त्र वीरकाव्य माना जा सकता है)। कथानक के बीच-बीच में बहुत-सी ऐतिहासिक, पौराणिक अथवा कल्पित प्रासंगिक एवं अवान्तर कथाओं का भी समावेश किया गया है, तथापि वे सभी कथा की गति एवं गरिमा में सहायक हुई हैं और उनके द्वारा गुरुओं का महत्त्व ही स्थापित होता है। कवि ने उन्हें अनावश्यक विस्तार नहीं दिया। बहुत से ऐसे प्रसंग भी आये हैं जिनमें विभिन्न वर्गों, सम्प्रदायों, श्रेणियों के पात्रों का गुरुओं से सम्पर्क होता है और उनके साथ परिसंवाद में गुरु जी उस युग में प्रचलित हिन्दुओं के विभिन्न मतमतान्तरों के मिथ्याचारों, धार्मिक पाखंडों, सामाजिक अन्धविश्वासों, साम्प्रदायिक बाह्याडम्बरों का खंडन करते हुए, सरल एवं सुगम गुरुमत का प्रतिपादन करते हैं। ऐसे प्रसंगों में कवि की समन्वय-भावना के भी दर्शन होते हैं। इन्हीं प्रसंगों में कृष्ण, राम आदि के साथ गुरुओं की अभिन्नता स्थापित की गई है। रहस्यवादी सिद्धों, चमत्कार दिखाने वाले नाथ-योगियों, अहंकारी पीरों, गद्दीधारी महंतों के मिथ्याचारों, आडम्बरों एवं ढोंगों का विरोध किया गया है और जाति-पांति, वर्णाश्रम आदि की व्यर्थता सिद्ध की गई है। कवि ने विभिन्न भारतीय साधना-पद्धतियों के समन्वय का प्रयास किया है और भारतीय-संस्कृति के महान् तत्त्वों का प्रतिपादन किया है। वस्तुतः गुरु-कथा तो एक माध्यम है। उसके माध्यम से कवि ने भारतीय-संस्कृति के पुनरुत्थान एवं सामाजिक जागरण का महत् कार्य किया है एवं अन्याय, असत्य, अधर्म,

अनीति का विरोध एवं न्याय, सत्य, धर्म, नीति की स्थापना द्वारा मानव-मात्र को मंगल-कामना का सन्देश देकर एक महान् लोकनायक का उत्तरदायित्व निभाया है।

ऐतिहासिकता

इस रचना में गुरुओं के जीवन के सम्बन्ध में बहुत-सी ऐसी घटनायें मिलेंगी, बहुत-से ऐसे पात्र भी मिलेंगे जो इतिहास सम्मत-नहीं हैं। परन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि यह एक ऐतिहासिक काव्य है, इतिहास-ग्रंथ नहीं। इतिहास में तिथियों एवं घटनाओं की यथार्थता एवं सत्यता का उल्लेख किया जाता है जबकि ऐतिहासिक काव्यों की इसके अतिरिक्त एक विशिष्ट चेतना भी होती है, वे एक विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिये लिखे जाते हैं। उनमें ऐसे तथ्यों का प्रतिपादन होता है जो नवचेतना जागरित करते हैं। कवि अतीत की मिट्टी आंसू बहाने के लिये नहीं खोदता, वरन् उसके आलोक में नव-निर्माण का कार्य करता है। अतीत के अस्थिपंजर में अपनी नव-चेतना के रक्त संचार द्वारा उसे प्राणवान् बनाता है। संतोखसिंह ने इसी प्रकार की सांस्कृतिक चेतना एवं उदीप्त वीर-भावना से सिक्ख-गुरुओं का इतिहास चित्रित किया है। परन्तु इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं कि यह ग्रंथ काल्पनिक घटनाओं का ही समुच्चय है, उसका कोई ऐतिहासिक महत्त्व है ही नहीं। वस्तुतः सिक्ख-इतिहास में इस ग्रंथ का इतिहास की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। गुरुओं के जीवन से सम्बन्धित जितनी विशद एवं यथार्थ ऐतिहासिक सामग्री इस ग्रंथ में मिलती है, अन्यत्र दुर्लभ है। पंजाब में सिक्ख-गुरुओं से सम्बंधित ऐतिहासिक प्रबन्ध लिखने की परम्परा का आरम्भ गुरु गोबिन्दसिंह की 'अपनी कथा' (विचित्र नाटक) से होता है। उसके पश्चात् उनके जीवन पर आधारित 'गुरु शोभा', 'महिमा प्रकाश', 'गुरु बिलास', 'गुरु नानक विजय', 'साखी नानकशाह की' आदि ऐतिहासिक काव्य लिखे गये। भाई संतोखसिंह का कथन है कि गुरुओं की कथा जगत् में उसी प्रकार मिली हुई है जैसे धूलि में स्वर्ण अथवा दधि में घी मिला रहता है। कवि ने बड़े परिश्रम से उसे इकट्ठा किया, बीन-बीन कर ठीक किया और उसे एक क्रम देकर संगठित एवं सम्बद्ध रूप में इस ग्रंथ में प्रस्तुत किया। (रा० १ : ५ : ६-९) इस प्रकार गुरुओं के जीवन-काल की कोई ३०० वर्षों की परिस्थितियों पर इतने विस्तार से प्रकाश डालने वाला यह पहला ग्रंथ है। प्रथम प्रयास 'महिमा प्रकाश' है, परन्तु वह साखियों के रूप में लिखा गया है। इतिहास का वृहत् चित्र उससे सामने नहीं आता। 'गुरु प्रताप सूरज' उस युग का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है।

आधुनिक युग में इतिहास की जिस वैज्ञानिक-परम्परा का विकास हो रहा है, उस दृष्टि से 'गुरु प्रताप सूरज' को सिक्ख-गुरुओं का वैज्ञानिक इतिहास नहीं कहा जा सकता। परन्तु उनके सम्बन्ध में ऐसा प्राचीन वैज्ञानिक इतिहास मिलता ही कहाँ है। क्या मुसलमान लेखकों द्वारा लिखे गये 'तुजकि-जहाँगीरी', 'दबिस्तान', 'आइने अकबरी', 'अकबर नामा', 'शाह-जहां नामा', 'इकवालनाम-ए-जहांगीरी' आदि ऐतिहासिक ग्रंथों को वैज्ञानिक इतिहास कहा जा सकता है ? कदापि नहीं। ये ग्रंथ भी पक्षपातपूर्ण दृष्टि से लिखे गये हैं, इनके विवरण भी

एकपक्षीय होने के कारण सत्य से बहुत दूर हैं। वस्तुतः सिक्ख-इतिहास निर्मित करते समय हमें इन दोनों प्रकार के ग्रंथों का आधार ग्रहण करना पड़ेगा। मैकालिफ, कन्निघम, गोकलचंद नारंग, इन्दुभूषण बैनर्जी, गंडासिंह आदि इतिहासकारों ने ऐसा किया भी है यद्यपि उनका दृष्टिकोण सर्वथा वैज्ञानिक एवं पूर्ण नहीं है। यहाँ इनकी न्यूनताओं पर विचार करना हमारा उद्देश्य नहीं है। हम तो इतना ही कहना चाहते हैं कि सिक्ख-गुरुओं के इतिहास-ग्रंथों में 'गुरु प्रताप सूरज' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहाँ हम एक बात और कहना चाहते हैं, वह यह कि तथाकथित वैज्ञानिक इतिहासकारों की यह एक बड़ी भारी कमज़ोरी रही है कि वे विभिन्न शासकों के उत्थान-पतन से सम्बन्धित घटनाओं का ही इतिहास देते हैं, वे जनजीवन की युग-चेतना और युग-बोध पर विशेष प्रकाश नहीं डालते। वे उनकी सांस्कृतिक, सामाजिक एवं मानसिक अवस्था का, उनकी अभिलाषाओं और आकांक्षाओं का, सजीव चित्र अंकित करने में प्रायः असफल ही रहे हैं। क्या किसी भी देश अथवा जाति का इतिहास उसके जन-जीवन की अवस्था, उपलब्धियों, आशा, निराशा, आकांक्षा, अभिलाषा आदि के अभाव में पूर्ण कहा जा सकता है ? मेरा कहने का अभिप्राय यही है कि गुरुओं के समय के पंजाब के जन-जीवन की सांस्कृतिक, राजनैतिक, सामाजिक चेतना; उनकी स्वातन्त्र्य-भावना यवनों के प्रति विरोध एवं विद्रोह का स्वर सही रूप में यदि कहीं सुनाई पड़ता है तो वे हैं पंजाब के सिक्ख प्रबन्ध-काव्य जिन में 'गुरु प्रताप सूरज' का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। मुसलमान लेखकों के ऐतिहासिक विवरणों में तो उसकी झलक भी नहीं मिल सकती। वस्तुतः पंजाब के तत्कालीन सांस्कृतिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं नैतिक इतिहास का यथार्थ एवं सजीव चित्र हमें इसी ग्रंथ में मिल सकता है। भारत में ऐसे ही सांस्कृतिक इतिहास लिखने की परम्परा रही है। 'गुरु प्रताप सूरज' गुरुओं के आध्यात्मिक एवं सामाजिक सिद्धान्तों और आदर्शों का ही प्रतिपादन नहीं करता, न केवल उनके गार्हस्थ्य एवं पारिवारिक जीवन की कहानी सुनाता है। वह उनके जन्मोत्सवों, विवाहों, पर्वों, मृत्यु-संस्कारों आदि का ही विवरण प्रस्तुत नहीं करता वरन् उनके पारिवारिक द्वेष, कलह आदि को भी यथार्थ रूप में प्रकट करता है। साथ ही जन-साधारण की आर्थिक-दशा, नैतिक-स्तर, अन्ध-विश्वास आदि पर भी प्रकाश डालता है और थोड़ा बहुत मुगलों के पारिवारिक और राजनैतिक संघर्ष को भी उद्घाटित करता है। सब से बड़ी बात तो यह है कि ये चित्र एक सामान्य द्रष्टा द्वारा प्रस्तुत नहीं किये गये वरन् एक युग-द्रष्टा एवं युग स्रष्टा कलाकार की जादूभरी लेखनी द्वारा प्रसूत हैं। उनमें एक लोकनायक की शक्ति एवं प्रतिभा का प्रकाश है। उनमें सेवा, त्याग, परोपकार, दया, संयम एवं सदाचार का प्रतिपादन किया गया है जो लोक मंगलकारी भावनायें हैं।

पौराणिक तत्त्व एवं समन्वय-भावना

'दशम गुरु' के पूर्व के गुरुओं का देश की राजनीति से थोड़ा-बहुत संपर्क भले ही रहा हो, उन्होंने धर्म को राजनीति से पृथक रखा और राजनीति में विशेष भाग नहीं लिया। वे अपने धर्म-प्रसार के कार्य में ही लगे रहे। परन्तु गुरु गोबिन्दसिंह के समय में राजनीति धर्म

से अलग नहीं रह गई थी। उधर औरंगज़ेब ने राजनैतिक सत्ता को इस्लाम के प्रसार एवं हिन्दुत्व के विनाश का साधन बना लिया था तो इधर गुरु गोबिन्दसिंह को हिन्दुत्व की रक्षार्थ राजनैतिक क्षेत्र में भी उसका मुकाबला करना आवश्यक जान पड़ा। इस उभयपक्षीय आन्दोलन को सुचारु रूप से चलाने के लिये उन्हें पुराणों की दुष्ट—दमनकारी अवतारी-भावना का आधार लेना पड़ा।[1] यद्यपि अवतारी-भावना गुरमत के अनुकूल नहीं है, और गुरु नानक ने स्पष्ट रूप से उसका खंडन किया है।[2] परन्तु दशम गुरु ने निष्ठा एवं श्रद्धाभाव से २४ अवतारों की कथा का वर्णन किया। यहां उन्होंने अवतारवादी भावना के मूल में जो एक दुष्परिणाम रहा है कि भक्तजन अवतारों को ही भगवान् मान कर उनकी पूजा करने लगते हैं, उसकी ओर स्पष्ट रूप से संकेत करते हुए अपने अनुयायियों को सचेत किया कि उन्हें अकाल पुरुष ने अन्याय, असत्य, अधर्म, अनाचार की प्रतीक आसुरी शक्तियों के विनाश के लिये ही भेजा है, परन्तु वे अकाल पुरुष के दास हैं। उन्हें ही भगवान मानने वाला घोर नरक में गिरेगा।[3] गोस्वामी तुलसीदास ने भी अपने युग की आसुरी शक्तियों के विनाश के लिये दुष्टदमनकारी भगवान् राम के अवतारी रूप का सहारा लिया था, परन्तु उनका प्रयास केवल सांस्कृतिक क्षेत्र में रहा, किसी सैनिक अथवा राजनैतिक आन्दोलन का संचालन वे नहीं कर पाये। गुरु गोबिन्दसिंह ने ये दोनों कार्य किये। उन्होंने पुराणों की अवतार कथाओं का वर्णन भक्ति-भावना उत्पन्न करने के लिये नहीं किया वरन् वे पौराणिक आधार लेकर भारतीयों की वीर-भावना को जागृत करके उन्हें आसुरी शक्तियों के विनाश के लिये प्रेरित और उत्साहित करना चाहते थे। (यहाँ मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मुसलमानों से गुरुओं का कभी कोई विरोध नहीं रहा, दशम गुरु के भी बहुत से मुसलमान सहायक और सेवक थे, उनका विरोध अधर्म, अनीति, अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध था और उस युग की यवन-शक्ति यही सब कर रही थी, इसीलिये उन्हें उस सत्ता से लोहा लेना पड़ा।) उनके

---

१. 'दशम ग्रंथ' में अवतारों के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा है—

जब जब होत अरिसटि अपारा। तब तब देह धरत अवतारा।
काल सबन को पेख तमासा। अंतह काल करत है नासा ॥२॥
(चौबीस अवतार)

देवी की प्रार्थना करते हुए वे कहते हैं कि जिस प्रकार तुम ने अधिक क्रोधित होकर शुंभ का संहार किया, उसी प्रकार संतों के सभी शत्रुओं को विकराल रूप धारण करके चबा जाओ यथा—

जिमि सुंभासुर को हना अधिक कोप कै कालि।
तियों साधन के सत्र सभ चाबत जांह कराल ॥ ६३। २१६।
(चण्डी चरित्र द्वि०)

२. नानक निरभउ निरंकार होरि केते राम रवाल। आसा १ : पृ० ४६४ 'आदि ग्रंथ'।

३. इह कारन प्रभु मोहिं पठायो, तब मैं जगत जनमु धरि आयो।
जिम तिन कहीं इनै तिम कहहौ, अउर किसू ते बैर न गहिहौ।
जे हम को परमेसर उचरिहै, ते सभ नरकि कुंड महि परि है।
मोको दासु तवन को जानो, या मै भेदु ना रंच पछानो। (दशम ग्रंथ)

'रामावतार' को ही लीजिये, यह प्रबन्ध प्रसिद्ध राम-कथा पर ही आधारित है परन्तु न तो यह वाल्मीकि-काव्य की भाँति करुण-प्रधान है, न तुलसी-रामायण की भाँति भक्ति-प्रधान। 'मानस' की भाँति उसमें 'निगम आगम' का सार और 'श्रुति सम्मत हरि-भक्ति पथ' का भी प्रतिपादन नहीं किया गया। मैं इसे 'वीर-काव्य' की कोटि में रखता हूँ। कथा के सभी मार्मिक प्रसंगों को तीव्रगामी वायुयान की भाँति तेज़ी से लांघता हुआ कवि राम-कथा के उन प्रसंगों पर पहुँचता है जहाँ उनका दुष्टदमनकारी रूप उद्घाटित होता है। राम-रावण युद्ध और राम की विजय का वर्णन वह जम कर करता है। इसी प्रकार हिन्दी में सम्भवत: पहली बार कृष्ण के दुष्टदमनकारी युद्ध-वीर रूप का वर्णन 'गुरु गोबिन्दसिंह' ने 'कृष्णावतार' काव्य में किया है। 'कल्कि अवतार', 'रुद्रावतार' आदि भी इसी वीर-भावना से ओतप्रोत काव्य हैं। 'चण्डी चरित' तो साक्षात् असुर-संहार के लिये भारतीय वीर-शक्ति का आह्वान करने वाला 'शक्ति-काव्य' है। इसमें देवी द्वारा अनेक दैत्यों के संहार की कथा सुनाकर उन्होंने देवी से शत्रु पर विजय प्राप्त करने का वर मांगा है।[1] इन सभी पुराण-कथाओं के मूल में जो भावना कार्य कर रही है, वह वास्तव में उनकी 'अपनी कथा' की पृष्ठभूमि मात्र है। इसी पृष्ठभूमि में वे यह थीसिस खड़ा करते हैं कि जिस प्रकार अन्य युगों में अधर्म के विनाश एवं धर्म की स्थापना के लिये इन अवतारों ने रूप ग्रहण किया, उसी प्रकार कलिकाल में यवनों द्वारा प्रसारित अधर्म और अन्याय को विनष्ट करने के लिये वे युद्ध लड़ रहे हैं। इसलिये उनके ये युद्ध किसी व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये न होकर जनहितार्थ, तथा हिन्दू-धर्म की रक्षा के लिये लड़े जाने के कारण धर्म-युद्ध हैं। इस भावना से प्रेरित होकर उनके अनुयायियों ने प्राणों की चिन्ता न करते हुए हंस-हंस कर उनका साथ दिया। गुरु गोबिन्दसिंह ने धर्मप्रधान वीरता की जो ज्योति प्रज्ज्वलित की थी वह निरन्तर प्रकाशवान् होती गई।

'दशम गुरु' के लिये जहाँ राम, कृष्ण, रुद्र आदि पौराणिक पुरुष अधर्म के विनाश के लिये अवतरित अवतारी पुरुष थे वहां उनके अनुयायी सिक्खों के लिये स्वयं 'दशम गुरु' युग की आसुरी-शक्तियों के विनाश के लिये अवतरित दिव्य-पुरुष थे। यही कारण है कि 'दशमग्रंथ' की अवतार कथाओं का स्थान अब गुरुओं की अवतार-कथाओं ने ले लिया। तदनन्तर पंजाब में पौराणिक-काव्य अधिक नहीं लिखे गये, वरन् गुरुओं को ही पौराणिक रूप देकर ऐतिहासिक प्रबन्ध लिखे जाने लगे। 'महिमा प्रकाश', 'गुरु विलास', 'गुरु नानक विजय', 'नानक प्रकाश', साखी नानकसाह की', 'गुरु-विलास पातसाही ६', 'गुरु प्रताप सूरज', आदि ऐसे ही ग्रंथ हैं। 'गुरु प्रताप सूरज' इन सब में विस्तृत, विशद एवं उत्कृष्ट रचना है। प्रस्तुत संग्रह में उपरोक्त वीर-भावना का सारा रूप तो प्रकट नहीं किया जा सकता था क्योंकि उस तक तो सम्पूर्ण ग्रंथ का अध्ययन करके ही पहुँचा जा सकता है। परन्तु हमने

---

१. देहु शिवा! वर मोहि इहै शुभ कर्मन ते कबहूँ न टरौं।
न डरौं अरि सौं जब जाई लरौं निशचे करि आपुनी जीत करौं।
अरु सिख हौ आपने ही मन को इह लालच हौं गुन तौं उचरौं।
जब आव की औध निदान बनै अति ही रण में तब जूझि मरौं। (दशम ग्रंथ)

गुरुओं के युद्धों के विस्तृत उदाहरण इसमें दिये हैं। यहाँ इस पृष्ठभूमि का उल्लेख इसीलिये किया गया है कि उस 'वीर काव्य' का अध्ययन इस परिप्रेक्ष्य में करने से ही उसका सही मूल्यांकन हो सकेगा। वीरता सम्बन्धी छन्द भी 'गुरु प्रताप सूरज' में लगभग १०,००० होंगे, उनमें से छांट कर ऐसे उदाहरण ही यहां रखे गये हैं, जिनसे युद्ध-कथा वर्णन का स्वरूप भी स्पष्ट हो सके और साथ ही 'वीर रस' की दृष्टि से भी उसका स्वरूप सामने आ सके! गुरुओं के अवतारी रूप का संतोखसिंह ने कई स्थानों पर वर्णन किया है, उसके भी कुछ उदाहरण यथास्थान दे दिये गये हैं; ताकि जो धारणा हमने प्रस्तुत की है, उसका स्पष्टीकरण हो सके। भाई संतोखसिंह ने गुरु-चरित्र के साथ अनेक अतिमानवीय, अतिप्राकृतिक घटनाओं का समावेश किया है, जिससे उनकी अलौकिक, दिव्य शक्ति प्रकट होती है। हिन्दी के रासो काव्यों एवं रीतिकालीन अन्य वीर-काव्यों में भी अपने चरित्र नायक के साथ बहुत सी अतिमानवीय घटनाओं का समावेश किया गया है परन्तु उनमें उस सांस्कृतिक चेतना और धर्म भावना का अभाव है, जो 'गुरु प्रताप सूरज' की प्राण-शक्ति है। इस ग्रंथ में गुरुओं को 'भवभार उतारने', तथा 'तुरकान को तेज निवारने' (रा० ३ : ८ : २७) के हेतु जगत् में अलौकिक शक्ति सम्पन्न दिव्य पुरुषों के रूप में अवतरित कहा गया है और उन्हें हिन्दुपति, हिन्दुओं के रक्षक; हिन्दू-धर्म के रक्षक कहकर सम्बोधित किया है। गुरुओं को दिव्य स्वरूप प्रदान करने के लिये उनके चरित्र के साथ तो बहुत सी चमत्कारपूर्ण घटनाओं का समावेश किया ही गया है; जैसे श्री रामराई ब्राह्मण के मृत पुत्र को जीवित कर देते हैं (रा० १० : १७) गुरु तेग बहादुर बंदीगृह से बिना द्वार खोले सिक्ख के घर पहुंच जाते हैं, तथा एक ही समय में वे दो स्थानों पर दिखाई पड़ते हैं—(रा० १२ : ४९) श्री हरिगोविन्द जिस सर्प का उद्धार करते हैं वह मनुष्य देह धारण करके अपने पूर्व जन्म की कथा सुनाने लगता है, गुरु अमरदास सिक्खों का अन्यत्र दिया हुआ समस्त आहार अपने मुख में दिखा देते हैं—एक वृद्धा के नदी में डूबे हुए पुत्र को कई दिनों बाद जीवित करके निकाल देते हैं, इत्यादि; दूसरे वे गुरुओं के चरित्र की पौराणिक घटनाओं अथवा पात्रों से समानता भी चित्रित करते हैं; यथा दातू ने क्रोधित होकर गुरु अमरदास को सभा में ऐसे लात मारी जैसे भृगु ने लक्ष्मीपति को मारी थी, अथवा गुरु अमरदास के खडूर छोड़ने पर सिक्खों की वही दशा हुई जो कृष्ण के अन्तर्धान होने पर गोपियों की हुई थी, इत्यादि। तीसरे, कवि ने गुरुओं की पूर्वावतारों से अभिन्नता दिखाते हुए उनके विष्णु, कृष्ण आदि के रूप में दर्शन कराये हैं। गुरु तेगबहादुर ने तीनों युगों में विभिन्न अवतार धारण किये, कवि उन सभी अवतारों के रूप में उनका वर्णन करता है (रा० ६ : ४६ : २०-२८) तथा इस बात का भी उल्लेख करता है कि जिस समय गुरु गोविन्दसिंह मथुरा वृन्दावन आदि गये तो उन्होंने वे सभी स्थान देखे जहां उन्होंने कृष्ण रूप में अनेक लीलाएँ की थीं (रि० १ : ३८)। ऐसे स्थलों पर कवि एक तो गुरुओं के पौराणिक रूप की स्थापना करता है, दूसरे वैष्णवों के साथ उनके विरोध को दूर करके समन्वय-भावना को प्रश्रय देता है। तुलसी ने जिस प्रकार काशी के वैष्णवों एवं शैवों का समन्वय किया, उसी प्रकार संतोखसिंह ने पंजाब के गुरु-भक्त सिक्खों एवं राम अथवा कृष्ण-भक्त वैष्णवों का समन्वय अथवा मिलाप कराने का स्तुत्य प्रयत्न किया। कैथल में, जहां इस

ग्रंथ की रचना हुई, वह ष्णवों का एक महत्त्वपूर्ण तीर्थ-स्थान है, उसी के निकट पेहोवा तथा कुरुक्षेत्र जैसे प्रसिद्ध तीर्थ स्थान हैं। यहां वैष्णव-ब्राह्मणों का ज़ोर रहना स्वाभाविक ही है। कवि के आश्रयदाता भाई उदयसिंह निष्ठावान गुरुभक्त थे। पेहोवा भी उनके राज्य में था। वे थे भी समन्वय एवं उदार बुद्धि के धनी। इसीलिये तो उन्होंने 'वाल्मीकि रामायण' एवं 'जपु जी' दोनों का अनुवाद कवि से करवाया था। सम्भवतः उदयसिंह किसी प्रकार के वैष्णव-सिक्ख विरोध में पड़ना नहीं चाहते थे या वहाँ ऐसा विरोध था ही नहीं और या वे इसे दूर करके दोनों का समन्वय स्थापित करना चाहते थे। यही प्रयास हमें 'गुरु प्रताप सूरज' में दिखाई देता है। इस ग्रंथ में वैष्णवों एवं सिक्खों के किसी प्रकार के संघर्ष के दर्शन नहीं होते, वरन् सर्वत्र समन्वय के ही दर्शन होते हैं। उन्होंने वैष्णव पूजा-विधि एवं संस्कारों में पुजारी-भावना का भी वर्णन किया है। हिन्दुओं को संगठित एवं सशक्त करने का यह समन्ववादी प्रयत्न सर्वथा सराहनीय है। आज भी हिन्दू-सिक्ख एकता के लिये यह बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

कवि ने ज्ञान, कर्म, भक्ति एवं योग आदि का भी समन्वय किया है, जिस पर आगे प्रकाश डाला जायेगा। समन्वय का यह प्रयत्न कोई महान् लोकनायक ही करता है। कबीर एवं तुलसी ने यही काम किया और संतोखसिंह इस दृष्टि से उनके पीछे नहीं हैं। जो कार्य कबीर तथा तुलसी ने काशी में बैठ कर किया वही कार्य संतोखसिंह ने कैथल में बैठ कर यहाँ की परिस्थितियों के अनुकूल किया। वे सच्चे अर्थों में एक समन्वयवादी एवं लोकनायक कवि थे। कबीर से तुलसी का जो दृष्टि-भेद था, वही संतोखसिंह का भी था। कबीर ने राम-रहीम, हिन्दू-तुरक के समन्वय पर भी ज़ोर दिया परन्तु तुलसी एवं संतोखसिंह हिन्दू राष्ट्रवाद के प्रवर्त्तक थे, उन्होंने कहीं भी इस प्रकार के समन्वय का उल्लेख नहीं किया। हाँ, मुसलमानों का विरोध भी उन्होंने कहीं नहीं किया। यहाँ उन्हें किसी संकुचित मनोवृत्ति या साम्प्रदायिकता के प्रचारक नहीं मान लेना चाहिये। उन्होंने सत्य, न्याय, सदाचार, धर्म, सेवा, त्याग, दया, करुणा, परोपकार आदि सद्वृत्तियों की स्थापना द्वारा मानव-धर्म का प्रचार किया है, लोक-मंगल की कामना की है। इसीलिये वे लोकनायक की पदवी के अधिकारी हैं। इस दृष्टि से संतोखसिंह का हिन्दी के गिने चुने प्रतिष्ठित कवियों में सम्मानित स्थान है।

आध्यात्मिक विचार

भाई संतोखसिंह ने 'गुरु प्रताप सूरज' में सिक्ख-मत के सिद्धान्तों का ही विशद प्रतिपादन किया है। ब्रह्म, जीव, माया, जगत् आदि के सम्बन्ध में उनके विचार बहुत कुछ अद्वैतवादी ही हैं। जितना कुछ अन्तर सिक्ख-मत में है वह संतोखसिंह में भी है। संतोखसिंह ने ब्रह्म को 'अकाल पुरुष' शब्द से अभिहित किया है। उनके अनुसार वह ब्रह्म निरंकार, निर्गुण, स्वयंभू, कर्ता पुरुष, अनंत, सत्यरूप, अविनाशी, निर्भय, जगतेश्वर, सर्वव्यापक, अच्युत है। वह समस्त जगत् में प्रकाशवान् है, उसका कोई रूप रंग नहीं परन्तु वह दीन-बन्धु, परम

कृपालु, सुखदाता, स्वामी, गुणवान्, दाता भी है। वह निराकार होते हुए भी सर्वव्यापक एवं सर्वज्ञ है। निर्गुण होते हुए भी सर्वगुण सम्पन्न, कर्त्ता पुरुष है। वह नाना रूपों में प्रकट होता है। वही जगत् का कर्त्ता और कारण है। पृथ्वी, सूर्य, आकाश, अग्नि, पवन आदि सभी उसके भय से अपने-अपने स्वभाव में स्थित हैं। अतः जिस प्रकार 'गुरु ग्रंथ साहिब' में उसे "निर्गुन आपि सरगुन भी ओही" कहा गया है उसी प्रकार संतोखसिंह ने भी उसके निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपों को स्वीकार किया है। वह सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, कृपालु, दयालु, कर्त्ता पुरुष है, यही उसके गुण हैं। अन्यथा वह सगुण साकार नहीं है, वह निर्गुण निराकार ही है।

आत्मा को संतोखसिंह ने सत्, चित्, आनन्द स्वरूप माना है। उनका दृष्टिकोण बहुत कुछ 'गीता' के अनुकूल है। उनका कथन है कि आत्मा अमर है, वह मारे से मर नहीं सकती, अग्नि उसे जला नहीं सकती, जल डुबो नहीं सकता, पवन उड़ा नहीं सकता और शस्त्र काट नहीं सकते। जिस प्रकार मनुष्य जीर्ण वस्त्र को उतार कर नवीन धारण कर लेता है, उसी प्रकार आत्मा जीर्ण शरीर को त्याग कर नवीन को धारण कर लेती है। वह शरीर के साथ नष्ट नहीं होती। आत्मा का परमात्मा से वही सम्बन्ध है जो बूंद और सागर, कुंडल एवं कंचन तथा स्फुलिंग तथा अग्नि का है। शरीर नाशवान्, जड़ एवं असत्य है। जीव जल में पड़े हुए जलयुक्त उस घड़े के समान है जिसके टूटने पर अन्तर का जल (आत्मा) बाहर के जल-समूह (परमात्मा) में मिल जाता है। जीव का आवागमन जल के बुदबुदे के समान है। विषय-लिप्त रहने के कारण जीव अल्पज्ञ है। जब जीव अहंकार (हउमैं) का नाश करके ब्रह्म-ज्ञान के अभ्यास से भगवद्-भक्ति द्वारा ब्रह्मरूप हो जाता है तो वह आवागमन के चक्कर से छूट जाता है। जीव अद्वैतता को प्राप्त कर लेता है और ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान; नामी, नाम, जापक आदि का भेद मिट जाता है।

उनके अनुसार सृष्टि का कर्त्ता और कारण ब्रह्म ही है। उसी के 'हुकम' से सृष्टि की उत्पत्ति होती है। ब्रह्म के 'हुकम' से माया की उत्पत्ति होती है जो समस्त संसार को भ्रम में डाले हुए हैं। जो भी दिखाई देता है वह बाज़ीगर के तमाशे की भाँति माया के ही कारण दिखाई देता है। इन्द्रिय-दमन, अन्तर्वृत्तियों के संयम एवं नाम-जाप से यह भ्रम मिटाया जा सकता है। उस स्थिति में सर्वत्र ब्रह्म ही दिखाई देने लगता है। संतोखसिंह के अनुसार यह जगत् भी अनादि-काल से चला आ रहा है, परन्तु है वह असत्य तथा मिथ्या ही। यह स्वप्न समान अनित्य, जड़ तथा नाशवान् है। यह परिवर्तनशील एवं अवास्तविक है. एक-रस तथा स्थिर नहीं। यहाँ के सम्बन्ध भी अस्थिर और क्षणिक हैं।

माया के सम्बन्ध में कवि का कथन है कि यह ब्रह्म द्वारा उत्पन्न एवं उसके अधीन है। उसी के 'हुकम' से वह जगत् को चलाती है। इस नटनी ने छल-बल से सारे संसार को भ्रम में डाला हुआ है। वह अनिर्वचनीय, शक्तिवान् एवं अनन्त है। वह त्रिगुणात्मक है और उसके दो रूप हैं। एक ब्रह्म के स्वरूप को आच्छादित करने वाला तथा दूसरे से यह

सारा नानत्व प्रतीत होता है। भाई संतोखसिंह ने उससे पार पाने का मुख्यसाधन भक्ति को माना है। ज्ञान, विराग, योग आदि तो पुरुष-रूप हैं, वे उस पर मोहित हो सकते हैं परन्तु भक्ति तो पतिव्रता स्त्री-स्वरूपा है, उसे वह मोह-ग्रस्त नहीं कर सकती। 'गुरु-कृपा' तथा 'गुरु-वाणी' से भी उसके मोह से बचा जा सकता है।

साधना-मार्ग

सिक्ख-मत के अनुरूप संतोखसिंह ने ज्ञान, कर्म, योग, भक्ति आदि सभी साधना-मार्गों को मान्यता दी है। गुरुमत की ही भांति इन साधना-पद्धतियों के बाह्याचारों, मिथ्याडम्बरों आदि का खंडन भी किया है। ज्ञान, कर्म, योग आदि का महत्त्व उन्होंने स्वीकार तो अवश्य किया है परन्तु प्रधानता भक्ति को ही दी है। इसी प्रकार ज्ञान के सम्बन्ध में उनका कथन है कि भक्ति के बिना ज्ञान भी शोभा नहीं देता। जैसे केवल घी पीने मात्र से मनुष्य की छाती भारी हो जाती है, शरीर ढीला हो जाता है, खाना-पीना छूट जाता है, खांसी हो जाती है, मनुष्य के शरीर में अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं, परन्तु यदि उसी घी को मिस्री में मिला कर खाया जाए तो शरीर को बड़ा लाभ होता है। इसी प्रकार केवल ज्ञान से व्यवहार बिगड़ जाता है, मनुष्य अहंकारी हो जाता है, अपने को ही बड़ा समझने लगता है, सत्संगति भी नहीं करता और नरक में गिरता है, मगर भक्ति साथ मिल जाने से ज्ञान सभी का कल्याण करता है। (रा० ५ : ४५ : ३३-४०)। उनके मतानुसार इन सभी साधना-मार्गों की सार्थकता भक्ति से ही है। ज्ञान द्वारा ही ब्रह्म, जीव, जगत् आदि का वास्तविक रूप जाना जा सकता है, इसलिये इसका भी महत्त्व है। संतोखसिंह ने ज्ञान के साधन रूप, विरक्ति, श्रद्धा, श्रवण, मनन, अहंकार-त्याग तथा गुरु-कृपा आदि का भी विशद् विवेचन किया है, परन्तु शुष्क ज्ञान की उन्होंने अवहेलना की है और भक्ति-युक्त ब्रह्म-ज्ञान को ही कल्याणकारी माना है। इसी प्रकार बाह्याडम्बरयुक्त कर्मकाण्ड का भी उन्होंने बलपूर्वक निषेध किया है। उनका कथन है कि सकाम श्रेष्ठ कर्मों से मनुष्य को गंधर्व-लोक की प्राप्ति होती है और निष्काम कर्मों से ब्रह्म के साथ एकरूपता हो जाती है। इसलिये वे निष्काम कर्म को ही श्रेष्ठ मानते हैं। परन्तु कर्म भी भक्ति से ही सत्कर्म होते हैं। उनके मतानुसार कर्म वही श्रेष्ठ है जिसमें 'नाम-स्मरण' किया जाये, उसके अभाव में सभी कर्म शून्य के समान हैं। योग का भी संतोखसिंह ने विशद् विवेचन किया है परन्तु श्रेष्ठ योग उसे ही माना है जिसमें मन की वासनाओं को रोक लिया जाता है, जीव और ब्रह्म की एकता को समझ लिया जाता है और साधक आत्मवृत्ति में लीन रहना सीख लेता है। वे योग की उस अचल समाधि को श्रेष्ठ मानते हैं जिसमें सर्वत्र ब्रह्म ही दिखाई दे, ब्रह्म ही सुनाई पड़े। सोते-जागते, उठते-बैठते, चलते-फिरते, सर्वत्र ब्रह्म के ही दर्शन हों। संतोखसिंह के अनुसार योग भी वही श्रेष्ठ है जिसमें 'सतिनाम' का स्मरण किया जाये। हठयोग की कष्टपूर्ण शुष्क साधना का उन्होंने विरोध किया है। इसी प्रकार विरक्ति की उस सीमा तक तो वे सहमत हैं जो सांसारिक विषय-वासनाओं से लिप्त होने से बचाये, मनुष्य को कमलवत संसार में जीवन व्यतीत करने को प्रेरित करे परन्तु संसार त्याग कर निष्क्रिय बनाने वाली विरक्ति को वे मान्यता नहीं देते। विषय-वासनाओं से विरक्त होकर

जब जीव परमात्मा की भक्ति करता है तभी वह परम गति को प्राप्त करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि संतोखसिंह ने ज्ञान, कर्म, विरक्ति आदि के महत्त्व को स्वीकार करते हुए भी मुख्य भक्ति को ही माना है। वस्तुतः जिस प्रकार तुलसीदास ने ज्ञान, कर्म, योग आदि की विभिन्न साधना-पद्धतियों के संघर्ष को दूर करके उन्हें 'श्रुति सम्मत हरिभगति पथ संजुत बिरति विवेक' द्वारा भक्ति का अनुगामी बना कर समन्वय का प्रयत्न किया है, उसी प्रकार पंजाब में लोकनायक संतोखसिंह ने इस क्षेत्र में 'भगति ज्ञान गुण सानी' कहकर इन विभिन्न साधना-पद्धतियों का समन्वय स्थापित किया और भक्ति के महत्त्व का प्रतिपादन किया। भाई संतोखसिंह के अनुसार ज्ञान, वैराग्य, योग एवं कर्म हरि-मंदिर के चारों द्वारों के समान हैं जिनके द्वारा हरि-मंदिर के भीतर पहुँचा तो जा सकता है परन्तु वहां जाकर भी ब्रह्म प्राप्ति तो 'नाम जाप' (भक्ति) द्वारा ही हो सकती है। अतः ये चारों 'सतिनाम' के ही आश्रित हैं।

'नाम जाप' को उन्होंने साधना का सर्वश्रेष्ठ तत्त्व माना है। उनका कथन है कि 'नाम' के बिना जीव का छुटकारा नहीं हो सकता. 'नाम' ही ऐसा महामंत्र है जिसके जाप से जीव रोग, ताप, कष्ट आदि से छुटकारा पा लेता है, भव-बंधन से मुक्त हो सकता है क्योंकि—

'बिना नाम के नहिं छुटकारा' (रा० ५ : ४६ : ६)

इस साधना-मार्ग के अतिरिक्त संतोखसिंह ने भगवत-प्राप्ति के लिये स्नान, दान, परोपकार, सेवा, त्याग, सदाचार, संयम आदि के महत्त्व का भी विशदता से प्रतिपादन किया है। 'गुरुमुखों' की आदर्श-मर्यादा का निरूपण करते हुए उन्होंने सिक्खों को इस प्रकार के नैतिक एवं शुद्धाचरण का महत्त्व दर्शाया है। ऐसा 'गुरुमुख' ही परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। विलासी, दुराचारी, दुष्कर्मी व्यक्ति को उन्होंने 'मनमुख' का नाम दिया है जो कभी भगवान् को प्राप्त नहीं कर सकता। संतोखसिंह ने हउमैं-त्याग, सत्संगति, संत-सेवा के महत्त्व का भी प्रतिपादन किया है तथा 'हउमैं' (अहंकार) के स्वरूप, परिणाम एवं उसके विनाश के उपायों का सम्यक विवेचन भी किया है। उनके मतानुसार हउमैं के कारण मनुष्य अनेक क्लेश उठाता है, जन्म-मरण का कष्ट भोगता है, उसे न ज्ञान प्राप्त होता है, न मुक्ति मिलती है परन्तु उसका नाश हो जाने से मनुष्य वासना-रहित हो जाता है, वह कर्मफल से मुक्त हो जाता है और आवागमन से बच जाता है। 'हउमैं' का नाश, गुरु-उपदेश, गुरु-कृपा एवं नाम-स्मरण से होता है। सत्संगति एवं संत-सेवा का महत्त्व बताते हुए वे लिखते हैं कि इनसे 'नाम जाप' में मन लगता है और जीव आवागमन से मुक्ति प्राप्त कर लेता है। संत-सेवा महा फलदायक है। सत्संगति के बिना शम, दम, योग, यज्ञ आदि सब विफल हैं। संत-सेवा में तप से भी दस गुणा फल है। संत-सेवा से मनुष्य भवसागर को पार करके परम गति को प्राप्त करता है।

इस आध्यात्मिक साधना की सफलता के लिये संतोखसिंह ने 'गुरु' के महत्त्व का प्रतिपादन किया है। गुरु को वे परब्रह्म परमेश्वर स्वरूप मानते हैं—
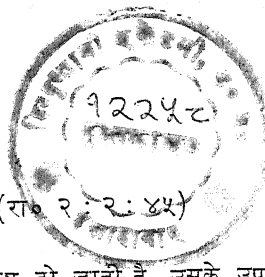
"पारब्रह्म गुर रूप पछाना" (रा० २ : २ : ४५)

उनका कथन है कि गुरु-कृपा से अविद्या नष्ट हो जाती है, उसके उपदेश से 'हउमैं' का नाश होता है और उसकी कृपा से ही भक्ति प्राप्त होती है। गुरु-सेवा के समान कुछ भी नहीं है। गुरु के बिना जीवन सर्वथा निरर्थक है। वे लोग भाग्यशाली हैं जिन्हें मुक्तिदाता सद्गुरु प्राप्त हो जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भाई संतोखसिंह ने 'गुरु प्रताप सूरज' में आध्यात्मिक विचारों का बड़ी गम्भीरता से निरूपण किया है। हमने अपने शोध-प्रवन्ध (गुरु प्रताप सूरज के काव्य-पक्ष का अध्ययन) में उनके आध्यात्मिक विचारों पर विस्तार से प्रकाश डाला है और 'गुरुमत' से उनकी तुलना भी की है। यहां, संक्षेप में ही इनकी चर्चा की गई है। प्रस्तुत संग्रह में हमने क्रम से ब्रह्म, जीव, माया, सृष्टि, भक्ति, योग, ज्ञान, कर्म, हउमैं, सत्संगति, संत-सेवा, गुरु, गुरुमुख आदि विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत उनके आध्यात्मिक विचारों का चयन किया है, जिससे उनका दृष्टिकोण स्पष्टतया सामने आ सके। हम यहां इस ओर संकेत अवश्य कर देना चाहते हैं कि इस प्रकार भारतीय-परम्परा में दार्शनिक विचारों का गम्भीर प्रतिपादन एवं विवेचन करके जो सांस्कृतिक वातावरण संतोखसिंह ने अपने इन काव्य-ग्रंथ में प्रस्तुत किया है, हिन्दी के उस युग के समस्त साहित्य में इसका सर्वथा अभाव है। पंजाब में भी सांस्कृतिक चेतना से युक्त जो साहित्य लिखा गया उसमें भी इस विषय पर इतनी गम्भीरता से और इतने विस्तार से किसी ने प्रकाश नहीं डाला। भाई संतोखसिंह को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ था कि उन्होंने भारतीय-दर्शन एवं गुरुवाणी का गम्भीर अध्ययन किया था। इसलिये उन्होंने स्वमत का प्रतिपादन ही नहीं किया, भारतीय धर्म-साधना में प्रचलित अन्य विचार-धाराओं को भी प्रस्तुत किया है और गुरुओं के परिसंवादों के माध्यम से विरोधी विचारों का खंडन करके स्वमत प्रतिपादन किया गया है। इस दृष्टि से भी यह एक महत्त्वपूर्ण रचना है। इसका दार्शनिक पक्ष अत्यन्त पुष्ट एवं सम्पन्न है जिससे यह ग्रंथ एक बौद्धिक गरिमा से मंडित हो गया है।

अनुभूति तत्त्व

'गुरु प्रताप सूरज' एक धर्म-प्रधान ऐतिहासिक रचना ही नहीं है, काव्यत्व की दृष्टि से भी यह एक अत्यन्त उत्कृष्ट कला-कृति है। मानवीय भावों अथवा मनोवेगों की भी इसमें सफल एवं विशद् अभिव्यंजना हुई है। इसका भाव-क्षेत्र बहुत विस्तृत और व्यापक है और सभी रसों का इसमें पूर्ण परिपाक हुआ है। मुख्य रस शान्त है, उसके पश्चात् वीर-रस का स्थान है। अद्भुत, करुण, वात्सल्य, रौद्र, वीभत्स, भयानक आदि अन्य रसों का चित्रण भी बहुत सजीव रूप में हुआ है।

निर्वेद एवं भक्ति-भावना सम्बन्धी उदाहरण 'गुरु प्रताप सूरज' में बहुत बड़ी संख्या में मिलेंगे। भक्ति के अन्तर्गत कवि ने भक्तों की दीनता, विनय, अनुताप, पश्चाताप, आत्म-

ग्लानि आदि मनोवेगों के साथ उनकी भगवान् के प्रति निष्ठा, श्रद्धा, आत्म-समर्पण आदि का भी सजीव चित्रण किया है। संतोखसिंह के आत्म-दैन्य, ग्लानि, अनुताप एवं पश्चाताप का एक उदाहरण देखिए—

सीर न सुसंग मैं कुसंग में संतोखसिंह
रम्यो नित पापनि सों, मिल्यो कबि धीर ना।
धीर ना धरति काम लंपट कठोर क्रूर,
बोरि्यो मैं बिकारन मैं भयो मन तीर ना।
तीर ना पछान्यो तुमै, दूर करि जान्यो प्रभु,
आपने उधार की बिचारी ततबीर ना।
बीर ना भगत, भेख धारी हित नारी
जिम राखी पैज मेरी हेरो तकसीर ना।
(रि० २ : ५ : ४४)

इसी प्रकार अनेक गुरु-सिक्खों की गुरुओं के प्रति भक्ति-भावना के अन्तर्गत उनकी व्याकुलता, उन्माद, आत्म-निन्दा, ग्लानि, स्मृति, अधीरता, दीनता, चपलता, उत्सुकता, विश्वास, गुरु की हित-भावना, हर्ष, उल्लास आदि मनोवेगों एवं अश्रु, स्वरभंग, स्तम्भ, रोमांच आदि सात्त्विकों की सुन्दर व्यंजना की गई है।

वीर-रस 'गुरु प्रताप सूरज' का एक मुख्य रस है। इसमें वीरता के त्रिविध रूप चित्रित हैं। मुख्य है युद्ध-वीर रूप। इस रचना में कोई २३ युद्धों का वर्णन हुआ है। वीर-रस से सम्बन्धित कुल छंद-संख्या आठ-दस हज़ार होगी। इन युद्ध-वर्णनों की युद्ध-कथा में पूर्णता, सजीवता एवं ओजस्विता है। कवि ने लोहगढ़, भंगाणी, आनन्दपुर एवं चमकौर आदि के युद्धों का बहुत ही विस्तृत एवं विशद् चित्रण किया है। वीरों के उत्साह, साहस, रणोल्लास, धैर्य, गर्वोक्तियों आदि के साथ सेना की तैयारी, सेना-प्रस्थान, रणवाद्यों की भीषण ध्वनि, योद्धाओं की साज-सज्जा, धौंसों की धुंकार, खड्गों, भालों की चमक-दमक, तोपों व बंदूकों की दनादन-तड़ातड़, अश्वों की हुंकार, हाथियों की चिंघाड़, वीरों के ओज-पूर्ण अनुभावों, पौरुषपूर्ण कार्यों, युद्ध-कुशलता, विजय पर हर्ष-ध्वनि, भागती हुई सेना की दुर्दशा, रक्त-रंजित शवों से आपूरित, गिद्धों, शृगालों से भरी हुई युद्ध-भूमि आदि का सजीव चित्रण करने में कवि को असाधारण सफलता प्राप्त हुई है। योद्धाओं के प्रहार-प्रतिप्रहार, द्वन्द्व युद्ध आदि के भीषण, प्रचंड एवं ओजपूर्ण चित्र तो बहुत ही श्रेष्ठ हैं। युद्ध-कौशल, युद्ध-नीति एवं युद्ध-विद्या से सम्बन्धित अनेक स्थल इसमें हैं और साथ ही सैनिकों के मनोविज्ञान का भी सुन्दर चित्रण किया गया है। पात्रों के वीरतापूर्ण, साहस-युक्त, युद्धोल्लास से भरे हुए चरित्र खूब उभरे हैं और कवि ने दोनों पक्षों के वीरों की वीरता, धीरता, निर्भीकता, साहस, उल्लास, उत्साह, दृढ़ता, युद्ध-कुशलता आदि का सजीव चित्रण किया है। पैदेखाँ

और गुरु हरिगोबिन्द के द्वन्द्व युद्ध इस दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। यहाँ दोनों ही वीरों का ओजस्वी चरित्र खूब उभर कर सामने आता है। गुरुपक्ष के वीरों की वीरता में उदात्तता है। योद्धाओं की वीरता का आदर्श सर्वत्र बनाये रखा गया है।

इस ग्रंथ में युद्धों का वर्णन पंजाब की 'सिक्ख वीर-काव्य परम्परा' के अनुकरण पर सांस्कृतिक एवं सामूहिक राष्ट्रीय-चेतना से पूर्ण है जिन्हें 'धर्म-युद्ध' का नाम दिया गया है[१]। हिन्दी में इस युग में तथा इससे पूर्व कितने ही वीर-काव्य लिखे गये परन्तु उनमें इस प्रकार की वृहत्तर युग-चेतना का अभाव है। पंजाब में सिक्ख गुरुओं के जीवन पर आधारित जो वीर-काव्य लिखे गये उनमें अत्याचार, अनीति, अन्याय, अधर्म अथवा असत्य के विरुद्ध लड़े गये धर्म-युद्धों का चित्रण हुआ है। इस दृष्टि से 'गुरु प्रताप सूरज' का भी एक विशिष्ट महत्त्व है। प्रस्तुत संग्रह में हमने संतोखसिंह द्वारा वर्णित विभिन्न युद्धों में से कुछ प्रसंग उद्धृत किये है। उनके द्वारा वर्णित एक युद्ध का तो लगभग पूर्ण चित्र प्रस्तुत किया गया है जिससे युद्ध-कथा की पूर्णता एवं सजीवता का सही रूप सामने आ सके। कुछ ऐसे उदाहरण भी दिये गये हैं जिनसे वीर-रस सम्बन्धी अन्य अवयवों पर प्रकाश पड़ता है और कवि की काव्य-कुशलता, कल्पना-शक्ति एवं वीर-भावना की अभिव्यक्ति होती है। संतोखसिंह निःसंदेह वीर-रस के श्रेष्ठ कवि हैं।

श्रृङ्गार का चित्रण 'गुरु प्रताप सूरज' में बहुत सीमित एवं मर्यादित है। सौन्दर्य-चित्रण हरिपुर की सुन्दर स्त्रियों अथवा जैमल-कन्या सम्बन्धी प्रासंगिक कथाओं के अन्तर्गत परम्पराभुक्त उपमानों की सहायता से रीतिकालीन पद्धति पर ही हुआ है। उसमें कहीं-कहीं ऊहात्मकता के भी दर्शन होते हैं। परन्तु कवि ने कहीं भी रीतिकालीन श्रृङ्गार-परम्परा के अनुकरण पर विलासिता, कामुकता, रसिकता, अश्लीलता; कामोत्तेजक चेष्टाओं, हावों, अनुभावों आदि का चित्रण नहीं किया। कहीं-कहीं प्रेम की पवित्रता, शुद्धता एवं उच्चता के दर्शन अवश्य होते हैं। विरह के अन्तर्गत भी रीतिकालीन नायिकाओं की भाँति आसमान-पाताल को एक कर दिखाने वाले चमत्कारपूर्ण चित्र कहीं दिखाई नहीं देते। कहीं-कहीं गुरु-पत्नियों की चिन्ता, आशंका, आकुलता, अधीरता, दर्शनाभिलाषा आदि मनोवेगों एवं अश्रु, वैवर्ण, स्वरभंग, क्षीणता, स्तम्भ आदि सात्विकों के अत्यन्त मर्यादित, संयत एवं अनुभूतिपूर्ण चित्र अवश्य मिलते हैं। वस्तुतः श्रृङ्गार के क्षेत्र में कवि ने आदर्श से काम लिया है और कहीं भी भौंडी तथा कुत्सित वृत्तियों को उत्तेजित करने का प्रयत्न नहीं किया। यही एक युग-प्रवर्त्तक लोकनायक का कर्त्तव्य होता है कि वह उदात्त एवं उच्च मानवीय वृत्तियों को उत्तेजित करता है; गर्हित, कुत्सित तथा अनैतिक भावनाओं को प्रश्रय नहीं देता।

गुरु हरिगोबिंद तथा गोबिन्दसिंह के बाल-जीवन के प्रसंगों में कवि ने उनके मनमोहक

---

१. विस्तृत विवेचन के लिए देखिए हमारा 'पंजाब के हिन्दी वीर-काव्य' शीर्षक का अध्याय जो पंजाब हिन्दी विभाग द्वारा सम्पादित 'पंजाब के हिन्दी साहित्य के इतिहास' में दिया गया है।

रूप-सौन्दर्य, सुन्दर वेश-भूषा, मनोहारी शिशु-कौतुक एवं चपल बाल-क्रीड़ाओं आदि के साथ माता-पिता के हर्ष, उल्लास, आशंका, चिंता, अभिलाषा, उत्सुकता, आकुलता, उत्कंठा, अधीरता आदि मनोवेगों का अत्यन्त मार्मिक एवं सजीव चित्रण किया है। पंजाब के सिक्ख प्रबन्ध-काव्यों की ही यह एक विशेषता है कि उनमें वात्सल्य का इतना विशद चित्रण हुआ है जितना हिन्दी के किसी भी अन्य प्रबन्ध-काव्य में नहीं हुआ। मार्मिकता, रसात्मकता, तीव्रानुभूति एवं काव्य-कुशलता की दृष्टि से 'गुरु प्रताप सूरज' का वात्सल्य चित्रण उन सब में उत्तम है।[१] प्रस्तुत संग्रह में हमने उनके वात्सल्य सम्बन्धी कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये हैं।

इसी प्रकार इस काव्य-कृति में शोक-सम्बन्धी व्याकुलता, विह्वलता, गुण-स्मरण, उद्वेग, अनुताप, प्रलय, अश्रु, वैवर्ण्य, दुख, व्यथा, विषाद, स्तंभ, वैपथु, उन्माद, मूर्च्छा, प्रलाप, रोमांच, अधीरता, भूमिपतन, केश उखाड़ना, निःश्वास, अपस्मार, व्याधि, जड़ता आदि मनोवेगों, सात्विकों एवं संचारी भावों की मार्मिक व्यंजना हुई है। अद्भुत-रस से सम्बन्धित बहुत सी चमत्कारपूर्ण, विस्मयजनक एवं अलौकिक घटनाओं का वर्णन किया गया है और विस्मय विमुग्ध लोगों के अनुभावों का भी सजीव चित्रण हुआ है। इसी प्रकार अन्य विविध भावों, अनुभावों, मनोवेगों आदि का भी अनुभूतिपूर्ण एवं मार्मिक चित्रण करने में कवि पूर्णतया सफल रहा है। प्रस्तुत संग्रह में हमने अलग-अलग शीर्षक से उनके कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। इन उदाहरणों से कवि की भावानुभूति की विशदता, गहराई, तीव्रता एवं मनोवैज्ञानिकता का रूप स्पष्ट हो जाता है। निःसंदेह महाकवि संतोखसिंह मानवीय भावों के सच्चे पारखी और कुशल चितेरे थे और एक लोकनायक कवि की भाँति उन्होंने मानवीय सद्वृत्तियों को उभारने एवं उनमें उदात्तता लाने का स्तुत्य प्रयत्न किया है। उनकी भावाभिव्यक्ति में, चाहे वह प्रेम से सम्बन्धित हो या घृणा से, चाहे साहस एवं उत्साह से प्रेरित हो या भय से, सर्वत्र उदात्तता के दर्शन होते हैं।[२]

प्राकृतिक सुषमा

मध्ययुगीन हिन्दी-साहित्य में प्रकृति का चित्रण शृङ्गारिक भावनाओं के उद्दीपन हेतु अथवा आलंकारिक रूप में ही हुआ है। परन्तु भाई संतोखसिंह ने उसके स्वाभाविक, अकृत्रिम सौन्दर्य का भी स्वतन्त्र, संश्लिष्ट, यथार्थ एवं सजीव चित्रण किया है। विभिन्न ऋतुओं, पर्वतों, वनों, उपवनों, नदियों, सरोवरों, निर्झरों, वृक्षों, पुष्पलताओं एवं प्रभात आदि की सुषमा का जितना मार्मिक एवं चित्रात्मक वर्णन संतोखसिंह ने किया, इस युग के साहित्य में ढूंढ़ने से भी नहीं मिलेगा। हेमकूट पर्वत एवं पाऊंटा के सघन वन का विस्तृत और संश्लिष्ट चित्र उनकी अद्भुत बिम्बविधायिनी कल्पना-शक्ति, सूक्ष्म निरीक्षण एवं चित्रात्मक अभिव्यक्ति-

---

१. पंजाब के सिक्ख प्रबन्ध-काव्यों में वात्सल्य रस के विस्तृत विवेचन के लिये देखिये भारतीय हिन्दी परिषद के २१वें अधिवेशन में पढ़ा गया मेरा शोध पत्र 'पंजाब के हिन्दी प्रबन्ध-काव्यों में वात्सल्य रस', प्रकाशित सप्तसिंधु—जनवरी ६६। २. भावों की विस्तृत विवेचना के लिये देखिये हमारा शोध-प्रबन्ध 'गुरु प्रताप सूरज' के काव्य पक्ष का अध्ययन।

कौशल का परिचायक है । प्रस्तुत संग्रह में प्रकृति सम्बन्धी कुछ चित्र भी दिये गये हैं जिससे उनकी स्वाभाविक रमणीयता का बोध हो सके ।

वस्तु-सौन्दर्य

प्रकृति के अतिरिक्त कवि ने अन्य वस्तुओं, नगरों, ग्रामों, घोड़ों, पशु-पक्षियों, तंबुओं, स्त्री-पुरुषों की वेश-भूषा, आभूषणों, व्यंजनों, सभा-मंडपों आदि का भी बहुत विशद एवं सजीव चित्रण किया है । विवाह, आखेट, युद्ध, होली आदि का वर्णन तो बहुत ही मार्मिक बन पड़ा है । हरिगोबिन्द तथा गोबिन्दसिंह के विवाहों का पूर्ण चित्र कवि ने उपस्थित किया है । सगाई से लेकर, बारात के चढ़ने एवं वधूपक्ष के घर पहुँचने, विदाई एवं वधू को लेकर वापिस आने तक के सारे संस्कारों, विधियों आदि के साथ दोनों पक्षों के हर्षोल्लास, उत्साह आदि का अत्यन्त विशद एवं सरस चित्रण किया गया है । इसी प्रकार जन्मोत्सवों के भी मधुर एवं उल्लासपूर्ण चित्र अंकित किये गये हैं । कवि में विभिन्न अवसरों, स्थितियों, पर्वों, उत्सवों, स्थानों के सामूहिक चित्र उपस्थित करने की भी अद्भुत क्षमता है और उनका यथा-तथ्य बिम्ब चित्रित करने में उसे पूर्ण सफलता मिली है । आखेट के चित्रण भी बड़े रोमांचक, साहसपूर्ण, उत्साहवर्धक, सजीव, ओजपूर्ण एवं यथार्थ हैं । होली-वर्णन में शुद्ध सांस्कृतिक दृष्टि से उसके हास-परिहासपूर्ण, आमोद-प्रमोद युक्त, रंग एवं गुलाल से भरे हुए चित्र प्रस्तुत किये गये हैं । इन वर्णनों में युग-चेतना, वीर-भावना एवं सांस्कृतिक दृष्टि भी उभर आई है । वस्तुतः वस्तु-वर्णन में विभिन्न सामूहिक चित्र प्रस्तुत करने में जितनी सफलता संतोखसिंह को मिली है, उतनी उस युग के किसी भी अन्य कवि को नहीं मिली है । अन्य किसी भी कवि ने इतने स्वाभाविक, यथातथ्य सजीव चित्र अंकित ही नहीं किये । इस संग्रह में हम ऐसे कुछ ही चित्र प्रस्तुत कर सके हैं । उद्देश्य यही है कि उनकी चित्रात्मक बिम्ब विधायिनी कल्पना-शक्ति का कुछ आभास मिल सके और यह अनुभव प्राप्त हो सके कि यह कवि केवल धर्म का प्रचार करने वाला, दार्शनिक गुत्थियों को सुलझाने वाला, समाज का नैतिक उन्नयन करने वाला, राष्ट्रीय वीर-भावना को जागृत करने वाला, विशृङ्खलताओं में समन्वय स्थापित करने वाला लोकनायक कवि ही नहीं था, वरन् प्रकृति की सुषमा से मोहित होने वाला, मानवीय मनोवेगों एवं अनुभूतियों से प्रभावित होने वाला और विविध वस्तुओं के सजीव तथा मोहक चित्र उपस्थित करने वाला एक यशस्वी, सशक्त एवं सक्षम कलाकार भी था ।

अभिव्यक्ति शिल्प

भाषा—उनके काव्य में भाव-पक्ष एवं कला-पक्ष का सुन्दर समन्वय हुआ है । उसमें अनुभूति की तीव्रता है, कल्पना की उड़ान है, बुद्धि की गम्भीरता है और अभिव्यक्ति की स्पष्टता और सक्षमता है । भाषा पर उनका अद्भुत अधिकार था । उनका शब्द-भंडार अपरि-मित था । संस्कृत, हिन्दी, पंजाबी, फ़ारसी का उन्हें विशद ज्ञान प्राप्त था । उन्होंने अपने काव्य में परिमार्जित, परिनिष्ठित ब्रज भाषा का प्रयोग किया है । बीच-बीच में संस्कृत, फ़ारसी, अरबी, पंजाबी, लहंदी, पहाड़ी आदि भाषाओं के शब्द भी प्रचुर मात्रा में आए हैं ।

उनकी भाषा में सरसता, तरलता, मार्दव, ओज, प्रवाह एवं शक्ति है। शैली में सजीवता, सामर्थ्य एवं प्रेषणीयता है। उसमें माधुर्य, प्रसाद एवं ओज-गुणों का समावेश किया गया है। कथा में सरल, स्वाभाविक परन्तु सक्षम शैली का प्रयोग किया गया है, परन्तु मंगलाचरण की शैली चमत्कारपूर्ण एवं अलंकृत है। भाषा की शक्ति बढ़ाने के लिये तथा उसमें व्यावहारिकता लाने के लिये बहुत से मुहावरों, लोकोक्तियों, सूक्तियों का भी प्रयोग किया गया है। वास्तव में वे एक सिद्धहस्त कवि हैं और भाषा एक कुशल खिलाड़ी की भांति उनके संकेतों पर नाचती है, भावों को सजीव रूप में लाकर उनके सामने खड़ा कर देती है। भाषा की यह शक्ति, अभिव्यक्ति की यह कुशलता, शैली की यह सक्षमता उनके काव्य-कौशल को प्रकट करती है। उनकी भाषा-शैली में गरिमा, सौष्ठव, परिमार्जन, प्रवाह, सक्षमता, विशदता, व्यापकता और उदात्तता है। वह लोकोपयोगी एवं धर्माश्रित काव्य के लिए उपयुक्त तो है ही, काव्य-मर्मज्ञों एवं रसज्ञों के लिये भी उसमें प्रचुर प्रकाश है।

अलंकार सौष्ठव—भाई संतोखसिंह रसवादी कवि एवं आचार्य थे। वे उन्हीं अलंकारों को श्रेष्ठ मानते हैं जो रस का उत्कर्ष करते हैं। यही कारण है कि उनके समस्त काव्य में अलंकार गुरु जी के चरित्र की महत्ता स्थापित करने के लिए, गुण एवं स्वभाव के चित्रण के लिए, भाव-अनुभाव चित्रण के लिए, कार्य-व्यापार में तीव्रता लाने के लिये, घटना-चित्रण में सजीवता लाने के लिये तथा दार्शनिक एवं नैतिक तथ्यों की स्पष्टता के लिये सहायक होकर ही आये हैं। मंगलाचरण में उन्होंने रीतिकालीन अलंकरण-प्रवृत्ति का अनुकरण करते हुए अपनी अलंकरण-शक्ति का परिचय देने के लिये अलंकारों का, विशेषरूप से यमक, अनुप्रास, श्लेष आदि शब्दालंकारों का चमत्कारिक रूप में भी प्रयोग किया है। परन्तु अन्यत्र सर्वत्र स्वाभाविक शैली का प्रयोग किया गया है और अलंकार भावाभिव्यक्ति के सहायक होकर आये हैं। अनुप्रास, यमक, श्लेष, पुनरुक्तिप्रकाश, वीप्सा आदि शब्दालंकारों के अतिरिक्त उपमा, अनन्वय, रूपक, उल्लेख, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, विभावना, विरोधाभास, विषम, परिसंख्या, अप्रस्तुतप्रशंसा, अर्थान्तिरन्यास, दृष्टान्त, उदाहरण, निदर्शना, व्याजस्तुति, दीपक, परिकर, व्यतिरेक, विनोक्ति, संदेह, भ्रम, अपह्नुति आदि अर्थालंकारों की भी उनके काव्य में सुन्दर छटा दिखाई देती है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि सादृश्यमूलक अलंकारों की तो मालाएं जड़ी हुई हैं। बड़े-बड़े सरस रूपक बाँधने में भी वे बड़े कुशल हैं। गुरु-चरित्र का वर्णन कवि ने उपमा तथा रूपक के द्वारा किस प्रकार किया है, देखिये—

बीच बिराजहिं सतिगुर वैसे, सभि ग्रह में सूरज जैसे।
निसा अविद्या निकट न आवै निंदक तसकर देखि पलावै ।।३।।
पेचक बेमुख अंधे रहे, नहीं प्रकाश महातम लहै।
संत कमल विकसे हरखाए, अलि जग्यासी जंहि मंडराए ।।४।।
मति बहु रीति उड़ग जग माहीं, परम प्रकाश सु पावति नाहीं।
कैरव कानन गन दुरचारी सभि मुरझाइ रहे तिस बारी ।।५।।

सदगुन जुति नर जागत भए, विषइ जीव तमचर सुपताए ।

(रा० १ : २७)

गुरु जी को सूर्य के समान बताकर कवि ने अविद्या-रूपी रात्रि, निंदक-रूपी चोर, विमुख-जन-रूपी उल्लू, सन्त-रूपी कमल, जिज्ञासी-रूपी भ्रमर, विविध मतमतान्तर-रूपी उडगन, दुराचारी-रूपी कैरव (कुमुद) तथा विषयी-जन-रूपी चमगादड़ों के सम्बन्ध को देखिये कितनी खूबी से चित्रित किया है । गुरु-प्रकाश से अविद्या, अज्ञान-रूपी रात्रि निकट नहीं आती, निंदक-रूपी चोर भाग जाते हैं, विमुख-जन-रूपी उल्लू अँधे हो जाते हैं, और संत-रूपी कमल खिल उठते हैं, जिज्ञासी-रूपी भ्रमर मंडराने लगते हैं, विभिन्न मतमतान्तर उडगनों की भाँति विलीन हो जाते हैं । कुमुद-रूपी दुराचारी मुरझा जाते हैं, सदगुणी जन जागते रहते हैं और विषयी जीव सो जाते हैं । यह है संतोखसिंह का काव्य-कौशल एवं अलंकरण-चमत्कार ।

इसी प्रकार निदर्शना अलंकार का यह उदाहरण देखिये जिसकी सहायता से कवि ने दुष्टों के कुटिल स्वभाव की सजीव व्यंजना की है—

सिकता महिं ते जतन करि तेल जु निकसावै ।
कमठ पीठ पर भाँति किस बहु बार जमावै ।
सिर पर राशभ ससे के उगवाई बिखाना ।
तौ दुशटनि के रिदे महिं गुण करहि महाना ।
जो सरपन मन म्रिदुलता क्यों हूँ हुई जाई ।
तउ दुशटनि के सरलता उर महिं उपजाई ।

(रा० ३ : २५ : ३१-३३)

अर्थात् जिस प्रकार रेत में से तेल नहीं निकाला जा सकता, कमठ-पीठ पर बाल नहीं उगाए जा सकते, ससे के सिर पर सींग नहीं लगाए जा सकते, उसी प्रकार दुष्टों के हृदय में गुण उत्पन्न नहीं किये जा सकते । 'निदर्शना' के द्वारा कवि ने दुष्टों की कुटिलता एवं गुण हीनता की यहां भव्य व्यंजना की है ।

अप्रस्तुत योजना—इन अलंकारों में जो अप्रस्तुत विधान है उसमें भी सर्वत्र रस-स्निग्धता एवं भाव-प्रवणता है । उपमान योजना के साथ एक संश्लिष्ट चित्र सामने खड़ा हो जाता है, जो मन पर गहरा प्रभाव डालता है । कवि का उद्देश्य इस अप्रस्तुत विधान द्वारा वस्तु, भाव, रूप, क्रिया, गुण आदि के स्वरूप की प्रतीति करवाना ही रहा है । उपमानों का प्रयोग गुण-स्वभाव के अनुकूल ही किया गया है । कवि ने अधिकतर परम्परा-युक्त उपमानों का ही प्रयोग किया है । इससे उनका काव्य भाव-प्रवण, प्रभावशाली एवं सहज ग्राह्य हो गया है । घन, तड़ित, इन्द्रधनुष, पंकज, भ्रमर, खंजन, सागर, मीन, चातक, चन्द्रमा, सूर्य, हिम, हंस, चकोर, मृग, सिंह, गज आदि उपमानों की सौन्दर्य-प्रतीति, सहज संवेद्य है ।

उपमान रूप में कवि ने कमल का अत्यधिक प्रयोग किया है। परन्तु भाव-विशेष के साथ वह कोमलता, निर्मलता, स्वच्छता, सौन्दर्य, स्निग्धता, प्रफुल्लता एवं अलिप्तता का प्रतीक होकर आया है। कवि के सभी उपमान भाव-व्यंजक एवं सौन्दर्य-वर्द्धक हैं। कहीं-कहीं तो अपनी उपमान योजना से कवि ने बहुत ही अनूठे चित्रों का निर्माण किया है। श्री हरिगोबिन्द के विवाहोत्सव पर दोनों पक्षों के आनन्द और उल्लास की व्यंजना देखिये कवि ने किस प्रकार की है—

दुहु दिशनि मेल इस रीति कीनि,
जनु धोखि धोखि घन मिलति पीन।

मेघों के गरज-गरज कर मिलने से कवि ने उनके हर्ष, उल्लास और आह्लाद की भव्य व्यंजना की है। मेघों के मिलने से तड़ित का उज्ज्वल प्रकाश होता है और रसपूर्ण वर्षा होती है। यहां भी दोनों पक्षों के मिलन से सुख का प्रकाश एवं आनन्द की रस-वृष्टि सांकेतिक है। इस प्रकार के भाव-व्यंजक, सौंदर्य-विधायक एवं प्रभावात्मक उपमान बड़ी संख्या में 'गुरु प्रताप सूरज' में मिलेंगे। नेत्रों एवं पुतलियों की रमणीयता का चित्र देखिये कमल एवं भ्रमर के उपमानों द्वारा कितना सुन्दर बन पड़ा है—

दिनकर चढ्यो विलोचन खोले। मनहु कमल दल अली अडोले॥
(रा० १२ : ३४ : ५)

कहीं-कहीं कवि ने नवीन उपमान योजना से भी काम लिया है, परन्तु कहीं भी उसमें ऊहात्मकता, क्लिष्ट कल्पना अथवा चमत्कार-प्रदर्शन की प्रवृत्ति नहीं है। ऐसे उपमान भी बिम्बविधायक, भाव-व्यंजक एवं सहज-संवेद्य हैं। अश्व की तीव्र गति एवं चंचलता को व्यक्त करने के लिए कवि ने 'नागरी नैन' की चंचलता से उसकी समानता की है जो बहुत ही उचित एवं सार्थक है, एक नया बिम्ब है—

बार बार फुरकति बल ऐन चंचल मनहु नागरी नैन।

उसके बार-बार उछलने को मोतियों के थाल में थिरकने अथवा जल में मीन के इधर-उधर इतराने के समान कहना भी बहुत अच्छा बिम्ब प्रस्तुत करता है। यथा—

छाती छुवे छाल पग दौन। छित लगि पाछलि पाइ सु औन।
थरकति मनुहुँ थार महिं मोती। जनु जल मछली इत उत होती।
(रा० ६ : ४६ : १३)

कवि ने पौराणिक कथाओं से, ऐतिहासिक घटनाओं से तथा ग्राम्य-जीवन से अथवा जीवन की सामान्य वस्तुओं से भी कुछ उपमानों का चयन किया है जो उनकी सारगर्भित दृष्टि, मौलिक कल्पना एवं सूक्ष्म निरीक्षण के परिचायक है। उन्होंने एक श्रेष्ठ कलाकार की भाँति

मूर्त के लिये मूर्त, मूर्त के लिये अमूर्त अमूर्त-के लिये मूर्त, मूर्त के लिए मूतार्मूत अथवा अमूर्त के लिये अमूर्त रूप में भी उपमान-योजना की है। परन्तु सर्वत्र संवेदनशीलता, भाव-व्यंजना एवं औचित्य का ध्यान रखा है। चमत्कार-प्रदर्शन के मोह में कहीं भी उन्होंने किसी अस्पष्ट, असंवेद्य, अग्राह्य उपमान का प्रयोग नहीं किया। अंगददेव जी एवं अमरदास जी को क्रमशः ज्ञान एवं विराग के समान कहना उनकी विद्वत्ता, सजीव कल्पना-शक्ति एवं निपुण कला-कौशल का परिचायक है। उदाहरण इस प्रकार है—

कर सों कर गहि करि पुन चले।
ग्यान विराग मनहु दो मिले॥

(रा० १ : २५ : ११)

छन्द-विधान

भाई संतोखसिंह ने 'दशम ग्रंथ', 'गुरु शोभा', 'गुरु विलास', 'महिमा प्रकाश' आदि ग्रंथों का अनुकरण करते हुए दोहा-चौपई को मुख्य काव्य-पद्धति के रूप में ग्रहण किया है और उन्हीं के अनुकरण पर दोहा-हाकल, दोहा-भुजंगप्रयात, दोहा-सवैया, दोहा-रसावल आदि अन्य अनेक पद्धतियों का भी प्रयोग किया है। इस क्षेत्र में कवि ने कुछ नवीन पद्धतियों को भी अपनाया है। इसके अतिरिक्त बीच में हाकल, पाधड़ी (पद्धरि), अडिल, निसानी, ललितपद, त्रिभंगी, सोरठा, अमृतधुनि, चाचरी, रसावल, मधुभार, रुणझुण, हरिबोलमना, नवनामक, हंसक, साबास, प्रमाणिका, तोमर, चम्पकमाला, भुजंगप्रयात, तोटक, निशिपालक, चंचला, नराज, सवैया, अनुष्टुप, कवित्त, अनंगशेखर, सिरखंडी, बहरे मुतकारिब मुसम्मन मकसूर महज़ूफ़ आदि कोई ३३ छंदों का प्रयोग किया है। इस छन्द-विविधता में भी वे अपने पूर्व के सिक्ख-प्रबन्धों से ही प्रभावित हैं। परन्तु इनके छन्दों में 'दशम ग्रंथ' की भाँति अस्थिरता अथवा शिथिलता कहीं नहीं है। कहीं भी इनके छन्द दोषयुक्त अथवा प्रवाह-हीन नहीं हैं। संतोखसिंह को छन्द-शास्त्र का समुचित ज्ञान प्राप्त था और विविध छन्दों का उन्होंने साधिकार प्रयोग किया है। उनकी सब से बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने विविध छन्दों का प्रयोग रस, भाव अथवा प्रसंग के अनुकूल किया है। युद्ध-वर्णन में विविधता, सजीवता एवं ओज बनाए रखने के लिये उन्होंने कोई २५ छंदों का प्रयोग किया है। युद्ध के हल्के वातावरण को प्रकट करने के लिये चौपई, पद्धरि, निसानी, ललितपद, सवैया, कवित्त आदि अपेक्षाकृत बड़े और मंदगति छंदों का प्रयोग किया है, जबकि युद्ध की तीव्र गति, प्रचंडता एवं भीषणता को व्यक्त करने के लिये नराज, चंचला, मधुभार, रसावल, चाचरी, हंसक, साबास, रुणझुण आदि क्षिप्रगति एवं लघु छन्दों का अधिक प्रयोग किया गया है। यही कारण है कि एक ही तरह के लम्बे-लम्बे युद्ध वर्णनों में एकरसता एवं नीरसता नहीं आने पाती। छन्द प्रयोग के समय उन्होंने भाषा की प्रकृति का भी ध्यान रखा है। संस्कृत पदावली के लिये संस्कृत छन्द अनुष्टुप का, फ़ारसी शब्दावली के लिये फ़ारसी छन्द 'बहरे मुतकारिब मुसम्मन मकसूर महज़ूफ़' का तथा पंजाबी भाषा के लिये सिरखंडी छन्द का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार कवि ने भाव,

भाषा तथा प्रसंग की उचित एवं समर्थ अभिव्यक्ति के लिये तदनुरूप संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, फ़ारसी, पंजाबी के विविध छन्दों का प्रयोग किया। छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े छन्द को अपनाया। इस प्रकार का विविध छन्दों का कुशल प्रयोग उनकी काव्य-प्रतिभा एवं काव्य-कौशल का परिचायक है। छन्दों में संगीतात्मकता की अभिवृद्धि के लिये अन्त्यानुप्रास, यत्यानुप्रास, अन्तरानुप्रास आदि के प्रयोग से भी पूर्ण लाभ उठाया गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भाई संतोखसिंह एक महान् कलाकार हैं। उनका काव्य सांस्कृतिक-चेतना, राष्ट्रीय-जागरण एवं सामाजिक-उन्नयन की भावना से ओतप्रोत है। वे एक युग-प्रवर्त्तक, युग-स्रष्टा एवं लोकनायक कवि हैं। उनका 'गुरु प्रताप सूरज' जीवन्त रस से पूर्ण एक शक्तिशाली एवं प्रभावपूर्ण काव्य है। काव्यत्व की दृष्टि से यह एक उत्तम कलाकृति है और उस युग के साहित्य में ही नहीं, भारत के समस्त साहित्य में यह गौरवपूर्ण स्थान की अधिकारिणी है। खेद है कि इस रचना को और इसके प्रणेता महाकवि संतोखसिंह को अभी तक साहित्य में समुचित स्थान नहीं मिला है। इसका कारण हमारी उनके प्रति उपेक्षा है। गुरुमुखी लिपि में होने के कारण उनका काव्य विद्वानों के उचित अध्ययन और विवेचन का विषय नहीं बन सका। ५१,८२९ छन्दों के इस बृहद् ग्रंथ का संपादन और प्रकाशन एक बड़ी योजना के द्वारा ही सम्भव है। संपादन यदि परिश्रम करके कर भी लिया जाय तो उसके प्रकाशन की समस्या होगी। इन्हीं कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए मैंने उनके इस काव्य से कुछ अंश इस संग्रह में संकलित किये हैं। प्रयत्न यही रहा है कि उनके भाव-जगत्, मानसिक-चेतना एवं काव्य-प्रतिभा के सभी तत्त्वों को यथोचित स्थान दिया जा सके यद्यपि यह इतने छोटे संकलन में पूर्णतया सम्भव नहीं था। यहां उनके आध्यात्मिक विचारों एवं वीर-रसात्मक अंशों को अधिक स्थान दिया गया है। अन्य रसों, प्रकृति-चित्रण एवं वस्तु-व्यंजना आदि के भी कुछ अंश दिये हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि विद्वान इस संग्रह से कवि की महान् चेतना तक पहुंचने का प्रयत्न करेंगे और उनके सम्पूर्ण साहित्य के संपादन एवं प्रकाशन का कोई हल निकालेंगे। तुलसी-सा लोकनायक, कबीर-सा समन्वयवादी, सूर-सा सरस एवं केशव-सा चमत्कारवादी महाकवि संतोखसिंह हिन्दी के प्रथम चार कवियों में स्थान पाने का अधिकारी है।

पंजाब में गुरुमुखी लिपि में रचित ब्रज-भाषा का अमूल्य भंडार है। इस सारे साहित्य का सम्पादन करके उसे हिन्दी में प्रकाशित करने की आवश्यकता है। परन्तु खेद है कि अभी तक इस ओर किसी भी व्यक्ति अथवा संस्था ने ध्यान नहीं दिया। पंजाब विश्वविद्यालय को यह श्रेय प्राप्त है कि उसने सबसे पहले इस साहित्य को प्रकाश में लाने का बीड़ा उठाया है। गुरु गोबिंदसिंह के जीवन पर आधारित दो लघु प्रबन्धों—'गुरु शोभा' तथा 'जंगनामा गुरु गोबिन्दसिंह' को, जोकि गुरु गोबिन्दसिंह के दो प्रतिष्ठित दरबारी कवियों—सेनापति एवं अणीराय की प्रामाणिक रचनाएँ हैं जिन्हें पंजाब विश्वविद्यालय पहले ही प्रकाशित कर चुका है। यह इस श्रृङ्खला में तीसरी पुस्तक है। मैं अपने उपकुलपति महोदय श्री सूर्यभानु जी

का हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने इस साहित्य के महत्त्व को समझते हुए, इसे विश्वविद्यालय से प्रकाशित किये जाने की स्वीकृति दी है। मेरा विश्वास है कि इस साहित्य के प्रकाश में आने से हिन्दी साहित्य की ही श्रीवृद्धि नहीं होगी, हिन्दुओं और सिक्खों की भावात्मक-एकता भी दृढ़ होगी और राष्ट्रीय-भावना को भी बल मिलेगा ।

पंजाब विश्वविद्यालय स्नातकोत्तर प्रादेशिक केन्द्र
रोहतक
१५ अगस्त, १९६८

—जयभगवान गोयल

॥ ॐ ॥

१ ओंकार सतिगुरप्रसाद ॥

—○—

अथ 'श्री गुर प्रताप सूरज' ग्रन्थ प्रिथम रासि लिख्यते ।

—○—

१ अंशु

[मंगलाचरण]

(इष्टदेव)

दोहरा

तीनोकाल सु अचल रहि अलंब[1] सकल जगजालि ।
जाल काल[2] लखि मुचति[3] जिसि करता पुरुष अकाल ॥१॥
छोनी,[4] सूरज, अगनि, जम, वायु त्रास जिसि पाइ ।
निज सुभाव महिं थिति रहति, अस ब्रह्म रिद बिदताइ ॥२॥
मरम न जान्यो जाइ जिसि, भरम मिटे मिलि जाइ ।
करम धरम अरु भगति फल, अस अभेद को पाइ ॥३॥
भान होति जग जास ते रजू भुजंग समान ।
मान हानि करि जानि तिह तम अनादि कहु भानु ॥४॥
सति चेतन आनंद युत नाम रूप जग पंच ।
संत दुहनि उर परहरैं तिन तीनहु को संच ॥५॥

(कवि संकेत मर्यादा)

चौपई

बंदन बिंदु बदन बर चंदन । चंदन सम अरबिंद मनिंद न[5] ।
निंद न जिह सुर करि अभिनंदन । नंदन जग बानी पद बंदन ॥६॥

---

१. आलम्बन (आश्रय) । २. काल की फांसी । ३. छूट जाती है । ४. पृथ्वी । ५. मानिंद (समान), कमल भी जिसके समान नहीं है ।

सवैया

तरनि[१] बिघना सलितापति की[२], पति[३] की रक्ख्यक श्री बरनी[४]।
बरनी सुखदा शरनागति की, गति की समता गज की करनी।
कर नीरज ओट सुधारति की, रति की प्रभुता सगरी हरनी[५]।
हरनी सम आंख सु श्रीमति की, मति की करता, तनवें[६] तरनी ।।७।।

(गुरु नानक देव जी का मंगल)

सवैया

करितारनि[७] से शुभ बाक बिलास बिहंग बिकारन को करि तारनि[८]।
करतार नहीं मन जानति जे तिनके हितको सिफती[९] करि तारन।
करि तारिनि पाप उतारन को गन दंभ छपै[१०] सविता करितारन[११]।
करतार निहार गुरू बर नानक दास उधारन जिउं करि तारनि[१२] ।।८।।

(गुरु अंगददेव जी)

बंद न होति सुने उपदेश, रिदे बसि जांहि करे अभिनंदन।
नंदन फेरू[१३] सुछंद[१४] बिलंद बिलोचन सुंदरता अरबिंदन।
बिंदु न मंद बिकार रहै तम ब्रिंद दिनिंद मनिंद निकंदन[१५]।
कंद[१६] अनंद मुकंद भजो गुर अंगद चंद सदा करि बंदन ।।९।।

(गुरु अमरदेव जी)

छप्पय

अमर[१७] अलंब करि जांहि, समर जै पावहिं अरि हरि[१८]।
हरि नित लावहि ध्यान, ग्यान पावहिं मुनि उर धरि।
धरन भजन बिदताइ सभिनि महिं व्याप्यो समसर[१९]।
शरन दास गति लहति चहति दोखिन को दरि[२०]।

---

१ नौका (बेड़ी)। २. हे वाणी! तू विघ्नरूपी समुद्र को पार करने के लिए तरी समान है। ३. इज्जत (लाज)। ४. सरस्वती। ५. सौन्दर्य में रति से भी बढ़ कर हैं। ६. कोमल, तन्वंगी। ७. कलियुग से तारने वाले। ८. बिकार रूपी पक्षियों को ताड़ने (डांटने—नष्ट करने) वाले। ९. फारसी शब्द सिफत—यश। १०. पाखंडों के समूह छिप जाते हैं। ११. सूर्य के उदित होने से तारों के समान। १२. जिस प्रकार जहाज़ यात्रियों को पार करता है। १३. फेरू के पुत्र—अंगद देव जी। १४. स्वतन्त्र। १५. दूर करने वाले—(जिस ओर वे नेत्र करते हैं, वहां ज़रा भी विकार-अज्ञान नहीं रहता, वह उसी तरह दूर हो जाता है जैसे सूर्य के प्रकाश से अंधकार। १६. फल, मेघ, बादल। १७. देवता। १८. देवता भी जिसका (गुरु अमरदेव का) सहारा लेकर युद्ध में शत्रुओं को नष्ट करके विजय प्राप्त करते हैं। १९. समान रूप से। २०. दुखों के डर को जला देना है, दोषों का नाश करना।

दर[1] देति बताइ सु मुकति को होंहि प्रसीदति[2] चित सिमर।
मर जनमन[3] को संकट कटति, जै जै जै श्री गुर अमर ॥१०॥

(गुरु रामदास जी)

सवैया

हरता बिघनान महां अघ[4] को उर आतम ग्यान प्रकाशति ज्यों हरि।
हरि देति बसाइ सु दासन को कमलासन[5] ध्यावति जांहि भजे हरि।
हरिबंस बिखे अवतार भए हति रावण को लिय संग चमूं[6] हरि।
हरिदास तनै रमदास गुरु म्रिगमोह[7] संहारति ज्यों बड़ केहरि ॥११॥

कवित्त

अरजनि[8] सुनति सु दासन को दान देति,
मोह को बिदारिबे[9] को बाक सर अरजन[10]।
अरजुन जसु बिसतीरन[11] संतोखसिंह,
जहां कहां जानीअति मानो तरु अरजन[12]।
अरिजन[13] भए गन मोख पद लए तिन,
श्यामघन तन होइ तोरे जमलारजन[14]।
अरज[15] न जान्यो जाइ केतो है बिथार तेरो,
ऐसो रूप धारि आइ राजैं गुर अरजन ॥१२॥

(गुरु हरिगोबिंद जी)

चित्रपदा छंद

सूर, सुरानि के हानि करे छित आनति भे बनि के तन सूर[16]।
सूरत सुंदर जो सिमरै उर मैं तत ग्यान लहै मति सूर[17]।
सूर[18] गहै कर मैं रण के प्रिय निंदक जे[19] दुख पाइ बिसूर[20]।
सूर बिसाल क्रिपाल गुरु हरि गोबिंद जी तम शत्रुन सूर[21] ॥१३॥

---

१. द्वार। २. प्रसन्न होना। ३. जन्म-मरण का। ४. पाप। ५. ब्रह्मा। ६. सेना। ७. मोहरूपी मृग को सिंह की भांति मार देते हैं। ८. अरज़ (प्रार्थना)। ९. मार देने को (नष्ट करना)। १०. अर्जुन के तीर समान। ११. उज्ज्वल यश का विस्तार करने वाला। १२. भाव कल्पवृक्ष से है। १३. जो शत्रु भी आप के दास बने। १४. कुबेर के दो पुत्र मणिग्रीव और नलकुबेर नारद के शाप से वृक्ष बन गए थे, और यशोधा के आंगन में खड़े थे। एक बार यशोधा ने कृष्ण को इनसे बांध दिया तो कृष्ण ने उन्हें खींच कर तोड़ दिया और उनका उद्धार किया। १५. अरज़—चौड़ापन, विस्तार। १६. हिन्दू देवताओं को हानि पहुंचाने वाले मुगल रूपी दैत्यों से रक्षा के लिए आप विष्णु अथवा वराह अथवा सिंह होकर आये। १७. पंडित। १८. शूल—बरछा। १९. मुगल रूपी निंदक। २०. दुखी हुए। २१. शत्रुओं-रूपी अन्धकार के लिए सूर्य।

(गुरु हरिराइ जी)

सवैया

तारा[१] बिलोचन सोचन मोचन, देखि विशेष बिसै बिस तारा[२] ।
तारा भवोदधि[३] ते जन को गन कीरति सेतु करी बिसतारा[४] ।
तारा मलेछन के मत को उदिते दिननाथ जथा निस तारा ।
तारा रिदै उपदेश दे खोलति, श्री हरिराइ करे निसतारा ।।१४।।

(गुरु हरिक्रिशन जी)

श्री सतिगुरु पूरन हरि क्रिशन । क्रिशन बरतमां[५] बन अघ क्रिशन ।
क्रिशन सरूपदास जिस क्रिशन । क्रिशन भगति को मेघद क्रिशन ।।१५।।

(गुरु तेगबहादुर जी)

सवैया

हादर[६] होति जहां सिमरे सुख सागर जाहिं पिखे सुर सादर ।
साद रचे इक आतम ग्यान बड़ी बिशियातप[७] को बड बादर[८] ।
बाद रहै[९] सिक्ख ह्वै नर सो जिनि जान्यो नहीं जु इहो जग कादर[१०] ।
का दर है[११] जम को तिन जीवनि अंत भजें गुर तेग बहादर ।।१६।।

(गुरु गोबिंदसिंह जी)

चित्रपदा

त्राण करैं निज दासन की भव बंधन तोर ददू[१२] निरबाण[१३] ।
बाण कुदंड प्रचंड धरे गज सुंड मनो भुजदंड प्रमाण ।
माण निमाणनि[१४] हाणि अरो गण बाण सदा जिन आयुध पाण[१५] ।
पाणिप[१६] हिंदुन गोबिंदसिंह गुरू बर बीर धरैं अति त्राण ।।१७।।

कवित्त

भीर परे[१७] धीर दे सथंभ जैसे महां बीर,
रच्छक जनों के मिले दुखद समाज के[१८] ।

---

१. पुतली । २. जिसकी ओर विशेष (कृपा) से देखते हैं उसे विषय-वासना रूपी विष से मुक्त कर देते हैं । ३ भवसागर से पार किया । ४ कीर्ति रूपी सेतु (पुल) को फैला कर । ५. अग्नि । ६. हाज़र (उपस्थित) । ७. विषय रूपी आतप । ८. बादल । ९. व्यर्थ । १०. कुदरत वाला (अरबी शब्द) । ११. डर अथवा द्वार । १२. देते हैं । १३. मुक्ति । १४. मान रहित को मान देने वाला । १५. (हाथ में) शस्त्र धारण कर । १६. लाज, इज्जत । १७. विपत्ति पड़ने पर । १८. दुखों के समूह के आ घिरने पर ।

एक संग बिघन तरंग चै उतंग[1] उठैं,
तहां गुरू आनि बनैं केवट[2] जहाज के।
सागर गंभीर पर प्रेम ते अछोभ नहिं[3],
भनति संतोखसिंह गुन महांराज के।
द्वैया[4] राज ताज के ब्रिधैया[5] सुख साज के,
रखैया दास लाज के करैया कवि काज के ॥१८॥

(दशों गुरुओं के)

सवैया

इक जोति उदोतक रूप दशों[6] शुभ होति अंधेर गुबार उदारा[7]।
जग मैं सु प्रकाश चह्यो करिबे[7] उपदेश दियो सिक्ख भे नर दारा।
परलोक सहाइ अशोक[8] करे इस लोक मैं रांक[9] करे सिरदारा।
गुर ब्रिंदन के पग सुंदर को अरबिंद मनो अभिबंद[10] हमारा ॥१९॥

(गुणशील व्यक्ति)

चौपई

गणपति आदि बिघन के हरता। ब्रह्मादिक मंगल के करता।
सुर गुर आदि सुमति के दानी। बालमीक आदि कवि बानी ॥२०॥
श्री वसिशट आदिक जे ग्यानी। इंद्र आदि दायक रज धानी।
आदि अगसत तपीसुर सारे। ब्यास आदि बेदनि के पारे ॥२१॥
आदि जुधिशटर धरमग भारे। अरजन आदि क्रिशन के प्यारे।
रामचंद आदिक मिरजादिक[11]। जनप्रिय[12] श्री नरसिंह जि आदिक ॥२२॥
श्री घनश्याम आदि रस ग्याता[13]। श्री बामन आदिक छल जाता।
दसरथ आदिक पूर प्रत्तग्या[14]। जोग भोग सम जनक तत्तग्या[15] ॥२३॥
गोरख आदि सिद्ध समुदाइ। आदि कबीर भगत समुदाइ।
बूड्ढे आदिक गुर के सिक्ख्य। भए जु भूत भवान भविक्ख्य ॥२४॥
सभि को मैं अभिबंदन करिहूं। क्रिपा करहु गुर सुजस उचारहूं।
सूरज आदि जि करहिं प्रकाशहिं। चंद आदि जे सीतल रासहिं ॥२५॥

---

१. ऊँचे-ऊँचे। २. नाविक, मल्लाह। ३. आप समुद्र की भांति गंभीर हैं परन्तु जैसे समुद्र पर-पीड़ा से दुखी नहीं होता, वैसे आप नहीं हैं, (आप दूसरों की पीड़ा देखकर पसीजने वाले हैं)। ४. दाता। ५. वृद्धि करने वाले। ६. दसों गुरु एक ही ज्योति के प्रकाशक हैं। ७. (अत्याचारों का) बड़ा अंधकार और (अज्ञान का) बड़ा गुबार (धूलि) देखकर आपने उसे मिटाने के लिए (ज्ञान) का प्रकाश किया। ८. शोक रहित। ९. पाठान्तर-रंक। १०. नमस्कार। ११. मर्यादापूर्ण। १२. भक्त-वत्सल। १३. रसज्ञ (रसिक)। १४. प्रण (प्रतिज्ञा) पालन करने वाले। १५. तत्त्वज्ञ (तत्त्व को जानने वाले)।

नारद आदिक प्रेमी जोई। सारद[1] आदिक बकता तेई।
चतुर शेश आदिक बड़ कहियति। हनुमत आदि दास जे लहियत ।।२६।।
सभि के प्रथमैं नाम सिमरिऊं। धर पर धरि सिर[2] नमो उचरिऊँ।
सभि बिधि होहिं सहाइक मेरे। बिघन बिनाशहु रहि मम नेरे ।।२७।।

(इष्टदेव—श्री नानक देव जी के अन्य मंगल)

सवैया

बेदी बिभूषण[3] बेदिकै[4] जांहि को बेद कहै नहिं तीन प्रछेदी[5]।
छेदी[6] कुचाल कुचीलनि[7] की कलि नाम जपाइ कुरीतिन खेदी।
खेदी ना होत अखेद[8] उदोतक दे उपदेश जु रूप अभेदी[9]।
भेदी बनावति कैवल को[10] गुर नानक पाइ प्रणाम निवेदी[11] ।।
(रा० २ : १ : १)

कवित्त

मिटि कै बिकारनि[12] ते शरन परीजै नित,
नाम के उचारन ते मोह जाति घटिकै[13]।
घट कै मझार ध्यान धारनि ते पार होहि,
मन टिक जाइ बिशियान ते उलटिकै[14]।
लटकै न सिर तरवायो[15] ह्वै गरभ बीच,
पर्यो बसि सदा बहु बंधनि बिकटकै[16]।
कटि कै सु[17] देहिं मोख ऐसे गुरु नानक जी,
बंद हौं पदार-बिंद इंद्रिनि सिमटिकै ।।
(रा० ३ : १ : ३)

चौपई

करुना आकर[18], कलमल हरना[19]। हरिनामा चित नीत सिमरना।
मरना जनमन इव जग तरना। तरुनापन बिरथा नहिं करना ।।२।।

---

१. सरस्वती। २. पृथ्वी पर सिर रखकर। ३. वेदी वंश के विभूषण। ४. जान कर। ५. वेद जिसे तीनों प्रच्छेदों (देश, काल, वस्तु) से रहित कहते हैं। ६. काटना। ७. दुराचरण। ८. खेद रहित। ९. भेद रहित। १०. मुक्ति का रहस्य जान लेने वाला बनाता है। ११. निवेदन करना। १२. विकार रहित होकर। १३. नष्ट होना। १४. विषय-वासनाओं से हट कर मन लग जाता है। १५. उल्टे होकर। १६. कठोर बंधनों के वशीभूत। १७. उनको काट कर। १८. करुणाकर (करुणा की खान)। १९. पापों को हरने वाले।

बंदि हाथ सतिगुर सुखकंद[1] । कंदल[2] दासन देति अनंद ।
नंदन कालू केरि मुकंद[3] । कंदन बिघन[4] सदा जगबंद ।।३।।
(रा० ४ : १)

सवैया

तारे अनेक बिबेक जहाज़ दे[5], खोलि दिये उर मोह कि तारे[6] ।
तारे बिसाल पखंडि प्रचंडि जे[7], आगे अरे तिन मान उतारे ।
तारे बिलोचन ते दरसे, उबरे सु असंख जथा नभ तारे[8] ।
तारे तरे अरु मारे मरें गुर नानक कीनि भए तम तारे ।।४।।
(रा० ५ : १)

कवित्त

बंदना को लेति ही, अबंदता[3] को देति जन,
प्रीति लेति देति हैं प्रतीत सुख सेतु हैं ।
भाउ उर लेति ही, प्रभाउ बड़ो देति आपि,
त्रिगुन पद देति, जन गुन देखि लेति हैं[10] ।
थोरि जैसी भेट लेति, जम की अभेट देति[11],
सतिगुर नानक संतोखसिंह चेति है ।
हंता लेति[12] दासन की, अहंब्रह्म देति उर,
मन लेति चरन मैं मुकति सु देति हैं ।।
(रा० ६ : १ : ३)

चित्रपदा

पार परे जग सागर ते उर ते परदा भ्रम को सभि पारि[13] ।
पारद[14] के सम जो मन चंचल तां महिं मूल बिकार उपारि[15] ।
पारन[16] प्रेम करो गुर नानक जे शरनागत के प्रतिपारि[17] ।
पारस ज्यों छुइ जाति जिनै सम लोह जु कंचन होइ अपारि[18] ।
(रा० ७ : १ : ३)

दोहरा

सरबोतम जन सरबदा सरबोपरि जसु चार ।
जग गुर श्री नानक नमो धरनी पर सिर धारि[19] ।।
(रा० ८ : १ : ४)

---

१. सुखों के मूल । २. समूह । ३. मुक्ति-दाता । ४. विघ्नों का नाश करने वाले । ५. ज्ञान का जहाज़ देकर अनेकों को तार दिया । ६. मोह के ताले खोल दिये (मोह दूर कर दिया) । ७. पाखंडियों को प्रचंड होकर ताडा । ८. नेत्रों की पुतलियों से देख कर इतने असंख्य लोगों को पार किया, जितने आकाश में तारे हैं । ९. बंधन-हीनता—स्वतन्त्रता । १०. (जब) दासों के गुणों को देख लेते हैं । ११. यम के मिलाप से छुटकारा देना । १२. अहंकार । १३. फाड़ कर । १४. पारा । १५. उखाड़ना । १६. पालना । १७. प्रतिपाल करने वाले । १८. जिन का पार नहीं पाया जा सकता । १९. जगत् गुरु श्री गुरु नानक देव जी को पृथ्वी पर सिर रख कर नमस्कार करता हूं ।

पार ब्रह्म करता पुरष, श्री नानक अवतार।
दासन ब्रिंद अनंद दे तिन पद बंदन धारि ।।
(रा० ६ : १ : ३)

सुंदर कीरति चंद्रिका चहुं दिशि तन्यो बितान[१]।
श्री नानक जग गुरु को नमो जोरि जुग पान[२]।।
(रा० १० : १ : ३)

पसरयो जस दस दिशनि मैं सद्रश सुमनस सेत[३]।
अजमत जुति जीत्यो जगत, श्री नानक सुख देति ।।
(रा० ११ : १ : ३)

उपदेशति जग गुर भए फैल्यो जस जिम चंद।
बिघन बिनासहिं क्रिपा ते, श्री नानक पद बंदि ।।
(रा० १२ : १ : ३)

चित्रपदा

मार मनिंद[४] बिकारनि ब्रिंद बिलंद खगिंद बली सम मारि[५]।
मार[६], हंकारहिँ, क्रोधहिँ, लोभहिँ, मोह समूलहिँ देति उपारि।
पार करे निज सेवक के गन दे धन को सतिनाम, उदार।
दारुन दूत[७] तजै सुनि नाम नमो गुर नानक कालू कुमार।
(रि० १ : १ : ४)

कवित्त

बेदी बंस भूषन जे पूषन अदूषन से[८],
तिमर कलूखन[९] पखंड छपि तारे हैं।
पीर सिद्ध धीर करामात के गहीर[१०] गन,
मान सैल[११] चढ़े गुरू नानक उतारे हैं।
देशनि बिदेश फिर जंबूदीप दीप समु,
कीने हैं करोरों सिक्ख भवजल तारे हैं।
जसु बिसतारे भारे, बिशै बिस तारे बहु[१२],
खोलि मोह तारे, बादी बाद कर तारे हैं[१३]।
(ऐन० १ : १ : २)

जो सब से श्रेष्ठ, सेवकों को सब (पदार्थों) को देने वाले तथा जिन का यश सब से (ऊँचा) होकर (फैला हुआ है)।

१. यशरूपी चांदनी का वितान (तम्बू) चारों ओर तना हुआ है। २. दोनों हाथ जोड़कर। ३. सफेद पुष्प की भांति। ४. सर्पों के समान। ५. गरुड़ के समान मार कर। ६. काम। ७. (यम के) भयानक दूत (जिसका नाम लेने पर छोड़ कर भाग जाते हैं)। ८. दोषरहित सूर्य समान। ९. पाप। १०. निधि। ११. मान(अहंकार)रूपी पर्वत पर चढ़े हुए। १२. विषय-वासना रूपी विष को उतार दिया। १३. वाद-विवाद करके ताड़े हैं (अपमानित किये हैं)।

सवैया

धारि अपूरब पूरब रूप[१] भए गुर नानक जोति उदारहि।
दार[२] किधौं नर पंथ परे तिन से जग सागर ते परि पारहि।
पारति हैं[३] गुन, टारति औगुन, ग्यान सिखारति बाक बिचारहिं।
चारहुं बेद उचारहिं सारहि. बंदति हौं अबि मोहि उधारहिं।
(ऐ० २ : ३६ : ७)

(मंगल श्री अंगददेव जी के)

कवित्त

अंजन[४] ते हीन श्री निरंजन[५] प्रबीन प्रभु,
भंजन पखंड पाप गंजन[६] अनंद करि।
दीनो ग्यान अंजन[७] सु मंजन को मोह मल[८],
रंजन को जन जग भगत बिलंद[९] करि।
फेरू-नंद अगंद सुछंद[१०] श्री गुबिंद है,
मनिंद[११] चंद बिंद जस दासन मुकंद करि[१२]।
पद अरबिंद मकरंद[१३] को मनिंद मन,
बिघन निकंद[१४] करौं बंदना दुबंद कर[१५]।
(रा० २ : १ : २)

दोहरा

कंद[१६] अनंद बिलंद के श्री गुर अंगद चंद।
चंदन सम दुख धाम को बंदौं बिघन निकंद[१७]।
(रा० ३ : १ : ४)

चौपई

अंगद गुरू सहाइक संग। संगति सेवति सहत उमंग।
मंगति सिक्ख मुकति हरि रंग[१८]। रंगति ब्रह्म ग्यान प्रभु अंग।
(रा० ४ : १ : ४)

बंदन होवहि शरन मुकंद। कंद अनंद तिहन कुल चंद।
चंदन चरचिति सुजस अमंद। मंदिर गुन गुर अंगदि बंदि।
(रा० ५ : १ : ५)

---

१. पूर्व रूप—ब्रह्म। २. स्त्रियां। ३. पालते हैं। ४. माया। ५. मोह माया रहित। ६. नाश करने वाले। ७. ज्ञान का सुरमा। ८. मोह की मैल दूर करने को। ९. बुलंद—ऊंचा करना। १०. स्वच्छन्द। ११. मानिन्द—समान। १२. मुक्ति दाता। १३. पराग (आत्म रस)। १४. नाश करने वाले। १५. दोनों हाथ जोड़ कर। १६. मूल, बादल, फल। १७. काटने वाले। १८. हरि के प्रेम वाली मुक्ति।

दोहरा

अजर जरन[१] धीरज धरन देति शरन जन दान।
श्री अंगद सुख करन को नमस्कार गुन खान।
(रा० ६ : १ : ४)

बंद न परहि सबंध हुइ[२] श्री अंगद पद बंदि।
बंदि हाथ शरनी परे बिघन बिनाशन ब्रिंद।
(रा० ७ : १ : ४)

श्री अंगद रवि ग्यान के तिमर बिकार बिनाश[३]।
पद अरबिंदनि बंदना, कीजहि सुमति प्रकाश।
(रा० ८: १ : ५)

श्री अंगद दूसर गुरू दरशन ते सुख देति।
चरन सरोजनि[४] बंदना आनंद क्रिपा निकेत[५]।
(रा० ९ : १ : ४)

अजर जरन धीरज धरनि धरनि मनिंद बिलंद।
श्री अंगद पद पदम को बंदन बिघन निकंद।
(रा० १० : १ : ४)

अजर जरन धीरज धरनि धरनि मनिंद अमंद।
श्री अंगद पद पदम को नमहि मुकंद अनंद।
(रा० ११ : १ : ४)

चौपई

अजर जरन धीरज धरनि, अमर करन सिख ब्रिंद।
श्री अंगद संकट हरन नमहि पदनि अरबिंद।
(रा० १२ : १ : ४)

सवैया

जर जाइ नहीं किस ते अजरी[६] अस पाइ गए सगरी उर मैं जर।
जरबे जिनकी अविलोक जराइक दूर करो गन दोखनिकी जर[७]।
जरते बिशयागनि मैं जन जे[८] शरनागत ही जल नाम रिदै जर[९]।
जर ग्यान[१०] दयो हरि दारिद मोह, नमो गुर अंगद ह्वै नित हाज़र।
(रि० १ : १ : ५)

---

१. ब्रह्म को आत्मसात कर लेते हैं। २. जिन के साथ सम्बन्ध होने से कोई कैद नहीं रहता (यम की कैद)। ३. विकार रूपी अंधकार को नष्ट करने के लिए सूर्य समान। ४. चरण-कमल। ५. कृपा के घर। ६. ऐसी अजर वस्तु जो किसी से जरी न जाए, (ब्रह्म जो सामान्यतः किसी से जाना नहीं जा सकता)। ७. जिन की दृष्टि की एक ज़रा सी चोट (ठोकर) दोषों को मूल रूप से दूर कर देती है। ८. जो मनुष्य विषय-अग्नि में जल रहे हैं। ९. सींचना। १०. ज्ञान रूपी धन।

चित्रपदा

जाल जंजाल फसे जु मिले[१], तिन दासनि ब्रिंद बिकारन जालि[२]।
जालनि को[३] उपदेश बखनिकै श्री सतिनाम की दे जपुमाल।
मालिक्र दोन दुनी गुर अंगद बंदन ते करि देति निहाल।
हाल भला परलोक तिनै, नहि फेर फसैं कबिहुं जमजाल।
(ऐन० २ : ३६ : ८)

(श्री गुरु अमरदास जी के अन्य मंगल)

सोरठा

अमर[४] करहिं जग माहिं नित सहाइता लहिं अमर[५]।
अमर करे[६] जन जाहिं अमर नाम दे[७] गुर अमर।
(रा० २ : १ : ३)

दोहरा

मार[८] हंकार जु डसति नित ताहिं सहाइक मार[९]।
मारसि चहिं श्री अमर भजि नित जे बिना शमार[१०]।
(रा० ३ : १ : ५)

चौपई

दीनन दयालु सेव जिन लीनि। लीन प्रेम महिं, कबहुं दुखी न।
खीन मोह भे ग्यान प्रबोन[११]। बीन सु[१२] अमर गुरू सुख दीनि।
(रा० ४ : १ : ५)

पारनि करि सिक्खी बिसतारन। पारद मन थिर किय बिसतार ना।
पाद सु परे करे निसतारन। रवि स्री अमर जियत निसतारनि।
(रा० ५ : १ : ६)

दोहरा

अति उदार बखशति प्रभु दीनहुं लोक अनंद।
अमरदास श्री सतिगुरू बंदौं जुग कर बंदि।
(रा० ६ : १ : ५)

परम ब्रिद्ध श्री अमर जी परम उदार सदीव।
परम बखश करि सेवकनि परम उधारक थीव।
(रा० ७ : १ : ५)

---

१. प्रपंच के जाल में फंसे हुए मिले। २. जला कर। ३. बहुत सारों को। ४. अमर करना। ५. देवता। ६. जन्म-मरण रहित। ७. ब्रह्म। ८. सर्प रूपी अहंकार। ९. काम जिसका सहायक है। १०. यदि उनको मारना चाहता है तो उन अमरदास जी को भजो जो बेअंत हैं। ११. जिन का मोह नष्ट हुआ है और जो ज्ञान में प्रवीण हैं (ऐसे गुरु जी)। १२. देखकर (दर्शन करके)।

श्री सतिगुर बर अमर जी भगति ग्यान दे दान।
ज़ाहर करे जहान जन नमसकार तिनि ठानि।
(रा० ८ : १ : ६)

अधिक ब्रिध सेवन लगे अधिक ब्रिध करि सेव।
बंदौ जो ब्रिध अधिक ह्वै भए जगत गुरदेव।
(रा० ६ : १ : ५)

कुल भल्ल्यनि की कलस[1] भे अजमत के दातार[2]।
श्री गुर अमर अनंदमै नमो चरन परि धारि।
(रा० १० : १ : ५)

भानु समान सु ग्यान दिढि, हानि तिमर अग्यान।
अजमति दानी अनिक के श्री गुरु अमर सुजान।
(रा० ११ : १ : ५)

चौपई

करे बिसाल निहाल जन टालि काल दुख जाल।
अमरदास स्री सतिगुरू रिदै संभालि[3] क्रिपालु।
(रा० १२ : १ : ५)

चित्रपदा छंद

डारति[4] जे बिघनां गन को तिन को ततकालहि देति बिडारि[5]।
डार[6] दुबिसति भे जग मैं सभि के गुर मूल कियो बिसतार।
तारन को जन के गन को सतिनाम दियो सु करै भव पार।
पारति सिक्ख्यनि भल्ल्यनि भूषन पूषन[7] ज्यों तम दूषन डारि।
(रि० १ : १ : ६)

सवैया

मोहि रिदै[8] बसि कै निस बासुर नाश कलेश करो हुइ मोह न[9]।
मोहन के पित श्री गुर पूरन दासन के करता मन मोहन[10]।
होहि न लोभ को लोभ कबै, नहिं काम को काम हंकार न क्रोह न।
कोह[11] स्री ओट सदा निज दासनि दान को दीन करे निरमोहन[12]।
(एन० २ : ३६ : ६)

(श्री गुरु रामदास जी के अन्य मंगल)

चित्रपदा छंद

राम सु दास गुरु सुखरास हरैं जम त्रास रिदा निशकाम
काम न क्रोध बिरोध निरोध[13], सदा सुध बोध सरूप निकाम।

---

१. शिरोमणि। २. दाता। ३. स्मरण करके। ४. डालने वाले। ५. नाश करना। ६. डाल—शाखाएँ। ७. सूर्य। ८. मेरे हृदय में। ६. मोह न हो। १०. मन को मोहित करने वाले। ११. पहाड़—पर्वत। १२. मोह रहित। १३. वैर का अभाव।

काम करे जन शाम परे तिन ताप हरे नित होति अनाम।
नाम जपे अघ ब्रिंद खपे सु रपे[1] हरिरंग सदा अभिराम।

(रा० २ : १ : ४)

दोहरा

रामदास श्री सतिगुरु रूप एक श्री राम।
राम भ्रात ह्वै रिपु हते नमो चरन अभिराम।

(रा० ३ : १ : ६)

मानि मानि पद पदम को पान जोरि सनमान।
मानस मैं हरिदास सुत बसहु सदा मम मान।

(रा० ४ : १ : ६)

चौपई

रामसिंह रावण हति करी[2]। राम जथा[3] राजनि म्रितु करी।
राम[4] मघेसुर[5] दल हति डारा। रामदास गुर मोह बिदारा।

(रा० ५ : १ : ७)

दोहरा

त्रास बिनाशि उपाशकनि[6] पुरहिं आस गन दास।
रामदास सुखरास को नमो हुलास प्रकाश।

(रा० ६ : १ : ६)

रामदास श्री सतिगुरू दासन त्रास बिनाशि।
निज पर जन बिस्वास लखि बखशति हैं सुखरास।

(रा० ७ : १ : ६)

सूरज सोढी बंस के बिदति सकल जग जोइ।
नमो चरन परि नित करौं रामदास गुर सोइ।

(रा० ८ : १ : ७)

राम राम इक नाम है भए बिशेशन दोइ।
राजा भगति सरूप ते चंद दास लखि सोइ।

(रा० ९ : १ : ६)

सदा शांति चित ग्रिहसत महिं बड़ि सोढी सुलतान।
रामदास श्री सतिगुरू तिनि पद बंदन ठानि।

(रा० १० : १ : ६)

---

१. रंगे हुए। २. राम रूपी सिंह ने रावण रूपी हाथी को मारा। ३. परशुराम। ४. बलराम। ५. जरासंध। ६. उपासक—सेवक।

सोढी कुल सम गगन मैं बिदते भानु मनिंद।
रामदास स्त्री सतिगुरू बंदों पद अरबिंद।
(रा० ११ : १ : ६)

त्रास नाश निज दास के बाक बिलास प्रकाश।
रामदास श्री सतिगुरू बासहु रिदै अवास।
(रा० १२ : १ : ६)

राम हते त्रिप कुटिल ज्यों, मार्यो रावन राम।
राम जथा मगपाल[1] पर सिख तम पर[2] गुर राम।
(रि० १ : १ : ७)

सवैया

हरिदास[3] तनै[4] हरिदास[5] भनै हरि रूप बनै[6] हरि पूजति है[7] जिन।
हरि[8] दोशन दै सुख दासन को उर मोह ते आदि बिकार भरे जिन।
बर[9] देति जिनहि बर मानव[10] से बरबंड भए[11] जम रूप पिखै जिन[12]।
कर बंद तिनै करि बंदन को करतार गुनाकर ग्यान अमेजिन।
(ऐन० २ : ३६ : १०)

(श्री गुरु अर्जुन देव जी के अन्य मंगल)

चौपई

श्री सतिगुर अरजन कुल चंद। चंदन सम बच सीत मुकंद।
कंद अनंद[13] बिमोह निकंद। कंदल सुखद तिनहुँ पद बंदि।
(रा० २ : १ : ५)

दोहरा

अरजन सर से[14] वाक जिन बिदत सुजस अरजन[15]।
अरज़नि[16] दासनि की सुनति नमो गुरू अरजन।
(रा० ३ : १ : ७)

सोरठा

हर हर बिघन बिकार हरि, हरि लिव उर दे अधिक।
धिक तिन जन बहु बार गुर, अरजन बच परहरहिं।
(रा० ४ : १ : ७)

---

१. जरासंध। २. अंधकार रूपी अज्ञान पर। ३. गुरु रामदास के पिता जी का नाम। ४. पुत्र। ५. भगवान के दास। ६. ब्रह्म रूप हैं। ७. विष्णु भी जिन्हें पूजता है। ८. नाश करके। ९. वरदान। १०. श्रेष्ठ जन। ११. बलवान हो गये। १२. वह यम का रूप नहीं देखेंगे। १३. आनन्द-दाता। १४. अर्जुन के तीरों के समान। १५. उज्ज्वल। १६. प्रार्थना।

श्री अरजन बिच जंबू दीप। भए प्रकाशक जिम तम दीप।
बाणी रची बेद ले सार। सार असार लखाइ संसार।
(रा० ५ : १ : ८)

दोहरा

श्री अरजन सिरजन अनंद[1] तरजन जनन बिकार[2]।
बरजन[3] दुरजन तेज को, तिन पग रज सिर धारि।
(रा० ६ : १ : ७)

भारी उपकारी सदा, ध्रित धारी गुनखान।
श्री अरजन पद पदम को, नमो जोरि जुग पान।
(रा० ७ : १ : ७)

अजर जरनि, धीरजि धरनि, तारन जननि जहाज।
नमो चरन अरबिंद कउ, श्री अरजन सुख साज।
(रा० ८ : १ : ८)

तांहि बान बानी इनहुँ, छेदति[4] लच्छ बिकार।
नाम दोइ इक रूप जिन, श्री अरजुन सुखकार।
(रा० ९ : १ : ७)

हेत भविख्यत तारिबे रच्यो ग्रिथ श्रुति सार।
श्री अरजन पग कमल पर, नमसकार सिर धारि।
(रा० १० : १ : ७)

दासनि की फासनि कटैं, उपदेशति सतिनामु।
श्री अरजन बरजनि कुमति[5], तिन पद पदम प्रणाम।
(रा० ११ : १ : ७)

तरजन दुःख, बरजन बिघन, सिरजन जन कल्यान।
श्री अरजन ! अरज़नि सुनहिं, नमो पदम पद ठानि।
(रा० १२ : १ : ७)

सार निकास्यो बेद ते, जगत दिखाइ असार।
सार गुरू अरजन लई निज जन को संसार।
(रि० १ : १ : ८)

कवित्त

अरज़नि[6] सुनि मेरी सतिगुरू अरजन,
अरि जन[7] हनि अरजन जस[8] दीनिओ।
कविता प्रपूर[9] में चरित्र भरपूर निज,
पूरमे परी है[10] ग्रंथ पूरन जि कीनिओ।

---

१. आनंद देने वाले। २. भक्तों के विकारों को दूर करने वाले। ३. रोकने वाले। ४. काटती है। ५. दुर्बुद्धि को दूर करने वाले। ६. प्रार्थना। ७. वैरी, काम क्रोध आदि। ८. उज्ज्वल यश। ९. परिपूर्ण। १०. मेरी कामना पूर्ण हुई।

कथा गुन सरवर, औगुन को सर खर[१],
गुरू सर और ना, शरन यांते लीनिग्रो।
नाम लिव तार दे उचार भव पार दे,
पतार[२] ते उधारि पद तारिदे[३] प्रबीनिग्रो।
(ऐन० २ : ३६ : ११)

(श्री हरिगोबिंद जी के ग्रन्य मंगल)

चौपई

वारी इक[४] धरि द्वै तरवारी[५]। वारो[६] शत्रु सैन बलवारो।
वारी धरि[७] सम धुनि सुखवारी। वारी[८] गुर खट पर बहु वारी[९]।
(रा० २ : १ : ६)

दोहरा

बिंदु नीर पद परस की प्रापति मुख अरबिंद।
बिंदक बिखै[१०] निहाल किय श्री गुर हरिगोबिंद।
(रा० ३ : १ : ८)

सुंदर शुभति बिलंद मद न रह्यो मन मदन के[११]।
श्री हरिगोबिंद चंद बंदन पद दुति सदन के[१२]।
(रा० ४ : १ : ८)

चौपई

नेत्र बिसाल जथा अरबिंद। बली बिसाल जथा गोविंद।
ग्यानी ध्यानो जो ततिविंद[१३]। सो सरूप श्री हरि गोविंद।
(रा० ५ : १ : ९)

कवित्त

बोध महिं बिदेह,[१४] जुद्ध[१५] क्रुद्ध मद्ध रामचंद,
सिक्ख तारिबे को भव सिंधु ते जहाज़ हैं।
करुणा निधान ते बिशनु परमान मन,
कीरति प्रकाशबे को सोइ दिजराज[१६] हैं।
प्रगट प्रताप मैं प्रचंड मारतंड[१७] बड़े,
शोभा सभि लैबे कउ सुहाइ सुरराज हैं।
धीरज धरन को धरनि रूप बीर बर,
श्री हरिगुविंद सुखकंद ह्वै बिराज हैं।
(रा० ६ : १ : ८)

---

१. तीक्ष्ण तीर। २. पाताल। ३. भवसागर से पार कर देने वाला चरण। ४. एक बार ही (एक ही समय में)। ५. दो तलवारें धारण कीं—एक पीरी की एक अमीरी की। ६. नष्ट करना। ७. बादल। ८. बलिहारी। ९. बहुत बार छठे गुरु पर (बलिहारी)। १०. पल भर में। ११. इतने सुन्दर है कि उनके सौन्दर्य के सामने कामदेव का मान खंडित हो गया। १२. छवि का घर हैं। १३ ब्रह्म-ज्ञानी। १४. ज्ञान में विदेह (जनक) समान हैं। १५. युद्ध में। १६. चन्द्रमा। १७. सूर्य।

दोहरा

स्रेशट ग्रायुध धरनि महिं तुरकनि हरिनि समाज।
बंदन ठानौ बंदि कर हरिगुबिंद महाराज।
(रा० ८ : १ : ६)

कट निषंग[1], कर धनु धरे, सिपर दोइ शमशेर।
म्रिग शत्रु समुदाइ को, संघर महिं सम शेर।
(रा० १० : १ : ८)

महाबीर, ग्रगनि मनहुं, ग्ररि बन जारति ब्रिंद।
जोति नाम तो एक है, तन जुग हरिगोबिंद।
(रा० ६ : १ : ८)

जोधा क्रुद्धति जुद्ध महिं, रिदा सथित ब्रह्म ग्यान।
श्री हरिगोबिंद चंद पद बंदन सिर ते ठानि।
(रा० ११ : १ : ८)

जन ब्रिंदनि ग्रानंद दे जिमि दिनिंद ग्ररबिंद[2]।
श्री हरिगोबिंद चंद गुर नमो सुछंद मुकंद।
(रा० १२ : १ : ८)

सोरठा

हरि ग्ररि[3] हरि गोबिंद तुरकन तरजे रण ग्ररे[4]।
मरे खरे रिपु ब्रिंद ठरे निबल पारे परे[5]।
(रि० १ : १ : ६)

सवैया

सारंग[6] पे कबि सारंग[7] पै चढि, सारंग[8] शत्रुनि को बलि सारंग[9]।
सारंग[10] ज्यों जग मैं कुल सारंग[11], सारंग[12] ग्यान प्रकाशनि सारंग[13]।
सारंग[14] दासनि को प्रिय सारंग[15], सारंग[16] दोशनि को सम सारंग[17]।
सारंग[18] पानि भयो नर सारंग[19], सारंग[20] श्री हरि गोबिंद सारंग[21]।
(ऐन० २ : ३६ : १२)

---

१. खड्ग। २. जिस प्रकार सूर्य कमल को विकसित कर देता है। ३. वैरी नाशक। ४. युद्ध में ग्रड़ने वाले तुरकों को मारा। ५. पाला पड़ने से (खड़े-खड़े मर गए)। ६. हाथी। ७. घोड़ा। ८ हिरण। ९. शेर। १०. कमल। ११. सूर्य। १२. दीया। १३. ग्रग्नि। १४. चातक। १५. बादल—मेव। १६. सर्प। १७. गरुड़। १८. धनुष। १९. ईश्वर। २०. वही रंग। २१. प्रकाश—ज्योति; (ग्रर्थ ५—२०) (श्री गुरु हरिगोबिन्द) कभी हाथी पर सवार होते हैं, कभी घोड़े पर। वे शत्रु रूपी मृग के लिए सिंह के समान हैं; पर (मित्र रूपी) कमल के लिए सूर्य समान हैं; (सिक्खों के लिए) ज्ञान को ऐसे प्रकाशित करते हैं, जैसे दीपक को ग्रग्नि; भक्तों को ऐसे प्यारे हैं जैसे चातक को बादल; पाप रूपी सर्प के लिए गरुड़ समान हैं; श्री हरि गोबिन्द ईश्वर ही हैं, जो नर रूप में धनुषधारी हैं, पर फिर भी वह वही ज्योति (ब्रह्मरुप) हैं।

(श्री गुरु हरिराइ जी के अन्य मंगल)

दोहरा

भव[1] महिं भव के[2] रंक जे भव[3] सम होइ क्रिपालु।
पालक प्रिथवी के करे, श्री हरिराइ रसाल।
(रा० २ : १ : ७)

राइ जगत के अवतरे, सुख उपजे भजि नाइ।
नाइ सीस करि बंदना जै जै श्री हरिराइ।
(रा० ३ : १ : ६)

करे रंक ते राइ सेवक सेवति पास जे।
श्री सतिगुर हरिराइ हती दुखद जम पास जे।
(रा० ४ : १ : ६)

चौपई

सति संगति सेवति निशकाम। हरि बिकार क्रोधादिक काम।
पूरहिं दास जि बांछति काम। बदों श्री हरिराइ निहकाम।
(रा० ५ : १ : १०)

सवैया

देव तरोवर है न इहै, हरिराइ गुरू करि देव तरोवर।
सो सुरधेनु नही मन जानिये, सेव गुरू सुर धेनु लहै नर।
है न चिंतामणि बूझ जि देखिये, श्री गुरु के चिंतमणी बर।
सो न सुधा मधुराइ को धारति, ग्यान गिरा गुर की मधुरी तर।
(रा० ६ : १ : ६)

दोहरा

श्री हरिराइ सु हरति हैं, दासन के दुख जाल।
हर इच्छा को देति हैं, हरि ज्यों होइ दिआल।
(रा० ७ : १ : ६)

दाता भोग रु मोख के दासनि सदा सहाइ।
नमो नमो पग कमल को श्री सतिगुरु हरिराइ।
(रा० ८ : १ : १०)

हरीराइ सभि सुरनि को सो सरूप हरीराइ।
जग गुरता इहु अधिकता बंदौं पंकज पाइ।
(रा० ६ : १ : ६)

---

१. संसार में। २. जन्म के। ३. परमेश्वर।

करे रंक ते राव गन श्रीमुख ते कहि बैन।
श्री सतिगुर हरिराइ जी सिमरे जिन जम भै न[1]।

(रा० १० : १ : ६)

करे रंक राजा अधिक अबि लौ बिदति प्रताप।
स्री सतिगुर हरिराइ जी हरता पाप कलाप।

(रा० ११ : १ : ६)

सुख बिलास दासनि बखशि रिपुनि बचन ते हानि।
श्री सतिगुरु हरिराइ जी नमहि करहु कल्यान।

(रा० १२ : १ : ६)

कानन हिरदा दास म्रिगनि बिकारनि ते कलित।
पंचानन सम बास श्री हरिराइ प्रणाम पद[2]।

(रि० १ : १ : १०)

सवैया

भव पावक सिंधु अगाध[3] जिन्हों शरना[4] सरना[5] तरना[6] तरना[7]।
पर ऐश्वरज हेरि रिदे जरना निज ओज महां जरना जरना[8]।
हरिराइ प्रभू सम केहरि के जन दोश करे हरना हरना[9]।
कहिना कहिना फुल ह्वै न सुगंधि, गुरू करुना करना करना[10]।

(ऐ० २ : ३६ : १३)

(श्री गुरु हरिकृष्ण जी के अन्य मंगल)

सोरठा

सभि दरशन को सार दरशन परसन ते लह।
हाथ सुदरशन धारि श्री हरिक्रिशन सु बंदना।

(रा० २ : १ : ८)

---

१. यम का भय। २. सिक्खों का हृदय बन समान है जो विकारों रूपी मृगों से भरा पड़ा है, श्री हरिराइ जी जो सिंह समान (उन्हें नष्ट करने के लिए) वहाँ आ बसे हैं, उनके चरणों पर नमस्कार। ३. संसार में अग्नि का अपार सागर है। ४. शरण। ५. ढंग नहीं है। ६. पार करना है। ७. पार नहीं करना। ४-७ जिन्होंने गुरुजी की शरण ली है, वे पार कर लेंगे, जिन्हें शरण लेने का ढंग नहीं आता, वे पार नहीं कर सकेंगे। ८. पराए ऐश्वर्य को देखकर जलना। ९. पर गुरु हरिराई ने भक्तों के दोष ऐसे हर लेने हैं जैसे सिंह हिरण को नष्ट कर देता है। १०. कथनी तो केवल डौरे के जाले की तरह है जिस में सुगंधि नहीं होती, गुरु कृपा से कहना करना हो जाता है जो संगतरे के फूल के समान सुन्दर और सुगंधित है।

दोहरा

क्रिशन रिदा उज्जल करहिं प्रथम रूप श्री बिशनु ।
बिस न रहति बिशियान की सिमर गुरू हरिक्रिशन ।
(रा० ३ : १ : १०)

देहि अवसथा बाल बड़े गुननि महिं अवतरे ।
तरे सेव नर बाल श्री हरि क्रिशन सुजस करे ।
(रा० ४ : १ : १०)

चौपई

आरबला लघु शकति बिसाल । बाल गुरू हरि क्रिशन रसाल ।
बाल सूर लघु पिखि जिम जाल । मोह तिमर हर करति उजाल ।
(रा० ५ : १ : ११)

दोहरा

लाल म्रिदुला सुंदर जुगल कमल ललित अल पाइ ।
चरन गुरू हरिक्रिशन के अलि मन मिलि सुख पाइ ।
(रा० ६ : १ : १०)

श्री सतिगुरु हरिक्रिशन जी दिहु गुरमति उपजाइ ।
उर बिकार कउ परिहरहु सत्तिनाम लिवलाइ ।
(रा० ७ : १ : १०)

बाल अवसथा ग्यान घन, नाशक बिघन बिसाल ।
चरन सरोजनि को नमो, श्री हरिक्रिशन क्रिपाल ।
(रा० ८ : १ : ११)

नाम एक अरु जोति इकु इस ते परहि पछान ।
कहै नाम इक बार द्वै गुर हरिक्रिशन सुजान ।
(रा० ९ : १ : १०)

बालिक बय अति शकति महिं दरशन ते दुख जाइ ।
श्री हरि क्रिशन अनंद घन बंदौं पंकज पाइ ।
(रा० १० : १ : १०)

बाल बैस ब्रिध ग्यान महिं समरथ श्री गुरदेव ।
पद अरबिंदनि बंदना मुकति पाइ जिन सेव ।
(रा० ११ : १ : १०)

दरशन ते संकट नसहिं पग परसनि सुखदाइ ।
जन हरशन[१] सरसन सदा श्री हरिक्रिशन सुभाइ ।
(रा० १२ : १ : १०)

---

१. भक्तों को हर्षित करने वाले (सुखदाता) ।

तन मन के दुख सोख गन लखि वन शुशक समान।
क्रिशन बरतमा नाम गुर श्री हरि क्रिशन बखान।
(रि० १ : १ : ११)

चौपई

क्रिशन बरतमा[1] गुर हरि क्रिशन। कानन कलि के कलमल क्रिशन[2]।
नाम सरूप बिशनु[3] हरि क्रिशन। सिमरहु बंदहु ह्वै कबि क्रिशन[4]।
क्रिशिनि गुनन[5] गन मनहुँ क्रिसान[6]। बंधन बंसनि बिपन[7] क्रिसान[8]।
जिनके पूजक रेत क्रिसान[9]। सो सरूप सतिगुर भगवान।
(ऐ० २ : ३६ : १५)

(श्री गुरु तेगबहादुर जी के अन्य मंगल)

सवैया

मानस तीर मराल[10] बिराजति त्यों सिख श्री गुरु तेग बहादर।
मानस मैं धरि ध्यान नमो करि, राखबि धरम बिसाल बहादुर।
मानस दाहिन जे बिधि दाहिन[11], दाहनि दोशन होति सु हादर।
मान सही जिम सीख कही सतिनाम भजो मिलि संत महादर[12]।
(रा० २ : १ : ६)

दोहरा

तेग बहादर सतिगुरू दे शत्रुनि उदबेग।
बेग धारि रच्छहिं जनन गिरा दुशट पर तेग।
(रा० ३ : १ : ११)

धरम जगत रखि लीनि त्रिण सम अपनो दीनि सिर।
सिरर न दीनि प्रबीन तेग बहादुर धीर गुर।
(रा० ४ : १ : ११)

चौपई

हिंदु लाज राखी बनि चादर। तुरक जुवासा[13] को बड़ बादर।
सिख सिमरति जितकित हुइ हादर। नमो चरन गुर तेगबहादुर।
(रा० ५ : १ : १२)

---

१. जलती अग्नि। २. कलियुग के पापों के काले वन (के लिए गुरु हरिकृष्ण अग्नि समान हैं)। ३. नाम तथा स्वरूप से विष्णु समान हैं। ४. (उनका स्मरण करने से कभी) हानि नहीं होगी। ५. गुणों रूपी खेती के। ६. राहक (रखवाले)। ७. बंधन रूपी बांसों के वन के लिए। ८ अग्नि। ९. शिव। १०. मानसरोवर तट पर हंस। ११. जिन मनुष्यों का वे पक्ष लेते हैं ब्रह्मा भी उनकी ओर हो जाता है। १२. संतसंगति का ऊंचा द्वार। १३. जुवाहां—एक प्रकार का कांटों वाला पौदा, जो वर्षा होने पर गल जाता है।

दोहरा

चादर भे हिंदुवान की बादर अनंद उदोति।
तेगबहादर गुर नमो सिमरे हादर होति।
(रा० ६ : १ : ११)

तेगबहादर श्री गुरू परम बहादुर धीर।
सादर पर उपकार हित त्रिण सम दीओ सरीर।
(रा० ७ : १ : ११)

तेगबहादर सतिगुरू हादर जहिं सिमरंति।
पग पंकज परणाम लिहु परम रूप भगवंत।
(रा० ८ : १ : १२)

तेगबहादर सतिगुरू सादर सिमरे जोइ।
हादर देर बिहीन हुइ बंदौं तिन पद दोइ।
(रा० ६ : १ : ११)

हिंदू धरम तरु मूल को राख्यो धरनि मझार।
तेगबहादुर सतिगुरू त्रिण समान तन डारि।
(रा० ११ : १ : ११)

त्रिण तुल तन तजि तुरत तिह तुरकनि तेज निकंद।
तेग बहादुर सतिगुरू चरन कमल तिन बंदि।
(रा० १२ : १ : ११)

बिशयागनि ते शुशक ह्वै मन तरु को लगि आंच।
तेग बहादुर गुर क्रिपा इस जल को नित जांच।
(रि० १ : १ : १२)

चौपई

सिख बिकार परहरन बहादुर। जिस करुना सभि थान महादर[1]।
हिय ते सिमरति जत कत हादर। नमो नमो श्री तेग बहादर।
(ऐ० २ : ३६ : १६)

(श्री गुरु गोबिन्दसिंह के अन्य मंगल)

वारा[2] तुरकन तेज अपारा। पारा[3] धरम हिंद बिसतारा।
तारा दास बिरद[4] संभारा। भारा जस कलगीधर वारा[5]।
(रा० २ : १ : १०)

---

१. महान आदर (जिनकी कृपा से हर जगह बड़ा आदर प्राप्त होता है)। २. दूर करना। ३. प्रतिपालन। ४. सेवकों को पार करने का विरद। ४. वाला, का ।

दोहरा

सिंह म्रिगन रिपु ब्रिंद को महा बली नरसिंह।
सिंह पंथ के मूल द्रिढ[1] भजि श्री गोबिंदसिंह।

(रा० ३ : १ : १२)

सवैया

जो जग मैं तन हिंदु[2] ग्रहैं सभि पै उपकार बिसाल कर्यो।
मानहिं जे न, ग्रघी नहिं को सम, जाइ निरैपद[3] बीच पर्यो।
बीर बली गुर गोबिंद सिंह महां तुरकान को तेज हर्यो।
हिंद थिर्यो बड जंग जुर्यो, भट ब्रिंद मर्यो रसबीर भर्यो[4]।

(रा० ४ : १ : १२)

चौपई

उदै तेज जग महि सम सूर। दुशटनि के उपजावति सूर।
हते शत्रु गन गहि करि सूर। श्री गुरु गोबिंद सिंह बड सूर।

(रा० ५ : १ : १३)

कवित्त

भ्रिगु नंद[5] दान दीनि तांही के ग्रच्छत छीनि[6],
जाचति फिरति दीन दिज्जन को गोत है।
रामचंद ग्रनंद संदोह[7] ग्रसुमेध बिखै,
पायो दान खायो पूत पोते नाती पोत है।
पंड पूत[8] सूर सुत[9] ग्रादि जे संतोखसिंह,
दीनि जिन दान पुन छीनता उदोति है[10]।
श्री गुबिंद सिंह महां दान दीनो को न सम,
दिन दिन दूनो दूनो चौनो चौनो होत है।

(रा० ६ : १ : १२)

ग्रादि तिमरलंग ते ग्रनेक पातिशाह भए,
केती कुलि[11] बीति गई ग्रमल चलाइ कै[12]।
देश ते बिदेश चारों चक्क सभि निवें,
ग्राइ कहूं न मवासी[13] भट दीए बिचलाइ कै[14]।

---

१. जो खालसा पंथ के दृढ मूल हैं। २. शरीर से हिन्दू—हिन्दू जन्म है। ३. नरक। ४. बड़ा युद्ध करना पड़ा: जिसमें बहुत से शूरवीर मरे, पर हिन्दू धर्म को बचा लिया और सिक्खमत में वीर रस का संचार किया। ५. परशुराम। ६. परशुराम ने (ब्राह्मणों को) (पृथ्वी का) दान दिया मगर उसके रहते ही छिन गया। ७. ग्रानंद के पुंज। ८. युधिष्ठिर। ९. करण। १०. उसका विनष्ट होना प्रकट ही है। ११. कई कुल। १२. बादशाही करके। १३. ग्राकी। १४. विचलित कर दिये।

अनगन सैन, कोश दीरघ दुरग भारी,
राज को समाज कौन सकै सु गिनाइकै।
श्री गुबिंद सिंह के सरूप पंथ खालसा कौ,
कौन जाने दैंगे पातशाहत खपाइकै[1]।
(रा० ७ : १ : १२)

दोहरा

हिंदु धरम के आसरा तुरकनि तेज बिनाश।
श्री गुर गोबिंद सिंह जी! नमो चरन के पासि।
(रा० ८ : १ : १३)

नाम पितामो को लीयो हरि पद म्रिगपति जानि।
आगल पद पाछे कहे गोबिंद सिंह बखानि[2]।
(रा० ९ : १ : १२)

तुरक तेज तम तोम को हरता भानु मनिंद।
श्री गुरु गोबिंदसिंह जी करता दास नरिंद[3]।
(रा० १० : १ : १२)

सदा सुछंद अनंदमय दासनि ब्रिंद मुकंद।
श्री गुर गोबिंदसिंह जी बंदौं जुग कर बंदि।
(रा० ११ : १ : १२)

रच्यो निखालिसि खलक[4] ते पंथ खालिसा सुद्ध।
श्री गुरु गोबिंद सिंह जी हति रिपु क्रुद्धति जुद्ध।
(रा० १२ : १ : १२)

चहिं अबाशना[5] बाशना[6] करि निज मनहिं मलिंद[7]।
श्री गुर गोबिंदसिंह पद लपटहु लखि अरबिंद।
(रि० १ : १ : १३)

सवैया

बारी[8] रवी जस उज्जल की बिकसे जिम फूल सदा सुख बारी[9]।
बारीए बारी[10] रटे जिस नाम उधारति हैं जग जे निधि बारी[11]।

---

१. कौन जानता था कि गुरु गोबिन्द सिंह और उनका स्वरूप खालसा पातसाही को नष्ट कर देंगे। २. गोबिन्द सिंह के पितामह (हरिगोबिन्द) का पहला पद पीछे कहने से ही उनके नाम का उच्चारण हो जाता है—यथा गोविन्द हरि (गोविन्दसिंह)। ३. दास को राजा बना देने वाले। ४. जगत। ५. वासना रहित। ६. सुगंधि। ७. भौंरा (४-६) अर्थ—ऐ मन यदि तू सना रहित होने की स्थिति की सुगंधि को प्राप्त करना चाहता है तो भ्रमर बन कर (गुरु गोबिन्द सिंह के चरण कमल को लिपट जा)। ८. बाड़ी—बगीचा। ९. सुखकारी। १०. बारंबार। ११. सागर।

वारी[1] गुरू पर, पंथ शुरू किय, पौ शरनी करोए न अबारी[2]।
बारी[3] बंचन हरै मल पापनि श्रुयति सिक्ख सदा परवारी[4]।
(ए० २ : ३६ : १७)

(श्री गुरु ग्रंथ साहिब का मंगल)

चौपई

हानी गन बिघनहुं सुखदानो। दानी जिसहि सराहिं समानी।
मानी तीन लोक सरबानी। बानी[5] सिमर सुमति महानी।
(रा० २ : १ : १

(समस्त गुरु-मंगल)

दोहरा

आगे दश पतिशाह के सिख संगत गुर दास।
नमसकार मेरी सभिनि सुनहु इहि अरदास।
(रा० ४ : १ : १३)

सतिगुर चरन सरोज को मानस[6] मानस[7] होइ।
मानस[8] जनम सकारथा मानस[9] तर है सोइ।
(रा० ४ : १ : १४)

चौपई

दस सरूप को नमो हमारी। जिनहुं जननि[10] की दुबिधा टारी।
बरनों पंचम रासि अगारी। श्रोता सुनहु पाप गन हारी।
(रा० ५ : १ : १४)

पार ब्रह्म के गुर अवतार। तारन हित जग भगत उदार।
दारुन दुख ते कीनी उधार। धारे सिक्खी परे सु पार।
(ऐन० २ : ३६ : ६)

दोहरा

एक जोति दस रूप गुर जिन ते तर्यो जहान।
सभि के पद अरबिंद को सदा बंदना ठानि।
(रि० १ : १ : १४)

कवित्त

बेद बेदि निराकार जांको कहैं खेद बिन,
सोऊ ह्वै आकारि गुरू नानक अनंदमैं।

---

१. वारना, कुरबान करना। २. अविलम्ब। ३. वचन रूपी जल। ४. बलिहारी होकर। गुरु वाणी। ६. मानसरोवर। ७. मन। ८. मनुष्य ९. मान सहित। १०. दासों की, भक्तों की।

अंगद, अमरदास, रामदास, अरजन,
　　श्री हरिगुबिंद भए सोऊ सुखकंद मैं।
गुरू हरिराइ हरि क्रिशन परम जोति,
　　तेग के बहादर विशारद मुकंद मैं।
श्री गुबिंदसिंह लौ पदारबिंद सभिनि के,
　　बंदौं ब्रिद दुंद हरि दुंद हाथ बंद मैं।
(रि० ५ : १ : ४)

हरि हरि खोटी मति हरि हरि दै दै नाम,
　　गुर गुरु नानक जहाजनि को भरि भरि।
करि करि पार गुर अंगद अमरदास,
　　सोढी कुल चंद रामदास दया ढरि ढरि।
घरु घरु जस गुरु अरजन जानीयति,
　　श्री हरिगुबिंद हरिराइ रूप धरि धरि।
दरि दरि[1] दुख हरिक्रिशन नवम गुरू,
　　श्री गोबिन्दसिंह लौ चरन पर परि परि।
(रि० : ४ : १ : २)

(कवि-संकेत मर्यादा-मंगल)

चौपई

चंदन सेत सु चरचति अंगा[2]। चंद मनिंद बदन सित रंगा।
चंद्रिक[3] सेत लग्यो तन संग। जल प्रवाहि जिह रंग सुरंग[4]।
चौदहिं लोकनि व्याप महांनी। उचरति कोटहुँ अंत न जानी।
नई नई नित कविनि बखानी। अस बानी[5] पद बंदन ठानी।
(रि० ४ : १ : ४)

सवैया

सुंदर उज्जल चंद असंद[6] मनिंद दिसै मुख दुंदन[7] हानी।
चंद्रिका चंद्रिक[8] पारद[9] नारद सारद अंग के रंग समानी।
देव जि ब्रिद करैं अभिनंदन आनंद कंद बिलदं सु जानी[10]।
तां पद के अरबिंदनि को गन बंदन ठानि रचौं बरबानी[11]।
(रा० १२ : १ : २)

---

१. दल कर—नष्ट करके। २. जिसके अंग स्फेद चंदन से चर्चित हैं। ३. कपूर, चांदनी। ४. जिसका सुन्दर रंग जल-प्रवाह (गंगा) के समान है। ५. सरस्वती। ६. अकलंक, उज्ज्वल। ७. सुख-दुख का द्वन्द्व, दुख, क्लेष। ८. चंद्रमा। ९. पारा। १०. प्रवीण, ज्ञानवान। ११. श्रेष्ठ कविता (गुरु चरित्र के कारण)।

(कवि-संकेत मर्यादा-मंगल)

चौपई

सारद बरदा[1] सुमति बिसारद[2] । सारद चंद बदन ते भा रद[3] ।
पारद बरनी तन दुति नारद । दारिद हरिता दासनि सारद ।

(रा० २ : १ : १२)

दोहरा

बीन दंड[4] पाणीन महिं सरबोतमा प्रबीन ।
बीन बीन बिघननि हरहु दाती सुमति कवीन ।

(रा० ४ : १ : १)

चित्रपदा

सारसुती कर बेणवती ! शुभ देहु मती लखि सार असार ।
सार संभारि करो प्रतिपार उदार बड़ी सुख दास चतार ।
तारन ईश्वर पूरन श्री मुख बंदति अश्रित बाक उचारि ।
चारु बिलोचन साथ निहारि उतारति पार अपार संसार ।

(रा० ५ : १ : २)

दोहरा

सारसुती सरिता वहो बाक तरंग विचार ।
चारु सु मानस बिखै, जानों सार असार[5] ।

(रा० ३ : १ : १)

चंद अमंद मनिंद मुख सुमति कुनिंद[6] बिलंद ।
पद अरविंद अनंद दा बंद गिरा कर बंदि ।

(रा० ६ : १ : २)

सदा सारदा सार दा[7] सारद[8] चंद मनिंद ।
पारद बरनी पार दा बिघन बिनाशन ब्रिंद ।

(रा० ७ : १ : २)

कवित्त

चंद्रमा बदन वारी, उज्जल रदन[9] वारी,
बिघन कदन वारी[10], दाती है शरन की ।

---

१. वर देने वाली । २. विशारद, चतुर । ३. शरद ऋतु का चंद्रमा भी उसके मुख की शोभा के सामने कांतिहीन हो गया । ४. दंड सहित वीणा (हाथ में धारण किये) । ५. हे सरस्वती, तू मेरे मन रूपी मानसरोवर में सरिता की भांति प्रवाहित कर जिसमें वाक्य रूपी सुन्दर तरंगें और विचार रूपी लहरें उठें, जिससे मैं सार-असार को विचार सकूं । ६. करने वाली । ७. तत्त्व ज्ञान को देने वाली । ८. शरद ऋतु । ९. दांत । १०. काटने वाली ।

चंपक बरन वारी, कविता बरन वारी[1],
सुघट बरन[2] वारी उर में धरनि की।
कुंडल करनि वारी[3], सुमति करनि वारी,
कमल करनि[4] वारी, गती है करिनि[5] की।
लोचन हरन वारी[6], दरनि अरिनि वारी[7],
दोशनि हरिनि वारी, महिमा चरन की।
(रा० ८ : १ : २)

सवैया

श्री मुख पंकज की सम है जग व्यापक होइ बनी गन बानी।
नौ निधि दा सिधि दा सुधि देति, निकेत क्रिपा सुख हेतु महानी।
देवन के गन मानति हैं, जसु ठानति है, बरदाइक जानी।
सारसुती कर बेणवती मुझ देहु मती पद बंदन ठानी।
(रा० ६ : १ : २)

दोहरा

सारसुती निज दास पर भई सहाइ अपार।
पारद बरनी पारदा ग्रिंथ सिंधु ते पारि।
(ऐ० २ : ३६ : १)

(संत-मंगल)

दोहरा

तार लगी उर प्रेम की सिमरि नाम करतार।
तारन को समरत्थ सो नमो संत अवतार।
(रा० ५ : १ : १)

ग्यानी ध्यानी सकल जन सिमरैं नाम बिस्रंत।
जिन जान्यो बुधि स्वच्छ ते परे पार भव संत।
(रि० ५ : १ :१)

अस परमातम संत गन सदा सच्चिदानंद।
करहु ग्रंथ पूरन सरब बंदों द्वै कर बंदि।
(रि० ५ : १ : २)

गुर सिख संतन नमो करि सभि कै चरन मनाइ।
उचरौं सतिगुर सुजस को मन बांछति फल दाइ।
(रा० ७ : १ : १४)

---

१. वर्णन करने वाली। २. श्रेष्ठ-गुण, वर, कीर्ति। ३. कानों में कुंडल धारण करने वाली। ४ हाथों वाली। ५. हाथियों जैसी। ६. हिरण जैसे नेत्रों वाली। ७ वैरियों को नष्ट करने वाली।

चौपई

लाखहुं सतिगुर के सिख पूरे। अपन सरूप लख्यो जिन रूरे।
महां शकति धरि ब्रिध ते आदि। बंदन करौं धरहु अहिलाद।
(रा० ५ : १ : १५)

सगरो ग्रिंथ संपूरन करो। परहिं बिघन गन तिन को हरो।
शुभ मति उपजावो उर अंतर। बरनो सतिगुर सुजस निरंतर।
(रा० ५ : १ : १६)

(कथा महिमा—मंगल)

दोहरा

करि सभिहिनि पद बंदना धर पर धरि करि सीस।
रचौं कथा सतिगुरु की बिघन हरहु जगदीश।
(रा० २ : १ : १३)

सभि संतन आगै करौं बिनती गिनती छोर।
छोर कथा हुइ अंत लौ बंदौ जुग कर जोर।
(रा० २ : १ : १६)

सुनहुं कथा गुर की रुचिर जिम संग्राम प्रसंग।
मन बांछति प्रापति करहि पुन महिद अघ भंग[1]।
(रा० २ : १ : १६)

चौपई

हरी सिमरि कथ पूरन करी। करी कलुख को बाघनि खरी[2]।
खरी भई जिम मुकता लरी। लरी कुमति सो तूरन हरी[3]।
(ए० २ : ३६ : ५)

श्री गुर की गाथा शुभ गंगा। छंद उमंग उतंग तरंगा।
करामात बरनन जहिं कहां। इहु गंभीरता धारति महां ॥२२॥
राम कुइर गिरवर ते निकसी। सिक्खन बिखे जगत महिं बिगसी।
जोग बिराग भगति अरु ग्यान। बसहिं चार जलजंतु महान ॥२३॥
जप तप संजम दान शनान। धीरज दया छिमा निरमान।
सति संतोख आदि गुन जेते। लघु जल जंतु बास करिं तते ॥२४॥
दस गुर दसहुं घाट को पाइ। पावन भए लोक समुदाइ।
जनम मरन ते आदि कलेशू। इह बड़ पातक हते अशेशू ॥२५॥

---

१. बड़े-बड़े पापों का नष्ट करने वाला। २. पाप रूपी हथनी के लिए सिंहनी के समान।
३. दुर्बुद्धि लड़ने आई तब उसे शीघ्र दूर कर दिया।

गुर सिख जोगी मुनि रिषि भारी । गुर महिमा गंगा तिन प्यारी ।
पठन सुननि शुभ अरथ विचारन । पान शनान हरष करि धारन ।।२६।।

सिख संगत गुर प्रेमी प्यारे । लिखैं सुनैं जस गावन हारे ।
गुर महिमा गंगा कउ पाइ । भए मुकति गुर रूप समाइ ।।२७।।
(ऐन० २ : ३६)

संत लक्षण

चौपई

सिमरहिं राम लखहि सभि माहीं । दुख सुख महिं सम सदा रहांही ।
जो निरमल निरवैर निराला । जुरे रहैं तिह सों सभि काला[1] ।।२६।।

सभि जीवन पर दया करंते । काम क्रोध करि नहीं लिपंते ।
ज्यों जल कमल अलेप सदीवे । शत्रु मित्र उपदेशक थीवे ।।२७।।

पर निंदा नहिं सुनै सुनावैं । निंम्री मन, षट लक्खन पावैं ।
इनते परख लेहि बुधिवान । सोइ साध ब्रिंद गुनवान ।।२८।।
(रा० ५ : ४३)

---

१. हर समय परमात्मा से जुड़े रहते हैं—उसी के ध्यान में लीन रहते हैं ।

(इन मंगलाचरणों में यमक का अत्यधिक प्रयोग हुआ है । यमक प्रयोग के कारण उनके कुछ स्थानों पर अन्य अर्थ भी निकल सकते हैं ।)

आध्यात्मिक विचार

[ब्रह्म—अकाल पुरुष]

दोहरा

सति चेतन आनंद इक असति भांति प्रिय पूर[1] ।
नभ सम सभि महिं, शुभ करन गन मंगल को मूर[2] ।

(रा० ६ : १ : १)

माया से सवल जु भयो, जिति किति व्यापि समान ।
सार असार संसार करि सच्चिदानंद महान ।

(रा० ७ : १ : १)

जिसि बिन जाने ब्रिंद दुख, जाने अनंद विलंद ।
पार ब्रह्म परमातमा बंदौ जुग कर बंदि ।

(रा० ८ : १ : १)

सवैया

श्री पुरशोतम पूरन है, परमातम पालक, लेप न माया ।
श्री परमेशुर माधव, पावन पोषक, प्रेरक पार न पाया ।
जै करिता जगदीश, जजे जग[3] जीवन जोनि बिना, जस छाया ।
श्री पति, जोति सरूप अनूपम, भूपन भूप नमो हरिराया ।

(रा० ९ : १ : १)

दोहरा

सति चित अनंद प्रमातमा सभि जीवन को जीव ।
सदा शांति, नभ सम रव्यो, सरब शकति को सीव[4] ।

(रा० १० : १ : १)

सति चित अनंद समान इक निरगुन सरगुन माहिं ।
ग्यानादिक गुन ईश के जीव बिखै इह नाहिं ।

(रा० ११ : १ : १)

---

१. अस्ति, भांति और प्रिय रूप होकर सब में व्याप्त हैं । २. मंगल का मूल । ३. जिसे सारा जगत पूजता है । ४. शक्ति की सीमा, अतुल शक्ति वाला ।

पारब्रह्म परमातमा व्यापक सकल समान।
सभि अलंब प्रेरक, प्रभू, बिदतहु रिदे महान।

(रा० १२ : १ : १)

तीनों काल अलिपत रहि खोजैं जहिं प्रवीन।
बीनति सचिदानंद त्रै जानहिं मरम रती न।

(रि० १ : १ : १)

तार तमहि रम इक समहि पार ब्रह्म बिसतार[1]।
तारति गुरू जनाइ जिस मोह बिशय बिसतार।

(रि० १ : १ : २)

चौपई

श्री अरजन सुनि सुमति बताई। निशफल अस संदेहि उठाई।
निरगुन सरगुन तौ दुइ कहीअहि। जो इन बिखै भेउ कुछ लहीअहि।

(रा० ३ : ५५ : ३७)

दोहरा

दीननि दयाल अनंदघन जो सभि मैं लय लीनि।
लीनी नाम जन जाहि ने तिन को कैवल[2] दीनि।

(रि० ४ : १ : १)

सवैया

तारनि गैन[3] गिनै तु गिनैं, सुखसागर के गुन को कवि पार न[4]।
पारनि[5] जीवन को करता, जिस को जस बेद पठै सभ चारनि[6]।
चारनि भेद लख्यो न गयो किसको न बिशे अस रूप अकारन।
कारन जो ब्रहमंड अखंड निरंतरि आप रम्यो तम तारन[7]।

(रा० ५ : १ : ३)

करता जग केर सुरासर को निस द्युोस[8] चराचर को भरता।
भरता सभि को परमेश्वर पूरन दास बिनै नित आचरता[9]।
चरिता[10] जिसके न लखे पर हैं मुनि शेश गिरा कहि अच्छरता[11]।
छरता मति को[11] लखि चातुरता तजि आतुरता[12] गहि सकरता।

(रा० ३ : १ : २)

चौपई

पार ब्रह्म पूरन करतारा। परमेशुर जगतेश उदारा।
दीन बंधु प्रिय सिक्खन केरा। प्रभु हरि व्यापक जहिं कहिं हेरा।।३२।।

---

१. पारब्रह्म (जगत रूपी) विस्तार करके छोटे-बड़ों—सभी में एक समान व्याप्त है। २ मुक्ति। ३. तारों को आकाश में। ४. ब्रह्म के गुणों का अन्त नहीं। ५. पालना। ६. चारण-भाटों की तरह अथवा चारों वेद। ७. कम-ज़्यादा नहीं, प्रकाश-अंधकार नहीं। ८. रात-दिन। ९. अनुकूल, सफल करने वाला। १०. चरित्र। ११. नाश रहित। ११. सारी बुद्धि को मात कर देने वाला। १२. नम्रता।

अच्युत महापुरुष गुण खानी। परम क्रिपाल, परम सुखदानी।
निरभउ, निरंकार, निरकाल। निरगुन सरगुन रूप बिसाला ॥३३॥

प्रभु संभू निरभउ, सभि स्वामी। मधुसूदन नरपति जगदाता।
दुशटन गंजन जन मन रंजन[1]। करता पुरुष अनंत अनंजन ॥३४॥

सत्ति रूप जोतिन की जोति। जिह सत्ता ते जगत उदोति।
परमातम, नरहरि अविनाशी। रूप न रंग न घटि घटि बासी ॥३५॥

(रि० ४ : ५१)

भुजंग

तूही ब्रह्म ग्यानी, ब्रह्मं रूप तेरो।
तूही एक ईशं सभै लोक चेरो[2]।
तूही एक रूपं तूही रूप नाना।
तूही जीवका दे, करै जीव खाना।

(रा० ३ : ४१ : ३६)

कारन करन आप तुम सारे।
असमंजस हम समुख उचारे।

(रा० ४ : ३० ५०)

(सृष्टि रचना, जगत)

श्री गुर बरनन कीन सिखाई। ब्रह्म सबल माया जग जाई।
हुकम प्रमेशुर को तिन पायो। अपने महि सब जग भरमायो।

(रा० १ : २२ : २३)

माया करि ब्रह्म ते जग भासा। जिम बाजीगर केर तमाशा।
होइ बिनाश जबै अग्यान। नहि पुन रहै ब्रह्म बिनु आन।

(रा० २ : ३६ : १०)

इंद्रै संग पदारथ होइ। जान्यो परै जगत है जोइ ॥३४॥
इंद्रै ते मन लेहु हटाइ। उर अन्तर ही राख टिकाई।
मिटहि जगत आतम सो मिले। थिरता लहै बहुर नहि चलै ॥३५॥

(रा० ८ : ४९)

जगत अनादि काल को ऐसे। चल्यो आइ जिह पार न कैसे।
अबि तुम सभि ने मोहि पिछारी। काहु न शोक मोह को टारी।

(रा० १ : २८ : ६)

काल बिनाशक सभिनि बिसाला। आतम अहे काल को काला।
जग को लखिकै सुपन समानै। बरण आश्रमनि क्रिया सु ठानै।

(रा० १ : १२ : ७)

---

१. प्रसन्न करने वाला (भक्तों के मन को)। २. दास।

भेद सजाति बिजाती, सुगति न । सभि ते न्यारो ब्रह्म सचेतन ।
जिम जुग ब्रिच्छ सजातीवान । तथा ब्रह्म ते ब्रह्म न ग्रान ।।२९।।

जिम तरु पत्थरु ग्रहै विजाती[१] । तिम भी ब्रह्म के नहिं बख्याती[२] ।
चेतन ब्रह्म, जगत जड ग्रहै । भए विजाती दोनहु लहै[३] ।

(रा० ५ : ४१ : ३०)

ब्रह्म सदा सतिचित ग्रविनाशी । जड़ कलपत मिथ्या सभि नाशी ।
ब्रह्म को नहीं बिजाती रहै । यांते भेद ब्रह्म नहीं लहै[४] ।।३१।।

(रा० ५ : ४१)

जाम जामनी करहु शनान । सुनहु कीरतन प्रभु निरबान ।
जगत ग्रनित्त, ग्रातमा साचो । इम लखि सति संगति चित राचो ।

(रा० ४ : ३० : ४८)

देहनि केर सनेहु ग्रछेहा । मिथ्या ग्रहै न राखहु एहा ।
ग्रादि ग्रंत महिं जो नहिं पय्यति । मध्य सत्य को कैसे लहियति ।।१८।।

जो उपजहि सो बिनसनि हारो । लखि तांको मिथ्या निरवारो[५] ।
इस महिं संकट ग्रनिक प्रकार । नाशवंत द्रिशमान संसार ।।१९।।

जिस को इहु ग्रलंब नित भासे । सो बिन ग्रादि न ग्रंत प्रकाशे ।
काल सपरशहि जाहि न क्यों हूं । ग्रादि ग्रंत मधि इकरस त्यों हूं ।

(रा० १ : २५ : २०)

बिशियन महिं ग्रानंद ग्रग्यानी । निजानंद[६] प्रापति है ग्यानी ।
सभि को भूल देहि धरि हंता । पुनहि पदारथ ममतावंता ।।३६।।

ऐ सभि माया केरि विकार । जो भासति है नानाकार ।
नहीं वासतव जान्यो जाइ । इह माया को रूप कहाइ ।

(रा० २ : ३५ : ३७)

चौपई

देखहु जग सनेहु की चाली । इक दिन भरे, एक दिन खाली ।
कबहुं हरे, शुशक कबि जावहिं । कबहुं जनम कबहुं बिनसावहिं ।।७।।

कबि मेला, कबि बिरहि दुहेला[७] । कबि संकट कबि होत सुहेला[८] ।
सदा प्रग्णामवंति[९] जग ग्रहै । नहीं एक रस थिरता गहै ।।८।।

(रा० ७ : २३)

---

१. पत्थर ग्रौर वृक्ष एक जाति के नहीं हैं ! २. इस प्रकार भी ब्रह्म नहीं है । ३. जानते हैं । ४. ब्रह्म में जड़ जगत कल्पित है, इसलिये मिथ्या है, मिथ्या होने के कारण नाशवान है । ब्रह्म से भिन्न जगत की ग्रौर कोई सत्ता नहीं है । ५. त्याग दो । ६. ग्रात्मानंद । ७. विरह-दुख । ८. सुख । ९. परिवर्तनशील ।

सुनि सतिगुरु तबि उत्तर दीनि। जबि नर सुपतहि निंद्रा लीनि।
सुपन अवसथा जबिहूँ पाइ। सगल जगत जानहु तिस भाइ ॥३२॥
जबिलौ सुपना नर को रहै। तबि लौ साचो हि तिस लहै।
भै पावति अरु भाज्यो जाति। कै प्रिय देखति उरु हरखात।
जे सुपने को भूठो जानहि। त्रास बिषाद हरख क्यों ठानहिं।
तबि साचो लखि कै सभि करै। बीरज बिन साचे क्यों गिरै ॥३४॥
जाग्रत जबहि अवसथा पाइ। जे साचो तबि क्यों न दिसाइ।

(रा० ४ : ५३)

महां पुरख जोगी ते सुनिकै। उत्तर दीनसि सतिगुरु गुनि कै।
विवरतवादि[1] इहु हम ने कह्यो। द्रिश्य प्रपंच[2] ब्रह्म ते लह्यो।
जथा रजू ते स्रप उपजंता। भै आदिक ते कंप उठंता।
तैसे ब्रह्म ते जग इह दीखा। हरख शोक दे तिसे सरीखा।
बिना ग्यान ते मिटे जु नाहीं। सदा सशंकति दुख सुख माहीं।

(रा० २ : ३६ : ६)

जनम अनेकन महिं बिरमावति[3]। ऊचै नीचै बहुत भ्रमावति।
वाद प्रणाम[4] अपर बिधि मानो। रूप दूध ते दधि हुइ जानो।
दधि ते बहुर दुगध हुइ नाहिं। पूरब रूप नाश भा ताहिं ॥७॥
हाटक होइ न ऐसी भांति। भूषन महिं सरूप दरसात।
बिनसे अलंकार आकार। पूरब रूप हेम ले धारि ॥८॥
धुअर धौलर जगत तमाशा। इसथिरता को क्या भरवासा[5]।
सम दरिआउ चल्यो नित जाति। भर्यो रहै इक सम दिखराति।

(ऐ० १ : ४४ : १४)

शाहु आदि सभिहिनि जग मरना। नदी प्रवाह जथा जि इहु थिरना।

(रा० ८ : ३७ : २४)

माया

माया करि ब्रह्म ते जग भासा। जिम बाजीगर करे तमाशा।
होहि बिनाश जबै अग्यान। नहिं पुन रहे ब्रह्म बिनु आन ॥१०॥
नहिं असत्य नहिं सत्य सु माया। सत्यासत्य भी नहिं बनि आया।
लखहु अनरबचनी[6] इहु यांते। किह बिधि कहिबे जाहि न काते ॥११॥

---

१. इसके अनुसार ब्रह्म सत्य है, उससे जगत माया के कारण भासता है पर ज्ञान द्वारा ब्रह्म के बिना और कुछ दिखाई नहीं देता—रस्सी में सर्पवत। २. दृश्यमान जगत। ३. घूमना, फिरना, चक्कर काटना। ४. प्रणामवाद—दार्शनिक सिद्धान्त। ५. भरोसा। ६. जिसका वर्णन न किया जा सके।

है अनादि जिसु आदि न मान। अंत पाइ उपजे जबि ग्यान[1]।
सतिगुर के सुनिबे उपदेश। हतहि अविद्या सहत कलेश ॥१२॥
(रा० २ : ३६)

जे माया को कीजहि निरनो। इस को अंत न क्यों हूं बरनो।
जुग कोटानि कोट गन हेरै। तऊ सु लखियति परे परेरै॥४७॥
माया की है शकति अनंत। खोजि खोजि हारे बुधिवंत।
किस ते पार न पायो जाइ। यांते एक रहै लिवलाइ॥४८॥
(रा० ४ : ५३)

बहुर प्रभु ने चतर उपाए। जिन ते मिलहि मोह कहु आए।
इक बैराग जोग अरु ग्यान। चउथी उपजी भगति महान॥२४॥
ग्यान, विराग, जोग शुभ तीन। पुरष रूप इन को मन चीन।
माया ले इनको भरमाई। बड़े जतन ते उबर्यो जाइ॥२५॥
भगति अहै प्रतिव्रत्ता नारी। इस पर नहिं माया बलु भारी।
इसत्री को इसत्री न भ्रमावे। धरहि भगति तिस प्रभु मिलावे॥२६॥
(रा० १ : १२)

जिस जिस पर गुरु किरपा करी। भए निहाल अबिद्या हरी।
दुहिं लोकन की लहि बड़िआई। तरे सु लीनि संग समुदाई।
(रा० १ : ३४ : ८)

ए सभि माया केरि बिकार। जो भासति हैं नानाकार॥३७॥
मैं नहिं जानौं करन बखान। इसै नाम माया अग्यान।
उभै शकति के धार निहारी। इक आवरण विखेप उचारी॥३८॥
करहि सरूप अछादनि[2] जोइ। ग्यानी भनहिं आवरण सोइ।
जिह नानत्त्व[3] प्रतीत कराई। सो विखेप, जहिं कहिं द्रिशटाई॥३९॥
उपादान[4] इह सभि जग केरी। है अघटन घटना सु घनेरी[5]।
जथा रजू हुइ वक्र परी है। किह नर निशचै सो न करी है॥४०॥
बिन जाने रजू तिस काल। लख्यो सरप इह पर्यो कराल।
रजु धिशटनि पाइ अग्यान। कारज कीनो सरपु महान॥४१॥
तिमि माया धिशटान धरंति। ब्रह्म आसरे बिशै करंति।
जथा तिमर हुई कोशठ अंतर। कोठा आश्रै ताहिं निरंतर॥४२॥

---

१. ज्ञान प्राप्त हो जाने पर इसका अंत हो जाता है। २. भगवान के रूप को ढकना। ३. नानात्व प्रतीत कराने वाले माया के रूप को 'विखेप' कहा जाता है। ४. कारण। ५. अघटने योग्य को घटने योग्य बनाने वाली है।

बिन कोशठ अंधकार नहीं है। यांते आश्रै ताहिं उही है।
पुन सो तिमर फैल तहिं ही को। बिशै करति तिस कोशठ ही को ।।४३।।

छादि लेति चहूं ओरन माहिं। जिस ते द्रिशटि परति है नाहिं।
तथा ब्रह्म को माया जानि। आश्रै बिशै करति बुधिवान ।।४४।।

जबि अग्यान[1] सकारज सारे। भ्रम छुट जाइ सरूप निहारे।
परम तत्त को मति करि जाना। ऐकंकार महत महीयाना ।।४५।।
(रा० २ : ३५)

यांते अनरवचनि प्रभु माया। जानी परहि न बिन गुरु दाया ।।३५।।
साच झूठ किछु कही न जाइ। तिह कारज इह जग तिस भाइ।
माया को आख्य अग्यान[2]। इस को रूप न निज को जाना ।।३६।।
वसतु सत्य कौ जानहि नांही। कलपहि अपर तिसी के मांही।
(रा० ४ : ५३)

गुरबानी बरजन आचरनी। रिदे बिकारनि तिन के छरनी।
महद अविद्या चंचल हरनी। करि निज बल को ततछिन हरनी।
(रा० ९ : ८ : ३९)

* * *

जीव

सत्ति आतमा निरनै करहि। पूरब हुतो[3], देहि बहु धरहि।
अबि प्रतक्ख[4] अरु रहै भविक्ख[5]। यां ते सत्ति लखहि गुरु सिक्ख ।।५१।।

बहुर आतमा चेतन जानहिं। जिह सबंध तन चेतन ठानहिं।
फरकावन चख आदिन रिखीके[6]। जिस बिन होति नहीं लखि नीके ।।५२।।

---

१. अज्ञान ने रस्सी के आश्रय को ग्रहण कर सर्प रूपी महान कार्य कर दिया है। २. अज्ञान भी ब्रह्म के आसरे है और ब्रह्म को ही विषय बनाता है। यहाँ रज्जु में सर्प का दृष्टान्त देकर यह कहा गया है कि अज्ञान का कार्य प्रपंच है इसलिये अज्ञान और उसका कार्य प्रपंच भ्रम के कारण है, जब आत्म-ज्ञान से भ्रम दूर हो जाता है तो अज्ञान और उसका कार्य प्रपंच कल्पित लगने लगते हैं। ३. पहले थी। ४. अब है। ५. और भविष्य में रहेगी। ६. आँख आदि इन्द्रियों का फड़कना।

पुन आतम को रूप अनंद । परखति भले सदा बिन दुंद ।
बिशियन बिखै अनंद कलपंता । इहु मम रूप न अग्य लखंता[१] ।।५३।।

परम हंस सो कहीअहि रूप । सति चेतन आनंद अनूप ।
तन ते न्यारो जानहिं ऐसे । मंदिर बिखै बसहि को जैसे ।।५४।।

तिस को अपनो रूप पछानहि । तन हंता[२] निरनै करि हानहि ।
सम मंदिर के जानहि न्यारो । जीरण होए त्याग पधारो ।।५५।।

तन आतम समसर पय पानी । करहि जु नर हुइ हंस समानी ।
तिन को परमहंस है नामू । पावहिं ब्रह्म ग्यान अभिरामू ।।५६।।

तन ते न्यारो जबि मति धरैं । रसु बिशियन हित पाप न करैं[३] ।
जल ते कमल रहै निरलेपू । लिपहि न किमि हुइ ब्रिंद विखेपू[४] ।।५७।।

सूरज की दिश है तिनि ध्यान । छुवै न जल रंचक भरि आनि ।
परम हंस तिमि जग महिं रहै । आतम ध्यान सदा उर लहै ।।५८।।

तन के सुख दुख जबि परि जाईं । तिन ते हरष न सोग कदाइ ।
बरतै ग्यानी सम अग्यानी । जानहिं जग को सुपन समानी ।।५६।।

बंधनि होत नहीं पुन ताहूं । रहै समाइ ब्रह्म के माहूं ।
(रा० १ : ११)

सुनि करि शरधा पिख करि भारे । श्री अंगद गुरु बाक उचारे ।
भाई भल्लू रिदे बिचारहु । देह अनित्त सदा निरधारहु[५] ।।४।।
सो तौ म्रितक जानि ही लीजै । इस हित चित नहि संसा कीजै ।
आतम सदा साच ही जानो । किस को मार्यो मरहि न मानो ।।५।।
पावक दाह करति नहीं तिसै । जल न डुबाइ सकहि निज बिसै ।
शसत्रनि ते नहिं छेद्यो[६] जाइ । जिसि को पौन न सकइ उडाइ ।।६।।
काल बिनाशन सभिनि बिसाला । आतम अहै काल को काला ।
(रा० १ : १२)

जल तरंग जिउं जलहि समावैं । हैं जल जल ते भिन्न दिखावैं ।।६।।

---

१. विषयों में आनन्द की कल्पना करता है, जो कि झूठा है । 'यह मेरा रूप नहीं है,' अज्ञानी यह नहीं समझता । २. अहंकार । ३. जब जीव आत्मा को शरीर से भिन्न समझ कर (उसके वास्तविक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लेता है) तब वह विषयों से रस प्राप्त करने के लिए पाप नहीं करता । ४. कितने ही दुख क्यों न हों, उसमें अनुरक्त (लिप्त) नहीं होता । ५. निश्चय करके रखना, समझना । ६. काटा जाना ।

संत द्वैत तिम नांहिन माने । आतम परमातम इक जाने ।
जिम जल बिखै बुदबुदा होइ । जनम मरन दोहिनि इम जोइ ।।७।।

जथा पत्र पुरातन तरु के गिरैं । बहुर न जुरैं नए लग परैं ।
तथा सरीर जरजरी होइ । मरति न ए उपजहि जग जोइ ।।८।।
(रा० १ : २८)

आदि अंत तन के जबि रहे[1] । तन निज रूप कुतो तुम लहे ।
तन कुरा सम बसत्र लखै हो । जीरन भए अपर धरि लै हो ।।१०।।

तांते तन पट पहिरहि जोइ । अपन सरूप जानीयहि सोइ ।
कबहूं मरहि न मार्यो जाइ । जल डूबै नहिं अगनि जलाइ ।।११।।

तन झूठो सति रूप तुमारा । तन दुख, तुम हो अनंद उदारा ।
तन जड़ है चेतन निज रूप । अस निशचै उर धरहु अनूप ।।१२।।
(रा० २ : १८)

तोमर छन्द

वर दीन द्वादश हेर । सु प्रसन्न होइ बडेर ।
गर संग लावन कीनि । पुलकाइ प्रेम प्रबीन ।।२६।।

मम रूप भे मिलि अंग । सलिता मिले जिमि गंग ।
जिमि बूंद सिंधु मझार । तिम एक रूप हमार ।।२७।।

दोहरा

कनका पावक दौ बिखै मिलि सरूप इक होइ ।
तिम हम तुम ऐकै भए भेद न जानिय कोइ ।।२८।।
(रा० १ : १७)

चौपई

हरष शोक मन महिं नहिं कोऊ । तूं परत्तक्ख्य रूप मम होऊ ।
देह अछत[2] ग्यानी जग ऐसे । भर्यो कुंभ सागर रहि जैसे ।।३९।।

घट फूटे जल सों जल मिलै । तन तजि ग्यानी ब्रह्म सों रलै ।
आवनि नहिं मेरो नहिं जावौं । परमातम निज रूप समावौं ।।४०।।
(रा० १ : २६)

---

१. शरीर से पहले और अंत होने के बाद भी तुम रहे । २. रहते ही ।

भन्यो निहाले सुनि तिस काल। कितिक सुमति जुति कहिं इस ठाल।
जबि लौ द्वैत होति जन रिदे। त्रिपटी[1] बनी रहति है तदे ॥१९॥

दोहरा

एक उपासि उपासना त्रिती उपासक सेय।
ध्याता धेय रु ध्यानु तिम ग्याता ग्यान रु गेय ॥२०॥

चौपई

जबि प्रापति अद्वैती होइ। तहिं तीनहु को बननि न[2] जोइ।
पारब्रह्म को बनहि सरूप। जिम सागर हुइ बूंद अनूप ॥२१॥
नामी नाम न जापक जबै। अपनि सरूप सरब लखि तबै।

(रा० ५ : ४५)

जनम मरन को कशट बिसाल। करहु मिटावनि दीन क्रिपालु।
श्री मुख कह्यो न आप पछाना। बिन निज जाने कशट महाना ॥३६॥
करहु सरूप कवन तैं जाता। जिस के हित महिं नित चित राता।
'हम मानुष तन रूप सु हेरे। साचे पातिशाह ! सिख तेरे ॥३७॥
सुनि गुरु कह्यो' सरीर जि सारे। पंच तत्त के लेहु बिचारे।
तन जनमे ते पूरब अहै। बिनसे ते पुन पाछे रहै ॥३८॥
सो तन गुरु अरु सिख को सम है। तिम प्रमातमा नहिं किमि कम है।
नहिं जनमति नहिं मरता सोइ। साखी रूप एक सम होइ ॥३९॥

(रा० ५ : ४६)

* * *

(ईश्वर एक जीव)

वाच दुहनि को भिन्न पछानो। जीव वाच अलपग्ग महानो।
ईशुर वाच्य अहै सरबग्य। जानति नीके जोइ तत्तग्य ॥४३॥
इक उज्जल इक ताल मलीन। रवि प्रतिबिंब दुहिन महिं चीन।
जल मलीन महिं मैलो भासै। उज्ज्वल हुइ उज्जल जल आशै ॥४४॥

---

१. तीन वस्तुओं का इकट्ठा रहना—उपासक उपासना, उपास्य; ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय। २. तीनों का रहना दिखाई नहीं देता, ज्ञान, ज्ञाता और ज्ञेय का भेद मिट जाता है।

शुद्ध सतोगुन माया माहिं। ब्रह्म प्रतिबिंब सु ईश्वर आहि।
मलिन अविद्या तम गुण बिखै। ब्रह्म प्रतिबिंब जीव तिह पिखै ।।४५।।

ईशुर महिं षट गुन को जानि। जांते कहीअति है भगवान।
षट बिकार जुत जीव रहंति। भिन्न भिन्न सुनि सभि बिरतंत ।।४६।।

जसु, ऐश्वरज, बिराग, उदार। लछमी ग्यान सु पूरन धारि।
षट बिकार जनमनि अरु मरने। इह सरीर के दोनहु बरने ।।४७।।

छुधा[1], त्रिखा[2], दुइ प्राननि केर। हरष, शोक मन के जुग हेरि।
साखी रूप ब्रह्म निरलेप। मुकति होति लखि बिना विखेप ।।४८।।

(रा० ५ : ४६)

* * *

(ब्रह्म, जीव, माया, जगत आदि)

चौपई

बाजीगर जिम बाजी पावहि। अनिक रूप करि स्वांग दिखावहि।
क्रिया करावति अनिक प्रकारा। फिरहि, लरहि बड बांधि अखारा ।।१४।।

इक बाजीगर तिन महिं साचा। बाजी सभि मिथ्या कच पाचा।
सगरी पुतरी पुरष अधीनु। नाचहिं जथा नचावन कोनु ।।१५।।

किसहि पलावहि, किसे जितावहि। को सोगी को हरष उपावहि।
जबहि संकोचहि सकल पसारा। रहै इकाकी करनै हारा ।।१६।।

तिम जानहु परमेशुर रूप। निज इच्छा ते करहि अनूप।
अखिल चराचर को उपजायो। अपन शकति ते मधि प्रविशायो ।।१७।।

चेतनता जीवनु कहु होई। क्रिआ करति जिस ते सभि कोई।
दुख सुख ते ह्वै बिषम महाने। इस महिं करम हेतता जाने ।।१८।।

जबि चाहति इन लै कहु करिबे। अखिल बिनासहि ऐकहु थिरबे।
उतपति कौन रूप इहु होइ। कहो बिनाशमान है कोई ।।१९।।

इस पर सुनहुं अपर द्रिशटांत। जिसु बिधि होइ सुनहु सभि भांति।
जल ते अधिक तरंग उठंते। लघु दीरघ ह्वै पुन बिनसंते ।।२०।।

भए तरंग अरु जल सोई। नाम मात्र इक तिन कहु होई।
जे नहिं जानति सो इमु कही। भयो तरंग सु जल ह्वै नहीं ।।२१।।

---

१. भूख। २. प्यास।

जो जल जानहिं अखिल तरंगु। सिद्ध करहि कारज सरबंग।
पान शनान करहि सभि रीति। त्रिखा मलिनता बिन ह्वै नीत ॥२२॥

अपर तीसरो जोगी सुनो। शुभ द्रिशटांत रिदै इमु गुनो।
कंचन एक बन्यो बहु भांति। कुंडल, कटिक आदि दरसात ॥२३॥

कंचन नाम छोरि करि कहैं। इही कटिक, इह कुंडल अहै।
जे सराफ परखन तिह करै। कंचन बिना न कुछ मनु धरै ॥२४॥

नाम अकार गिनहि नहिं कोइ। कनक वासतव परखहि सोइ।
तिम ग्यानी को नाना नाहिं। सभि महिं ब्रह्म रूप दरसाहि ॥२५॥

भूषन ते पूरब शुभ कंचन। भूषन बने भेद तऊ रंच न[1]।
बिनसे ते बिन कनक न आनु। इम जानति हैं जे बुधिवानु ॥२६॥

प्रिथम जगत ते ब्रह्म सरूप। बन्यो अनिक आतमा अनूप।
नशट होहि नाना बिधि जोइ। बिना ब्रह्म ते दुती न होइ ॥२७॥

आदि नहीं जो अंत न रहै। मध्य कुतो साचो तिह कहैं।
यांते ब्रह्म रूप सभि जान। अपर अकार भरम ही मान ॥२८॥

अपर रीति हेरहु तिस करनी। जबिही बीज बीजिओ धरनी।
अंकुर होइ पात दरसावहि। शाखा अनिक फूल बिगसावहिं[2] ॥२९॥

सो इक बीज वहुत बिधि भयो। नाना रंग रूप निरमयो।
फल लग कै पुनि पाकन होवा। बीज इकाकी बाकी जोवा ॥३०॥

प्रिथम पिछारी बीजहि रह्यो। मध्यकाल जग के सम लह्यो।
एक ब्रह्म बहु बिधि लखि जाति। जोगी सुनहु और द्रिशटांत ॥३१॥

लाखहुं घट महिं एक गगन लहि। रहहि अलेप लेप जिस को नहिं।
जबिही फूट जाहिं घट सारे। सो नभ इक ही परही निहारे ॥३२॥

घट ले गमनहिं इत उत मांहि। नभ रस एक[3] न आवहि जाहि।
जो होवहि पूरन सभि थान। तिस को बनहि न आवनि जानु ॥३३॥

तथा ब्रह्म इक रस सभि मांहि। सभिहि प्रकाशहि लेपहि नाहिं।
सत चेतन आनंद सरूप। जीव जीव प्रति अहै अनूप ॥३४॥

एक आतमा ब्रह्म अनश्व है। सदा अनादी जो इक रसु है।
आइ न जाइ कितहुं ते कोइ। व्यापक सरब गगन सम सोइ ॥४६॥

---

१. ज़रा भी भेद नहीं है। २. विकसित होना, खिलना। ३. आकाश एक रस है।

अद्वै अनंदातम सभि थान। निहकल, अक्रै, अजै[1] महांन।
गुर पूरन सों मिलि है जबै। हउमै मल निरवारहि[2] सबै ।।४७।।

सभिहिनि ते उतक्रिशट[3] जु गति है। सो प्रापति हुइ आनंद सति है।
पूनरावरति[4] नहीं जित होइ। अंम्रित रूप एक रसु सोइ ।।४८।।
(रा० २ : ३५)

* * *

(देवी का प्रकट होना)

जे जै भद्रा[5] लघु ससि भाली[6]। भवा भैहरा[7] भूर क्रिपाली।
छूटे सिर पर बाल बिसाली। जै जै रण महिं रूप कराली ।।२५।।

कहिं लगि कहौं नाम जगमाता। सिमरति गुर एको रंग राता।
भूख पिआसा लखैं न दोई। इस बिधि प्रेम पराइण होई ।।२६।।

भयो प्रकाश अपूरब हेरा। गरज्यो शबद अकाश बडेरा।
तडिता सम थरकति दरसावैं। बारि बारि भूकंपन आवैं ।।३७।।

पौन प्रचंड बिसाले चाला। गरजति घन की घटा कराला।
तुरत अकाश बिमल हुइ गयो। अधिक प्रकाश देसो दिश भयो ।।३८।।

इक सम बैठे धीरज धारी। पठति मंत्र अरु आहुति डारी।
कई बार दामन सी दमकति[8]। गिर के शिखर निकट ह्वै चमकति ।।३९।।
(रि० ३ : १०)

त्रिभंगी छन्द

प्रगटी जगरानी, साभ गुन खानी, जन बरदानी भूर प्रभा[9]।
क्या सूरज इंदै[10], है न मनिंदै[11] पिखि द्रिग मुंदै देव सभा।
क्या पावक रासै, तडिता भासै, कहां प्रकाशै ह्वै सम ना[12]।
किह नदर[13] न ठहिरै, झांकति हहिरै, अंगनि थहिरै, भ्रित जम ना ।।५।।

---

१. कलपना रहित, क्रिया रहित, जन्म रहित। २. अहंकार रूपी मैल को दूर कर देती है। ३. उत्कृष्ट—ऊंची। ४. पुर्नागमन—पूनर्जन्म। ५. कल्याण रूप। ६. मस्तक पर चंद्रमा वाली। ७ संसार के भय दूर करने वाली। ८. बिजली की भांति चमकी। ९. बड़ी शोभा वाली। १०. इन्दु—चन्द्रमा। ११. समान। १२. बराबर नहीं। १३. नज़र—दृष्टि।

जुग चरन बिसाला, नखन कराला, जंघनि ताला[१] तरू जथा।
कट मैं अलबाला हाडिनि माला[२], पिखि भै हाला उदर तथा।
प्रिसटी पर बाला[३] लटके जाला दीरघ काला रंग सजा।
तरु के जनु डाला, सुंड कि ब्याला, कै बड ब्याला अशट भुजा[४] ।।६।।

गर मैं धरि माला मुंडन जाला[५], बहुत कराला दाढ़ बड़ी।
दंतन की पाला खरी कुढाला, दीरघ ज्वाला तुंड छड़ी[६]।
भ्रिकुटी चढि भाला लोचन लाला, सीस बिसाला बाल महां।
तन सभि बिक्राला[७], दिश पटवाला, कर करवाला लाहलहां[८] ।।७।।

गन जोगनि संगा तन जिन नंगा महां कुरंगा नाचति हैं।
बहु भूत सु प्रेता केतिक केता गहि कर लेता माचति है[९]।
मुख हड हड हासैं बाक प्रकाशैं फिर चहुं पासै क्रीड करैं।
बहु बोर बिलासैं दोइ पचासैं अग्र प्रभासैं[१०] मोद धरैं ।।८।।

(रि० ३ : ११)

* * *

साधना-पक्ष

जो क्रित करहि मानु सो आछे। तिस महिं रहु हरखति सुख बांछे।
तनु हंता को त्यागन करिअहि। प्रभू रजाइ[११] हरख अनुसरीअहि ।।४१।।
तीनहु साधन केवल केरे। सतिगुर दए बताइ बडेरे।
भाणा माननि[१२], हंता त्यागनि[१३]। सत्तिनाम सिमरनि लिव लागनि ।।४२।।
इही परम पद को पहुंचावैं। क्रिपा जिनहु पर सो चलि जावैं।
वहिर क्रिया शसत्रनि अभ्यास। पापी दुशटन करन बिनाश ।।४३।।
सतिगुर करी परम बखशीश। जग के सुख मिलिबे जगदीश।
बड़े भाग जागहि जिन केरे। चलैं सु मारग इसी अछेरे ।।४४।।
जिम अरजन संग भाखी गीता। करम फलन ते रहहु अतीता[१४]।
धरम धरनि आयुध को करीयहि। अपनो साखी रूप बिचरीयहि ।।४५।।

---

१. तालवृक्ष। २. कमर में चारों ओर हड्डियों की माला। ३. बाल। ४. आठ भुजाएँ मानो वृक्ष की डालियां हैं, या हाथियों की सूंडे हैं या बड़े-बड़े सांप हैं। ५. समूह। ६. मुंह से आग छोड़ रही है। ७. भयंकर। ८. दिशायें ही वस्त्र हैं (नंगी हैं) और हाथ में तलवार चमक रही है। ९. कितनों के ही हाथों में झंडियां हैं और चमका रहे हैं। १०. आगे प्रकाशित करते हैं। ११. आज्ञा, इच्छा। १२. आज्ञा पालन। १३. अहंकार त्याग। १४. अलग—दूर।

तथा खालसे प्रति उपदेश। सत्तिनाम को भजन हमेश।
वहिर करम रण करन महाने। करहु सदा सभि विधि सुख ठाने।।४६।।
करे शुद्ध मन की तजि मैल। गमने संत भगत जिस गैल[1]।
(रि० ४ : ५१)

* * *

(ज्ञान, विराग, योग, भक्ति का स्वरूप तथा महिमा और भक्ति की श्रेष्ठता)

श्री अंगद उपदेश बतायो। करहु भगति जे इमि उर भायो।
'कहिन लगे' हम भगति न जानहिं। किम सरूप कैसे करि ठानहिं।।२२।।
श्री गुर बरनन कीन सिखाई। ब्रह्म सबल माया जग जाई।
हुकम परमेशुर को तिन पायो। अपने महिं सभि जग भरमायो।।२३।।
बहुर प्रभू ने चतर उपाए[2]। जिन ते मिलहि मोहि कहु आए।
इक बैराग जोग अरु ग्यान। चउथी उपजी भगति महांन।।२४।।
ग्यान, बिराग, जोग शुभ तीन। पुरुष रूप इनको मन चीन।
माया ले इन को भरमाई। वड़े जतन ते उबर्यो जाइ।।२५।।
भगति अहै पतिब्रता नारी। इस पर नहिं माया बलु भारी।
इसत्री को इसत्री न भ्रमावै[3]। धरहि भगति तिस प्रभू मिलावै।।२६।।
तबि श्री अंगद बहुर उचारा। इक बिराग है उभै प्रकारा।
इक मन को इक तन को होति। बडि भागनि के रिदै उदोति।।२९।।
सकल पदारथ त्यागन करै। धन, बनिता, सुत सभि परहरै[4]।
हठि करि बाहरि को[5] तजि देति। रहै[6] वाशना रिदे निकेति[7]।।३०।।
दूसर ब्रह्म लोक लौ सारे। बाइस बिशटा[8] सम निरधारे।
रिदे वाशना क्यों हूं न धरै। सुपनि समान जानि परहरै।।३१।।
पाइ पदारध परालबध ते। भोगति हैं पर मन नहिं बंधते।
निज सरूप दिशि ब्रिती लगावैं। बिशय बाशना ते उलटावैं।।३२।।
तथा जोग भी दोइ प्रकार। इक तौ कशट जोग उरधारि।
यम नेमादि अशट हैं अंग। सकल कहे बहु वधे प्रसंग।।३३।।
दूसर रूप सुनहु तिस भेत। रोक वाशना ते मन लेति।
सतिगुर शबद सदीव बिचारै। जीव ब्रह्म इकता निरधारै।।३४।।

---

१. मार्ग। २. उत्पन्न किए। ३. भ्रम में नहीं डाल सकती—मोहित नहीं कर सकती। ४. त्याग दे। ५. बाह्य पदार्थ। ६. टिकी रहती है। ७. घर रूपी हृदय में। ८. वायस (कौवे) की विस्टा (बीठ) के समान। ९. यथार्थ।

आतम बिखै जुटी ब्रित रहै। स्रेशट परम जोग इह कहै।
वासतव निज सरूप को जानै। इस को ग्यानी ग्यान बखानै ।।३५।।

चउथी भगति रूप सुनि लेहु। कली काल इह मुक्ख लखेहु।
वाहिगुरू कीजहि निज स्वामी। सकल शकति युति अंतरजामी ।।३६।।

आप बनहि दारा[1] प्रभु केरी। प्रतीब्रता की रीति बडेरी।
तन मन धन सभि अरपहि[2] पति कौ। प्यारो परम प्रेम करि चित कौ ।।३७।।

पति रजाइ महिं राजी रहै। बिछुरे निति मिलिबे कहु चहै।
जावत मिलहि न रचहि उपाई। अहै सुखद पति बिन दुखदाई[3] ।।३८।।

दीरघ स्वास परी मुख पीरी। अश्रू बहहिं धरहि नहिं धीरी।
जो तिस पति की बात सुनावै। सेवा करहि प्रेम को लावै ।।३९।।

पति परमेसुर प्रेम पछानै। मिलहि प्रिया सों रलीआ ठानै।
तिन के बसि हुइ फिरहि पिछारी[4]। इमि हरि भगति लेहु उर धारी ।।४०।।

(रा० १ : १२)

बुरी भली कुछ सुनहिं न कहैं। अपने परचे महिं नित रहैं।
आश्रम[5] बरन रीति जो धरिहीं। सो गुरु संगति को नहिं करिहीं ।।१५।।

इक समान आश्रम अरु धरम। श्री गुर के इनि ते निहभरम[6]।
माटी के बासन को देखि। मिलहिं न करम जु करति विशेष[7] ।।१६।।

प्रेम भगति परमेशुर केरी। उपदेशहिं इह मुक्ख्य बडेरी।
लोक[8] बेद कुल करम प्रचारा। करहिं नहीं अर भै नहि धारा ।।१७।।

(रा० १ : १३)

*   *   *

(भक्ति महिमा)

बहुर तपे बूझनि गुरु कीने। केतिक कहिते सुमत प्रबीने ।।४।।
बिना ग्यान ते गति कबि नांही। बेद प्रमाण देति इस मांहीं।
सुनि गुर भन्यो लखहु इस रीति। जे गति के अभिलाखी चीत ।।५।।

---

१. स्त्री। २. समर्पण। ३. पति (परमात्मा) के न मिलने पर उसके विरह में दुखी रहती है। ४. (परमेश्वर) उनके पीछे फिरता है। ५. गुरूमत में वर्णाश्रम का विरोध किया गया है। ६. भ्रम रहित। ७. कर्मकांडी नहीं मिलते थे। ८. गुरू-मत का लोक—वेद मर्यादा (रूढि) में भी विश्वास नहीं है।

वाहिगुरू जबि निसि दिन जापति । चारहुं द्वार होइ तबि प्रापति ।
जिनि दर अंदर हुइ प्रविसाइ[1] । मिलहि जाइ करि पद को पाइ ।।६।।
जिमि हरिमंदर के दर चार । जिस दर बरहि सु तिसहि उदार ।
जोग, विराग, भगति अरु ग्यान । सिमरे नाम आइं चहु पान ।।७।।
व्रिति इकागर करि अभिराम । प्रेम सहत सिमरे सतिनाम ।
तबि फल जोग करे को पावै । सिमरन करि तिस मन टिक जावै ।।८।।
तबि बिशियनि ते लहै विराग । मूल-भगति को सिमरनि लागि ।
प्रभु महिं प्रेम-महां उपजायो । निस दिन मन मैं एक बसायो ।।९।।
क्रिपा करहि जिस महिं लिवलाई । रिदे पुनहि दे ग्यान उपाई ।
एक आतमा पूरन जानहि । निज सरूप लखि बंधन हानहि[2] ।।१०।।
इम सतिनाम आसरै चारे । सिमरति प्रापति होवति सारे ।
यांते जे बांछहिं इन चारनि । नाम निरंतर करहिं संभारन ।।११।।
(रा० ५ : ४५)

* * *

(भक्ति के रूप)

श्री गुरु सुनि कै बहुर उचारा । भगति होति है चार प्रकारा ।।२२।।
ब्रिद कामना करि करि मन मैं । सत्तिनाम सिमरति निस दिन मैं ।
अरु संतन की सेवा ठानति । कहे बचन संतन के मानति ।।२३।।
तिन की होति कामना पूरी । पुन प्रभु प्रीति उपजि उर रूरी[3] ।
दुतीए आरति भगत बनंते । जे शत्रुनि ते हुइ दुखवंते ।।२४।।
कै रोगातुर दुख को पावैं । प्रभु के सिमरनि महिं मन लावैं ।
शत्रुनि ते हुइ जाति सुखारो । रोग नशट ते हुइ बल भारो ।।२५।।
आगे को शरधा बधि परै । लालच ते सद सिमरनि करै ।
तीजे नित उपासना धारी । सिमरहिं सत्तिनाम अघहारी[4] ।।२६।।
लखहिं दास निज प्रभु को करता । हम त्रिय सम परमेशुर भरता[5] ।
अंतहकरण बिमल हुइ जाति । पुन तिसि ब्रह्म ग्यान उपजाति ।।२७।।
चौथे ग्यानी भगत बिसाले । एक प्रमेसुर सभि महिं भाले ।
घट मठ महिं जिम व्यापि अकाश । तिम सभि महिं इक ब्रह्म प्रकाश ।।२८।।

---

१. मुक्ति के द्वार के अन्दर प्रवेश हो । २. सांसारिक बंधनों को तोड़ दें । ३. हृदय में श्रेष्ठ प्रभु प्रेम उत्पन्न होता है । ४. पापों का नाश करने वाला—हरिनाम । ५. पति ।

इम लखि वाहिगुरू नित सिमरहिं। द्रिढ हुइ आतम ग्यान सु उर महिं।
चतुर भूमिका ते चढि जाइ। सपतम बिखै सथिरता पाइ ॥२९॥
यांते सिमरहु तुम सतिनाम। संतन को सेवहु निशकाम।
मन नीवां राखहु तजि मान[1]। होइ सुखेन तुमहु कल्यान ॥३०॥
(रा० ५ : ४५)

* * *

(भक्ति के भेद)

चौपई

भगति करति सगरे गुण पावैं। गुण निधान भगवान रिझावैं।
गुण करता जविही बसि होइ। दुरलभ गुन पुन रहै न कोइ ॥२७॥
बूझन लगे भगति किसु रीत। करहु बतावनि उपजहि प्रीति।
तबि सतिगुर ने कह्यो बुझाई। नवधा भगति एक सुखदाइ ॥२८॥
दूजे प्रेमा भगति बिचारी। परा भगति त्रितीए निरधारी।
प्रथम सुनहु नवधा के भेद। प्रापति भए बिनासहिं खेद[2] ॥२९॥
शरधा सहत गुरू के बैन। श्रवन करहि सनमुख मन नैन।
दुतीए कथा कीरतनु करने। नीके प्रभु के गुन गन बरने ॥३०॥
त्रितीए सत्तिनाम सिमरंते। बिना भजन नहिं समां बितंते[3]।
स्वासन संग सु नाम मिलावैं। ऊठति बैठति नहिं बिसरावैं[4] ॥३१॥
चौथे सतिगुर कै भगवान। ठानहि चरन कमल को ध्यान।
कै संतन के चरन पखारे[5]। शरधा ते चरनांम्रित धारे ॥३२॥
पंचमि करहि अहार भलेरे। प्रथम अरपि हरि गुरू अगेरे[6]।
जथा शकति संतन अचवावैं[7]। वसत्र शरीर साध पहिरावै ॥३३॥
खशटमि प्रभु गुर कै गुरद्वारे। बंदन करहि प्रदछना धारे।
धूप दीप चंदन चरचावै। फूलन आनि सुगंधि चढावै ॥३४॥
सपतमि दासु आप को जानै। परमेशुर स्वामी पहिचानै।
तन मन धन जानै प्रभु दान। सति नार सम पति भगवान ॥३५॥
अशटमि मित्र लखै स्रीपति कौ। नहीं डुलावै अपने चित कौ।
जो कछु करहि भली मम जानै। नहीं तरकना[8] तिस पर ठानै ॥३६॥

---

१. अहंकार का त्याग कर, मन को विनम्र करके रखो। २. दुखों को नष्ट करती है। ३. समय व्यतीत करते हैं। ४. नहीं भूलते। ५. धोए। ६. सामने। ७. खिलाए। ८. तर्क।

जथा सखा की क्रिति लखंता। करहि जु कछु मम भला करंता।
तिमि प्रभु मित्र किरत को हेरै। जो किछु करै भली सो मेरे ।।३७।।
नौमी तन धन प्रभु अरपाइ। अपनो कछू न लखहि कदाइ।
ममता तजहि पदारथ केरी। हरि के जानि न सुख दुख हेरी ।।३८।।
नवधा भगति कही इहु जोइ। जेकरि इक भी प्रापति होइ।
तौ उधार जन को करि देति। क्या संसै हुइ सरब समेत ।।३९।।
अपर सुनहु जस प्रेमा भगति। जिह सम अपर न सुख दे जगत।
तरुवर फल पूरब हुइ सावा। स्वाद बिखै कौरा लखि पावा ।।४०।।
पुन पीरो तब लहि तुरशाई[1]। ब्रिच्छ बीच ते ले रसु पाई।
पुन पाको होवहि रंगु लाल। स्वाद पाइ सो मधुर बिसाल ।।४१।।
तिमि परमेशुर प्रेमी होइ। तिन के लच्छन इस बिधि जोइ।
प्रथमै रुदन करति चित चाहै। प्रीतम दरशन धरति उमाहै ।।४२।।
बिछुरे हम यांते दुख पावै। दीरघ स्वासनि ले पछुतावै।
रोमंचति हुइ गद गद बानी। कबि गुन गाइ कि तूशन[2] ठानी ।।४३।।
तबि मुख को सावा हुइ रंग। सुधि भूलहि सभि आदिक अंग।
ज्यों ज्यों बध है प्रेम बडेरा। त्यों त्यों होति अहार छुटेरा ।।४४।।
भूख प्यास की गम हुइ थोरी। निस दिन रहै प्रेम मति बोरी।
ब्रिहु ते वधहि बिषाद अधीरा। बदन बरन हुइ आवति पीरा ।।४५।।
प्यारे की जे बात बतावहिं। अस संतन के निकट सिधावहिं।
सुनि पिखि कै प्रिय मिलिनि निशानी। निकट जानि हुइ प्रीत महानी ।।४६।।
संत संग जबि वध्यो वधेरा। पूरन प्रभू सरब मैं हेरा।
तबि मुख लाल रंग द्रिशटावै। त्रिपति होइ मन कितहुं न धावै ।।४७।।
शांति मधुरता तबि हुइ आई। अंतर ब्रित्ती सथिरता पाई।
दिढ अभ्यास ग्यान मनि लावहि। परा भगति उतपति हुइ आवहि ।।४८।।
अपनि सरूप निहारन चाहा। ईशुर जीव अभेद उपाहा।
सति चेतन आनद ब्रह्म रूप। नभ सम व्याप्यो चलित अनूप ।।४९।।
इस प्रकार जे भगति कमावै। इकता ब्रह्म रूप हुइ जावै।
तीनहु सुनकै भए अनंद। खानू माईआ अरु गोबिंद ।।५०।।
(रा० १ : ३९)

* * *

१· खट्टा। २· चुप।

(ज्ञान एवं भक्ति)

'केतिक कहति ग्यान जबि लहा। तबहि भगति को करिबो कहां।
देति ग्यान ही कैवल एक। जिस के उपज्यो रिदे बिवेक' ।।३३।।
श्रीमुख ते शुभ पंथ बतावैं। बिना भगति नहिं ग्यान सुहावै।
जथा ध्रित्ति है अति बलिवान। भोजन मिलहि जि स्वाद महान ।।३४।।
कफी[1] जि ध्रित्ति पान को करै। छाती बोझ रोग सो धरै।
फीका बदन रहै दिन राति। खांसी होति अहार न खाति ।।३५।।
जे सुभाउ तन पेती[2] होइ। पीवहि निरो ध्रिति जे सोइ।
तिन को लगहिं अधिक अतिसार[3]। उपजहि तन महिं रोग विकार ।।३६।।
जे मिलाइ मिसरी सो खाइं। दुहूंअनि के तन सुख उपजाइ।
तथा ग्यान जहिं एकै होइ। अहंब्रह्म कहि सुझहिं न सोइ ।।३७।।
सुनि बेहार[4] बिगर बहु जाइं। परैं नरक नहि सुरग लखाइं।
जे हंकारी नर उर धारै। अपनि आपि को बड़ो बिचारै ।।३८।।
नहिं सति संगति सेवा करै। नंम्रिता न किस आगै धरै।
छाती बोझ रोग इह होइ। नरक परहि लहि संकट सोइ ।।३९।।
जे बिशई सुनि केवल ग्यान। भोगहि नारि बिरानी[5] जानि।
इत्यादिक बिशियिन लगि जाइ। अतीसार सम, नरक सु पाइ ।४०।।
यांते भगति संग ब्रह्म ग्यान। सभिहिनि की करता कल्यान।
शोभहि मुख ते कहि प्रभु दास। ग्यान अहंब्रह्म रिदे प्रकाश ।।४१।।
यांते सभि को सिमरनि नामु। करहि प्रेम ते लहि सुख धाम।
खुशक ग्यान यांते नहिं नीको। सिमरे नाम श्रेय हुइ जी को ।।४२।।
(रा० ५ : ४५)

* * *

(भक्ति एवं कर्म)

बूझनि कीने जलधि बिबेक। शासत्रानि मत अहैं अनेक।
को तप तीरथ महिमा गावै। को ब्रत नेमनि करहु बतावै ।।३।।
जग्ग होम को करै बिसाल। को कहि दान करहु बिधि नाल।
बडिआई सतिगुर के धाम। केवल सिमरनि को सतिनाम ।।४।।

---

१. कफ वाला—खांसी वाला आदमी। २. गर्मी का शरीर। ३. दस्त। ४. व्यवहार। ५. बेगानी।

अंतर इन महिं कितिक बतावहु । किम महिमा सतिनाम बधावहु ।
श्री मुख ते सुनि बाक बखाना । जुगति बतावनि कीनि महाना ।।५।।

सत्तिनाम ऐकांग पछान । अपर करम सभि शून्न[1] समान ।
जे इकांग पूरब लिख देय । शून्न लगे दस गुनो बधेय ।।६।।

जे इकांग पूरब लिखि नांही । केवल शून्न लिखति ही जाहीं[2] ।
सो सभि खाली कुछ नहिं सरै । गिनती महिं कोऊ नहिं धरै ।।७।।

तिम सति नाम बिना सभि बादि[3] । जिनि को फल युति अंतरु आदि ।
जे इकांग परि शून्न लिखाइ न । होइ न दस गुन तौ इक जाइ न ।।८।।

अपर जुगनि के धरम सरब हैं । बली बिसाल समूह दरब है ।
कलि महिं केवल है सतिनाम । इसते लहै श्रेय सुख धाम ।।९।।

बिना नाम ते नहिं छुटकारा । अपर करम ते बधै हंकारा ।
नंम्रि होनि सिमरनि हरिनाम । लहै अंत को सुख बिसराम ।।१०।।
(रा० ५ : ४६)

❊ ❊ ❊

(नाम महिमा)

सुनि श्री गुर नाम बिशेशति हैं । सिख संगति को उपदेशति हैं ।
इह मंत्र महां सतिनाम अहै । निज जीह जपै जु अरोग चहै ।।१६।।

तन ताप कहां इस ते जु रहै । जग तीनहु तापनि खापद है ।
मुखि धन्न जपै सतिनाम सदा । किह संकट होनि न देति कदा ।।१७।।

बड भाग भरे लिव लावति हैं । दुख लोक प्रलोक नसावति हैं ।
कहि सिक्ख्यन साथ विकार तजो । सतिनाम भजो, सतिनाम भजो ।।१८।।
(रा० ३ : ३०)

महां महातम सिमरे नामु । मन को कीजहि तहिं बिसराम ।
स्वारथ किधौं अकारथ ब्रिद[4] । फुरहिं सदा मन थिर न रहिंद[5] ।।३५।।

---

१. शून्य । २. शून्य के पूर्व एक का अंक लिख देने से शून्य का मूल्य दस गुणा (१०) हो जाता है, पर शून्य के बाद एक का अंक लगाने से वह शून्य ही रहता है । ३. व्यर्थ । ४. काम के या बेकाम के सभी संकल्प । ५. मन स्थिर नहीं रहता ।

सतिगुरु के पग पंकज लावै। कै लिव नाम बिखै अटकावै।
जल प्रवाह सम मन को अहै[1]। जितहि करहि तित ही नित बहै[2] ॥३६॥
(रा० ११ : ३३)

सुनि बोले तबि साहिब साचे। प्रेम बिना लखीअति है काचे।
मन का चउका सतका भाइ। मूरत नकली असली नाइ ॥३४॥

दोहरा

एक समालै नाम को एक करंता ध्यान।
एक करंता सिला पूज[3] तीनों भगति पछानु ॥३८॥

नाम जपति है हरि भगत। ध्यान धरै सुख ग्यान।
सिला पूजते तामसी तीनों भगत सु जानि ॥३९॥

हमरो मति है भजन को ध्यान जुगत हरिनाम।
करनी गुर नानक करी बरती गुर कुल भास।
(रि० ५: १० : ४०)

चौपई

नाम देहि, धन देहि न जन को। धन विहीन जन जग न सुहाइ।
जे धन देहिं नाम नहीं देवैं। नाम बिना जन जमपुरि जाइ।
(रा० : १ : ५० : २४)

नाम जपै वहु को कल्यान। नाम महातम कीन महान ॥४७॥

सरवर पर गिरवर धरि भारे। तरुवर के पातनि सम तारे।
लिख्यो नाम तिन पर सु जनायो। सरगुन ते बड नाम सुहायो ॥४८॥

जिन सतिनाम जप्यो करि प्रेम। अंतहिकरण बिमल तिन छेम।
सिमरति प्रापति आतम ग्यान। जनम मरन को बंधन हान ॥५०॥

यांते निरगुण ते सतिनाम। ह्वै विशेष, भजि आठो जाम।
सुनि सिक्खनि गुर संग बखाना। सागर फांध गयो हनुमाना ॥५१॥

श्री अरजन पुनि सुनति बखाना। सिमरति राम नाम हनुमाना।
बहुर मुद्रका लई पयाना[4]। तिस पर राम नाम सभि जाना ॥५३॥

नाम प्रताप पार परि गयो। कुछ विषाद तन होति न भयो।
यांते नाम महातम भारो। सिमरि तरै जग सिंधु सुखारो[5] ॥५४॥

---

१. मन की गति जल के प्रवाह के समान है। २. जिस ओर लगाओ उधर ही बहने लगता है। ३. मूर्ति पूजा। ४. चला, प्रस्थान किया था। ५. सरलता से भव-सिंधु को पार कर लेता है।

नाम सेतु[1] पर निरबल बली। रुजी, लंगरे, सभि बिधि भली।
सने सने परि पार सुखारे। बिना जतन, आनंद उर धारे॥५६॥
पापी पुनी मूढ सुजान। पार परहिं करि भगति महान।
यांते तुम सिमरहु सतिनाम। रहीअहि सतिसंगत की शाम॥५८॥
(रा० ३ : ५५)

करि बंदनि को बाक उचारा। करहु गरीब निवाज उधारा।
श्री मुख ते उपदेश बखाना। कल महिं नाम जहाज महाना॥३१॥
शबद पठनि कीजहि अभ्यास। चढहु जहाज नाम[2] सुख रासि।
सुनि करि दोनहु बहुर उचारे। इक सिख पढन श्रवन को धारे॥३२॥
(रा० ५ : ४२)

❊ ❊ ❊

सत्संगति एवं संत-सेवा

सवैया

सुनति प्रसन्न भए गुर अरजन महिमा संतनि करहिं उचार।
शुशक[3] सथल जल पल महिं पूरें, पूरन शुशक करहिं इक बार।
रंक राव ते, राव रंक ते, म्रितु जीवाइं[4] जिवति दें मारि।
अचल[5] चलावहिं, चलति थिरावहिं, वाक अमिट हैं, प्रगट संसार॥२८॥

अंत संत को कोइ न पावहि, सुर नर असुर जाति सभि हारि।
संत हुकम को फेर न साकहिं सगरे सादर लें सिर धार।
बुड्ढा साहिब तपकी मूरति, आतम ग्यानी गुन गन सार।
जिह सेवे बांछति हुइ प्रापति, दुख दारिद के दुंद बिदार[6]॥२९॥
(रा० ३ : ३)

चौपई

तप करिबे ते प्रापति होइ। तप की महिमा कहि सभि कोइ।
तिस को समा नहीं अबि जानहुं। निरबल प्रानी बिदत पछानहुं॥३२॥
तिस ते सहस गुना फल पावै। जो सति संगति सेव कमावै।
तप की महिमा ते अधिकाई। अपर बात क्या कहैं बनाई॥३३॥

---

१. नाम रूपी पुल। २. नाम रूपी जहाज़। ३. खुशक स्थल पर पल भर में जल भर देते हैं। ४. मृत को जीवित कर देते हैं। ५. जड़। ६. दुख-दरिद्रता के द्वन्द्व को नष्ट कर देते हैं।

चौपई

यांते जानहुं सेवा सार। सेवहु संत कि गुरु दरबार।
ऐसी दुर्लभ वसतु कुछ नाहीं। सेवहि संगति बहुर न पाही ।।३४।।
(रा० ११ : ३३)

दोहा

सभि उपाव सम, दम, चरज[१], जोग, जग्य, तप दान।
सति संगत बिनु बिफल ह्वै बांझ सुवन सम मान[२]।
(रि० ५ : १० : २८)

चौपई

मंदर चिनहि चिनावहि चारू। जहिं बिसरामहिं संत उदारू।
शरधा प्रेम सहत करि सेवा। नहिं व्यापे मन को अहंमेवा[३]।
(रा० २ : ३ : ५१)

निधि सिधि के दाता निति संत। मुकति पदारथ देवति अंत।
हंस समान सिख्य जो मेरे। इन सेवे फल पाइं घनेरे ।।५६।।
अलभ वसतु ऐसी नहिं कोई। मम सिख सेवे पाइ न जोई।
इम श्री सतिगुर सेव महातम। कह्यो सुनति सिख ले सुख आतम।
(रा० २ : ३ : ६०)

चौपई

जो नर मम संगति को सेवहि। हलत पलत महिं शुभ फल लेवहि।
मोर महातम जेतिक अहै। रामदास जानहि फल लहै।
(रा० १ : ४३ : २३)

सवैया

यांते किरत धरम की करिकै निज अहार ते अंस चुथाइ[४]।
जो हुइ रंक सु अरपै गुर हित दिन प्रति संपद ग्रिह बिरधाइ[५]।
है सरूप मेरो सति संगति, सो अचवहि[६] मुझ को पहुँचाइ।
हलति पलति सुधरहि तिस सिख के करि भोजन को सिख अचवाइ।
(रा० ६ : ४ : १४)

---

१. ब्रह्मचर्य। २. सम, दम, योग, यज्ञ...आदि सत्संगति के बिना ऐसे ही विफल हैं जैसे पुत्र बिना बाँझ स्त्री। ३. अहंकार। ४. चौथा भाग। ५. घर में सम्पत्ति बढ़ने लगती है। ६. खाती है।

चौपई

यांते सतिगुर अरु सतिसंग। इनकी सेवा अधिक उतंग।
बरष हजारहुं तप जे घाले। तिन ते सेवा अहै बिसाले।।४३।।
जबि कबि अबि अरु आगे केई। सेव बिखै मन लावहिं जेई।
तिन को बहुर न करिबो रह्यो। भोग-मोख दोनहुं तिह लह्यो।।४४।।
(रा० १ : १९)

तन ते क्रिति करहु संत सेवा। मन ते भगति करिहु हरिदेवा।
इस ते शीघ्र लहैं कल्यान। तजहु न सदन[1] ठानि गुरु ध्यान।
(रा० १ : ३९ : २३)

* * *

परोपकार

सवैया

सार महां सिमरनि सतिनामू कार महां करिबे उपकार।
इन दोनहु बिन मानुष न धिक[2] समो बितावहि[3] लखहि न सार।
पूछ सींग बिन पसू जनम तिन, आए बाद बीच संसार।
अंत समें जमदूत गहै दिढ भूरति गमनहिं द्वै कर झारि[4] ।।२२।।

पुन्न, दान, तप, मख[5] को करिबो होति न पर-उपकार समान।
कलमल करनि अनेकनि रीति क्रितघण के सम कोइ न जानि।
रहनि अहिंस, धरम सभि कीने, हिंसा करे पाप पहिचान।
याते नित चितवहि उपकारू धन ते तन ते मन ते ठानि।।२३।।
(रा० ३ : ४५)

* * *

कर्म फल

चौपई

पुरशन के करमन अनुसार। सुख दुख उपजति बारंबार।
कबहूं सुखी कबहिं दुख पावैं। जिमि निस दिन आवति पुन जावैं।।१३।।

१. सन्यासी बनना उचित नहीं। २. मनुष्य जन्म को धिक्कार है। ३. समय व्यतीत करना। ४. दोनों हाथों को झाड़ कर—खाली हाथ। ५. यज्ञ।

राऊ रंक के एक समान । उपजति है अवश्य नहिं हान ।
सुख होए हरिखाइ हंकारति । अधिक अहंता[1] अपनी धारति ।।१४।।

दुख को पाइ दीन हुइ जाहिं । दियो प्रभू ने कहि बिललाहिं[2] ।
ईशुर बिखै अरोपहिं दोश । निज करमन गति की नहिं रोश ।।१५।।

प्रानी करम करति निज जथा । फल दे प्रभू देखि करि तथा ।
सुख दुख जगत नाथ के हाथा । सुमति लखहिं दोशन निज साथा ।।१६।।

दोइन महिं प्रभु को सिमरंते । जानहिं करमनि फल उपजंते ।
तिस को पुरषन महिं कहि धीरा । परमेशुर को लखहिं गहीरा ।।१७।।
(रा० १ : २२)

तुम तो इस तन पूरब हुते[3] । करे करम फल तिस के लिते ।
भला बुरा जिम पूरब कीन । तिस ते दुख सुख भोगनि कीन ।।८।।

इह तन तजि पुन धारहु और । करहु करम भोगहु तिस ठौर ।
तन उपजन ते हुते अगेरे । तन बिनसे पुन रहहु पिछेरे ।।६।।
(रा० २ : १८)

श्री हरिगोबिंद तबहि सुनाए । सति संगति महिं दोनो आए ।
सहिकामी मरि गंध्रब लोक । जाइ अनंद भुगतहि बिन शोक ।।६।।

तिन ही संग मुकति हो जावै । जनम मरन को दुख नहिं पावै ।
जे निशकामि, ग्यान को पाइ । झूठे लखि जग सुख समुदाइ ।।७।।

परारबध पुरवे तजि प्रान । मिलहिं वाहिगुरू महिं सुखवान ।
सभि ते अधिक अहै निशकाम । दुइ विधि के जानहु सहिकाम ।।८।।

तन निरबाह मात्र इक लेति । बिन जाचे करि भाउ जु देति[4] ।
सो ले करि हरखहिं उर मांही । लखहिं वाहिगुरू पठि[5] हम पाही ।।६।।

प्रापति जो, बरताइ[6] सु खाइं । किरतनु कथा श्रेय हित गाइ ।
थोरे बहुत पदारथ पाइ । करि संतोख सदा हरखाइ ।।१०।।

अस भो हुइ निशकाम समान । बिना लोभ ते, करहि जु आन ।
किंचित करहि बासना जोइ । पुरि गंध्रव जाति है सोइ ।।११

---

१. अहंकार । २. बिलखना । ३. पूर्व जन्म । ४. बिना मांगे जो कोई प्रेम के साथ दे ।
५. भेजता है । ६. बांट कर ।

जे अति लोभी धन के हेतु। करहि कीरतन मन नहिं देति।
उचरनि कथा, अपर शुभ करम। करहि दरब हित जाइ न भरम ।।१२।।
इहां पदारथ चहै सु पावै। धन हित संगति मिल्यो रहावै।
मरहि बहुर नर तन को पाइ। सिमरहि पुन सतिगुर अधिकाइ ।।१३।।
जनम अनेक पाइ मल खोइ। लहै मोख निशकामी होइ।
यांते तुम बन कै निशकाम। किरतन करहु भजहु सतिनाम ।।१४।।
(रा० ५ : ४४)

कुछक दीनि उपदेश बनाइ। बहुर विसरजनि कीनि सुनाइ।
भो सिक्खहु ! नर तन इह रतन। जिम सफलहि तिम कीजहि जतन ।।२६।।
जग धंधे महि फसि न बितावहु। बिनस जाइ पिखि नहिं बिरमावहु।
हेतु जीवका हुइ निशपाप। करो कार[1] को हरि हरि जाप ।।२७।।
(रा० : ११ : ३३)

* * *

मूर्तिपूजा एवं अन्य बाह्याचार

चौपई

जो मेरा शुभ सिक्ख कहावै। पाहुल ले शुभ करम कमावै।
पिछले अघ[2] सभि जाइं बिलाइ[3]। गुर शरनी जबि ही परि जाइ ।।२८।।
असुर भूत की सेवा तजै। पाहन की पूजा नहिं जजै।
पाहन पूजा कलि का भाऊ[4]। मढी मसाणी भूट सुआउ[5] ।।२९।।
डिंभ करहि मूंदहि जे नाक। जपनी फेरै बड़ा नपाक[6]।
जिनके भाउ न अंतर फुरा[7]। किउं मूरख तीरथ भ्रमि फिरा ।।३०।।
कीरतन भजन गंग जल धार। सोई मुकति जु भजै मुरारु।
इम सिक्खनि सों प्रथम प्रसंग। कर्यो सुनावन चित हित संग ।।३१।।
(रि० ५ : ३९)

बंधन मुकति बेस[8] ते नाहीं। बंधे, तन हंता जिन मांही[9]।
ममता धरति महां मन मानी। लख्यो न रूप, न दुबिधा हानी ।।४१।।

---

१. कर्म। २. पाप। ३. नष्ट होना। ४. कलियुग का तरीका। ५. झूठे प्रयोजन हैं। ६. अपवित्र। ७. प्रेम उत्पन्न नहीं हुआ। ८. वेश से मुक्ति नहीं मिलती। ९. बंधन में वे रहते हैं, जो शरीर का अहंकार रखते हैं।

वहिर बेख धरि मन नहिं साधा । सो कबि छुटहि न बंधन बाधा[१] ।
जिन के तन हंता नहीं लेश । निज सरूप लखि जगत अशेश[२] ॥४२॥
(रा० ५ : ३४)

पाहन जड़ की सेवा बादि[३] । खाइ न बोलहि नहिं अहिलादि ।
तुम कबि कबि ब्रत धारन करो । महां बिकारन को परहरो[४] ॥२९॥
हमरे गुरु के सिख हैं जोई । अलप अहार बरति नित सोई ।
काम क्रोध को संजमु[५] सदा । प्रभु सिमरन मैं लाग्यो रिदा[६] ॥३०॥
(रा० २ : ३०)

सरमद वहिर पुकार उचेरे । सभिनि सुनावति भा तिस बेरे ।
भो काज़ी ! अंधे मति-मंद । किसहि सुनावति कूक बिलंद[७] ॥२९॥
जो खुदाइ तेरो अति प्यारो । सो मम पाइन तरे निहारो ।
कूक कूक नित छूछो[८] रहैं । बिना बताए हाथ न लहैं ॥३०॥
(रा० ९ : २२)

सवैया

हैदराबाद की जाउं अबै, हित होनि बिदा तुम तीर[९] अयो ।
कूच करौं[१०] पुन देश पंजाब को कारज सारो सुधार लयो ।
श्री प्रभु ! बूझति हौं, मत हिंद कौ काचौ अहै इह कैसो कियौ ।
पाथर को घर मूरति को करि चित्र किधों लिखि भीत दियो ॥५॥

पूजति हैं तिह सीस निवावति[११] भोजन को धरि देति अगारी ।
कारज कौन भयो तिस ते जऊ आप रची बहु भांत सुधारी ।
सींचति हाथन ते छिति[१२] पै, किम जाइ बड़ेरन पै चलि बारी ।
श्राध करैं पित्रानि के हेतु अचावति हैं दिज पुंज[१३] अहारी ॥६॥

तीसरे और सुनो गुर साहिब ! हिंदुनि को मति है जिम काचा ।
मेवा अमेज़ि कै खंड औ घीउ मैं जौं तिल डालति एक ज्यों राचा ।
आग महिं पाइकै स्वाह करैं तिह लें फल फेर मुनीन उवाचा ।
कौतक होवति है हमरे उर क्रूर ही को एह मानति साचा ॥७॥

---

१. वह कभी भी बंधन-मुक्त नहीं होता। २. सम्पूर्ण। ३. व्यर्थ। ४. विकारों को त्याग दो। ५. काम और क्रोध कम करना। ६. हृदय। ७. ऊंचा पुकार पुकार कर। ८. खाली। ९. तुम्हारे पास। १०. चलना। ११. झुकाना। १२. भूमि। १३. समूह।

श्री गुर उत्तर देति भए मत हिंदुन के सभि करम कमावैं।
खेत की सेव क्रिसान करै बहु अन्न पकै सुख सों घर खावै।
धेनु की सेव करै हित सों दिन केतिक मैं पै स्वादल पावै।
भूपति सेवति ले धन को बहु सेवन ते सभिहूं बनि आवै॥८॥

इशट अरोपि कै मूरत महिं उर ध्यान धरै मन प्रेम लगावै।
पावति है धरि कामन को, चित को निशचा नहिं क्यौं सफलावै।
आसत[1] नासत[2] दोइ रचे नर श्री परमेशुर को चित भावै।
आसति ते गन हिंदु भए तुरकेश भि नासत ते बनि आवै॥९॥

मूल तरोवर के जल सिंचत ऊपर ते लुनीए फल तासा।
त्यों चित जानहु भूतल को क्रित लेति सभै फल जाइ अकाश।
काचो मतो अपनो तुम देखहु, मानति हो कबरैं जिन नाशा।
क्या तिन ते कहु काज सरै म्रितका मिलिगे तन क्या धरि आसा॥१०॥

दोहरा

करहु बंदगी रोज़ तुम बंदा बनि करि आप।
देख्यो सुन्यो न रब[3] किते करहु निवाज कलाप॥११॥
रूप न रंग न ठौर कित पाक अल्लाहि अपाज[4]।
सिजदा करहु, दरूद दिहु, रोजा कूर[5] निवाज़॥१२॥
कहिना क्या अरु हिरस क्या बाद जाति बकबाद[6]।
नीकी करनो जिन करी कर्यो खुदाइ सु याद॥१३॥

चौपई

पीर पैकंबर जानि सजूद। देत फाइता बहुर दरूद[7]।
रोज़ा बांग निवाज सुजान। मुसलमान इन करहि प्रमान॥१४॥
त्रै संध्या करनी धरि प्रीत। देवल पाहिन पूजन रीति।
इत्यादिक हिंदुनि परवाना। हम दोनहुं को जानि समाना॥१५॥
त्यागन करे भाउ लखि बीजा। उतपति कर्यो खालसा तीजा।
भूठे लखि दोनहुं हम छोरे। पंथ अकाल पुरष को लोरे॥१६॥

---

१. आस्तिक। २. नास्तिक। ३. परमात्मा। ४. पाज रहित—असल। ५. रोज़ा निवाज आदि सब झूठे हैं। ६. क्या तो कहना और क्या हिरस (तृष्णा) (कहना तो रब्ब और रोज़े रखना, निवाज पढ़ना और उस पर तृष्णा बेहद; यह सब व्यर्थ है। ७. पीर पैगम्बरों को सिजदे करते हैं, फातिआ (हाथ जोड़ कर दुआ मांगनी) पढ़ते हैं, दरूद देते हैं (मृत्तकों के निमित्त रोटियाँ देनी)

बाद पक्ख को सकल बिनाशा। धरी अकाल पुरष की आसा।
जनम्यो अबै खालसा नयो। बालक के मनिंद जग थियो ॥१७॥
जुवा होइ जबि ज़ोर संभारे। कबर मडी कौ फोडि उखारे[1]।
देवल बुत प्रसती नहिं मानै। एक अकाल अकाल बखानै ॥१८॥
(ऐ० २ : १६)

* * *

जाति पांति—वर्णाश्रम

उर हंकारी गिरा उचारी। एको जाति हमार तुमारी।
श्री गुर अमर भन्यो सुनि सोइ। जाति पात गुर की नहिं कोइ ॥१०॥
उपजहिं जे सरीर जग मांही। इनकी जाति साच सो नांही।
बिनसि जात इहु जरजरि होइ। आगे जाति जात नहिं कोइ ॥११॥
इम श्री नानक बाक उचारा। आगे जात न जोर सिधारा।
उपजैं तन इतही बिनसंते। आगे संग न किसे चलंते ॥१२॥
सिमर्यो जिन सतिनाम सदीवा। सिक्खन सेव करी मन नीवा।
तिन की पति लेखे परि जाइ। जाति कुजाति न परखहिं काइ ॥१३॥
(रा० १ : ४०)

करि अरदासु रहित की भले। पंचाम्रित अचि पांचहुं मिले।
जाति पाति को भेद न कोई। चार बरन अचवहिं इक होई ॥४२॥
मति ऊची राखहु मन नीवां[2]। सिमरहु वाहिगुरू सुख सीवा[3]।
गोर मढी अरु पंथ अनेका। आन न मानहि, राखि बिबेका ॥४३॥
(रि० ३ : १६)

बुरी भली कुछ सुनहिं न कहैं। अपने परचे महिं नित रहैं।
आश्रम बरन रीति जो धरिहीं। सो गुरु संगति को नहिं करिहीं ॥१५॥
इक समान आश्रम अरु धरम। श्री गुर के इनि ते निहभरम।
माटी के बासन को देखि। मिलहिं न करम जु करति विशेख ॥१६॥
(रा० १ : १३)

* * *

---

१. कबरों और मढ़ियों (आदि की पूजा को) खत्म कर देगा (खालसा)। २. नम्र। ३. सुख की सीमा, सब से अधिक सुख देने वाला।

गुरु

इम सतिगुर की महिमा महां। जानहिं सिक्ख भेव जिन लहा[1]।
सदा गुरनि को करहि प्रसन्न। करुना पाइ कहै गुर धन्न ॥३०॥
गुर सम अपर हितु नहिं कोई। कोट जनम के दुख हति[2] जोइ।
सति संतोष आदि गुन धरिकै। गुर सेवहि हंकार निवरिकै[3] ॥३१॥
गुर सेवै नर तन सफलावै। गुर सेवा पद उचो पावै।
गुरू बड़ो सभि बिद्या दाता। चार जुगनि महिं जिन किन जाता ॥३२॥
सभि गुर महिं जो दे ब्रह्म ग्याता। सो बिसाल जानहु सुखदाता।
जिन सेवा करि गुरू रिझाए। सगले तप जप के फल पाए ॥३३॥
बरख हज़ारनि संकट नाना। सीत उशन तप तपनि महाना।
ऊरध बाहू इक पग ठांढे। चंद्राइन नख सिख जे बाढे ॥३४॥
अपर कहां लगि तप को गिनीअहि। हेम दान मख करिबो जनीयहि।
धरा दान तीरथ को न्हैबो[4]। गज बाजी[5] गन दान करैबो ॥३५॥
गुर सेवा के सम कुछ नांही। खोजनि करहु सकल छित मांही।
हंकारादिक करनि बिकार। दियो जुजाति स्वरग ते टारि ॥३६॥
(रा० १० : २६)

बकता श्रोता शुभ गति पावैं। अंत बिखै गुर रूप समावैं।
इम अधिकार शबद को जानि। फल पर राखहु द्रिशटि सुजान ॥१३॥

दोहरा

संगति सभि निशचै तरै गुर की शरणी आइ।
इहां भुगत आगै मुकति मारग बेद बताइ।
(रि० ३ : ३४ : १४)

निसानी छंद

धिक जीवनि सतिगुरु बिना कुछ सरै न काजू।
गुर बिन छिति को राज क्या धिक सुरपुरि राजू।
तप, तीरथ, बरत रु धरम बिन गुर निफलावैं।
गुर बिन लोक प्रलोक के सुख सकल नसावैं ॥४१॥

सतिगुर पूरा जे मिलहि दे निज उपदेशू।
सफल तपादिक होति हैं मिट जाति कलेशू।

---
१. प्राप्त किया। २. नष्ट करता है। ३. त्याग कर। ४. स्नान करना। ५. हाथी घोड़े।

करम हीन इम मैं रह्यो अबि सतिगुर पाऊं।
नातुर तजि कै अन्न जल निज तन बिनसाऊं।
(रा० १ : १४ : ४२)

चौपई

नहीं स्राप किसहूं को दीना। सभि अपराध बखशबो[1] कीना।
पूजनि लगे बहुर गुर चरना। जिनके सिमरन जनम न मरना।
(रा० १ : २४ : ३१)

जिस जिस पर गुर किरपा करी। भए निहाल अविद्या हरी।
दुहिं लोकन की लहि बडिआई। तरे सु लीनि संग समुदाई ॥८॥
तप, जप, जोग, जग्य ब्रति दानू। गुर सेवा के ह्वै न समानू।
जिनके बड़े भाग जग जागे। सो सतिगुर की सेवा लागे।
(रा० १ : ३४ : ६)

* * *

(गुरुवाणी महिमा)

सतिगुर बानी मेघ समाना। बरखै चहुंदिशि बिखै महांन।
बन के पशु पंछी सुख पावहिं। करहिं पान अरु तपत मिटावहिं ॥२८॥
कूप किसू कै होइ कि नाहीं। इक सम घन ते सभि सुख पांही।
सगरें खेती बोइ पकाइं। बिना जतन सभि ही सुख पाइं ॥२९॥
त्यों सतिगुर के शबद सुखेन। पढि गति प्रापति जेन रु केन[2]।
(रा० १ : ४६)

सवैया

जहिं कहिं गुर की बाणी बिथरी, सुथरी करहिं कंठ हरखाइ।
पातक दादर गन को अहनी[3], दहनी बिघन बिपन समुदाइ[4]।
म्रिगनि बिकार[5] ब्रिंद को शेरनि, प्रेरनि मन की प्रभु दिशि धाइ[6]।
ब्रह्म ग्यान की सुगम सु जनिनी, हननी मोह, जननि सुखदाइ ॥४॥

---

१. क्षमा करना। २. सब कोई। ३. सारे पापों रूपी मेंढकों के लिए सर्पिणी रूप। ४. सारे विघ्नों के वन को जलाने वाली। ५. विकार रूपी मृगों के लिए शेरनी के समान। ६. दौड़ते मन को प्रभु की ओर प्रेरित करने वाली।

पाठक पुंज मनोरथ पुरनी[1] फुरनी अनुभव की उर मांहि।
कूर बिशियनि की अहै बिरागनि[2] रागनि सतिनाम की आहि[3]।
प्रेमा भगति उपावनि हारे, हारी निंदक ब्रिंदन दाहि[4]।
पठि गुरु सिक्ख क्रितारथ होवति, जोवति[5] अपनि रूप सुख पाहि ॥५॥
(रा० ४ : २१)

चौपई

गुर अनभै बिच बानी रूप[6]। यांकी महिमा अमित अनूप।
भव अगनि सागर कहु तरनी[7]। सतिगुर सिक्खनि को सुख करनी ॥१३॥

जो सिख गुरबानी भै करै। बिन प्रयास भवसागर तरै।
गुरबानी महिमा महीयाने। जे मिरयादा हम नहिं ठाने ॥१५॥
तौ सिख भै न करैगो कोई। बिन भै करे श्रेय नहिं होई।
गुरबानी को भै हम धरि कै। तज्यो प्रयंक शीघ्रता करिकै ॥१६॥
(रा० १० : २१)

* * *

हउमै—अहंकार

सवैया

प्रथम कुबंधन पर्यो सुनहु सो अहै आतमा ताल समान।
तनु हंता धारनि इन कोनो मैं दिज खत्री बैस[8] सुजान।
इत्यादिक तन अपनि रूप लखि भयो जालि हरिआवलि[9] आनि।
जल को कर्यो अछादन[10] जैसे तिम सरूप निज छादनि ठानि ॥७॥

अहं ब्रह्म इह नाम बिसार्यो तनु हंता जबि धारनि कीनि।
पुनहु पराल घास अरु फूस जु पर्यो जाल[11] परि भा बहु पीन।
तिमि हंता पर ममता उपजी मम सुत, मम ग्रिह त्रिय धन चीन।
जल सम आतम अधिक अछाद्यो परदा मोटो भयो नवीन ॥८॥

---

१. पूर्ण करने वाली। २. झूठे विषयों से विराग उत्पन्न करने वाली। ३. सतिनाम का प्रेम पैदा करने वाली। ४. सारे निंदकों को जलाने वाली। ५. देखता है। ६. गुरु का अनुभव वाणी के रूप में है। (वाणी गुरु है)। ७. संसार जो अग्नि का सागर है। उससे पार करने को तरी समान है। ८. वैश्य। ९. हरियावल का जाला। १०. ढकना। ११. जाला, काई।

ब्रित्ति न पहुंचै इन दुइ को तजि फस्यो इनहुं महुं जानै नांहि ।
जबि सतिगुरु उपदेश जतन को[1] जल आतम प्रापति निज मांहि ।
इन दोनहुं ते दुख को भोगहि अति दुख को सुख लखि चित चाहि ।
वहिर ब्रिति ते उठहि बाशना तिन अनुसार जनम को पाहि ॥९॥

इह परदो तनहंता ममता त्यागे ते आतम लखि लेति ।
मन को इंद्रय संगि संबध जु[2] इह बंधन अतिशै दुख देति ।
इंद्रय ते हटि करि हुइ फिर जबि टिक जावै मन रिदे निकेति ।
सो मुकती है सुखद परमगति कहति संत सभि बेद समेति ॥१०॥

बुधि ते गेय[3] आतमा ब्रह्म जु नहिं किम इंद्री बिशय बिचार ।
ग्याता पाइ अनंद उदधि की तत छिन मिलहै तांहि मझार ।
नहीं बाशना उठहि बहुर कबि जनम मरन नहिं हुइ संसार ।
सारि असार[4] बिचार धर करि सार गहै सभि त्याग असार ॥११॥
(रा० ४ : २२)

चौपई

जो नर पढहि मान के कारन । दुरि दुरि करहि समूह बिकारनि ।
निशचा नही ग्यान को पावै । सभि महिं ग्यानी नाम कहावै ॥३८॥
हंकारी सतिसंग न करै । बडिआई धन हित सभि धरै ।
तिस को प्रापति होइ न ग्यान । किम दरगाहि पाइ सो मान ॥३९॥
(रा० ५ : ४२)

निसानी छंद

तनहंता को त्याग करि ब्रह्म हंता गाढे ।
एक रूप को जान करि नाना को काढे ।
जानै साचा एक को लखि झूठ अनेके ।
उपजनहार सु बिनस है इम धरहि बिबेके ॥३५॥

दोहरा

इम कहि करि श्री सतिगुरू सिक्खन प्रति उपदेश ।
बैठे केतिक चिर उठे मंदरि गए विशेश ॥३६॥
(रि० ३ : ४३)

---

१. कोई यत्न बताते हैं । २. जो सम्बन्ध है । ३. जानने योग्य । ४. सत्य, असत्य विचार ।

चौपई

करम माल सभि के गर परी। तन हंता त्यागे तिन हरी।
बिना त्याग ते अनिक कलेश। जनम मरन के कशट अशेश ॥४१॥

यांते सतिगुर ने बहु बार। बरनन कीनो ग्रंथ मझार।
हउ[1] विचि आइआ हउ बिचि गइआ। हउ बिचि जंमिआ हउ
बिचि मुआ ॥४२॥

इत्यादिक कुछ गिने न जांहि। कह्यो देहि हंता करि नांहि।
तन हंता मंहि सभि उतपात। दुख प्रापति पुन पुन पछुतात ॥४३॥

जनम असंख इसी ते धरै। अप्रमान संकट ते मरै।
ममता आदि बिकार अनेक। तन हंता जनती अबिबेक ॥४४॥

जिस जन पर होवै गुर करुना। तन हंता को करहि प्रहरना[2]।
तत्त उपदेश नाम लिवलावै। जनम मरन दुख ते छुटि जावै ॥४५॥
(रि० ५ : ४१)

* * *

(गुरुमुख)

चौपई

आछो मधु देखि गुर कह्यो! 'गुरमुख सिख मम भेद न लह्यो।
एक रूप करि जानहु दोई। गुरु अरु सिक्खन न अंतर कोई ॥२६॥
(रा० ५ : २५)

गुरमुख ग्रिहसति बिखे करि भगति। पाइं मुकति, नहिं जनमति जगति।
जिमि जल महिं अलेप अरबिंद। राखहि ऊरध ध्यान दिनिंद[3] ॥१६॥

तिमि गुर सिक्ख किरत को करते। देकरि सति संगति पुन बरते।
हुइ फकीर जाचति जबि खाइ। जप तप निज घाटो तबि पाइ ॥२०॥
(रा० १ : ३६)

शेर द्रिशटि गुरमुख नित धारैं। सुखद दुखद जानहिं करतारै।
राग द्वैष इस ते नहिं होति। लखहिं परमेशुर शांति उदोति ॥३३॥

---

१. हउमै—अहंकार। २ त्यागना। ३. सूर्य।

स्वान द्रिशटि महिं अनिक बिकार। जिन ते पुन पुन परहि संसार।
राइ जोध! तुम समझहु ऐसे। श्री गुरदित्ते की बिधि तैसे ॥३४॥
(रा० ८ : ४०)

निसानी छन्द

मुख ते कै मन ते सदा लिव नाम लगावै।
हाथनि ते करि टहिल[1] को सिख संत रिझावै।
सो मम प्यारो अधिक है बसि रहों सदीवा।
करणी ऊची नित करहि राखहि मन नीवा[2]।
(रि० ३ : ४३ : ३४)

* * *

(सहज समाधि)

चौपई

सिमरहिं वाहिगुरू सतिनामू। तबि नासहि हउमै बड आमू[3]।
मन तुरंग बड सुधता पावै। गुर अनुसारी हुइ थिरतावै ॥३७॥
पाइन बिचरति[4] सिमरहु नामू। हाथन करिहु काज सभि धामू।
उठति बैठति जागति सोवति। सुनि ते श्रवण बिलोचन जोवति[5] ॥३८॥
रिदा धरहु सतिगुर के संग। अपर क्रिया करियहि सभि अंग।
जिम सिरवट[6] बहु बात बनावति। हाथ हलावति मारग जावति ॥३९॥
तऊ घटे सों मन है जुरिओ। गिरहि न डोलहि, रहै सु धरिओ।
इम ब्रित्ति निशचल करि सुख पावो। अंत काल कैवल हुइ जावो ॥४०॥
(रा० २ : १८)

* * *

(गुरुओं का अवतारी रूप)

चौपई

निरंकार के तुम आकारा। सरगुन रूप बिशनु तन धारा।
सतिजुग महिं बावन बपु पावनि। मापे तीन लोक त्रै पावनि[7] ॥१८॥

---

१. सेवा। २. नम्र। ३. रंग। ४. चलते फिरते। ५. देखना। ६. सिर पर घड़ा रखकर चलने वाली (पनिहारिन)। ७. वामन अवतार जिसने तीन पावों में तीनों लोकों को नाप लिया था।

त्रेतै रघुवर रूप सुहावन। घाइ अगिन[1] राखश युत रावन।
द्वापुर होए क्रिशन मुरारी। शत्रुन सैन असंख संघारी[2] ॥१९॥

अबि कलिजुग को काल निहारा। गुरू रूप आपनि को धारा।
हम नर मंद मती नहिं जानैं। तुमरी महिमा महिद महानैं ॥२०॥
(रा० ३ : ४२)

*　　*　　*

(गुरु नानक एवं अन्य अवतार)

गुरु अंतरजामी सरबग्य। सभि थल संगति सेव क्रितग्य।
लाज बिरद की राखि क्रिपाला। सिक्खन के प्रण पुरहु बिसाला ॥२०॥

चहुं जुग महिं जिन जिन आराधे। जाइ सभिनि के कारज साधे।
प्रेम डोर ते ऐंचति[3] जोइ। निज समीप ही देखति सोइ ॥२१॥

दैत[4] बली बल ने सुर लोक। छीन लीनि दे देवन शोक।
शक्र होनि को जग्य अरंभे। सुनि सुर गन कै भयो अचंभे ॥२२॥

अपनि सदन ते भए निरास। हे मधुसूदन करि तव आस।
इंद्र समेत अराधनि लागे। बिनै भनति बहु प्रेम सु पागे ॥२३॥

तिन के हित प्रभु रह्यो न गयो। बावन रूप आपि धरि लयो।
जान्यो भगत भूप अंबरीश। रच्छक भए प्रभू जगदीश ॥२४॥

त्रेते रामचंद अवतार। बन गमने[5] जिन चरित उदार।
बित्यो प्रतीखति[6] जिह चिरकाला। जाति भीलनी बहुरो बाला ॥२५॥

तिह संतोश देनि के कारन। श्री प्रभु कीनसि निकटि पधारन।
मनोकामना पूरन कीनी। सभि ते ऊचो पद तिस दीनि ॥२६॥

पुन श्री क्रिशन बिदर के गए। सोदामा के तंदुल[7] खए।
लाज द्रोपती की रखि लीनि। रच्छा कीनी पिखे जो दीन ॥२७॥

श्री नानक कलि महिं अवतार। नगर ऐमनाबाद मझार।
लालो शूद्र तांहि घर जाहि। रुचि सों असन[8] बनायो खाहिं ॥२८॥

---

१. असंख्य। २ मारी। ३. खींचता है। ४. दैत्य, असुर। ५. वन को गए। ६. प्रतीक्षा करते। ७. चावल। ८. भोजन।

तिन खादी पर भए जु पाछे। इसी रीति जिम प्रेमी बांछे।
करति रहे सभि पूरन ग्रासा! यांते हमहिं सभिनि भरवासा ॥२६॥
(रा० ११ : ४६)

* * *

(भक्त भगवान को गुरू जी का विष्णु रूप में दर्शन)

चौपई

जे करि परमेशुर ग्रवतारू। ग्रवनी परि ठानति बिवहारू।
तौ मुझ को दरशन इम देवैं। रूप चतुरभुज को धरि लेवैं ॥४॥

मैं पुन बनौं सिक्ख इन केरा। जि न को पसर्यो जसु बहुतेरा।
सतिगुर ग्रंतरजामी जाना। बने चतुरभुज रूप सुजाना ॥५॥

श्यामल ग्रलसी कुसम मनो है। द्रिग बिसाल दल कमल बने है।
संख गदा धरि पदम चक्र को। मुख कुंडल सुठ[1] भ्रिकुटि बक्र को ॥६॥

पीतांबर शोभति बनमाला। को कवि बरन सकै दुति जाला[2]।
क्रिपा भरे द्वै नैन रसीले। मुसकावति मुख मंद छबीले ॥७॥

सरितापति सुंदरता सार। शेश सारदा पाइं न पार।
ग्राइ कर्यो दरशन जबि ऐसे। ग्रनंद निमगन न तन सुधि कैसे ॥८॥
(रा० ६ : ८)

* * *

लोक भावना

बरखा हटी बिघन क्रिखि[3] भारी। ग्रखिल ग्राम को संकट धारी।
सभिहिनि को ग्रति चिंता हेत। ग्रहै तुमारो एक निकेत ॥४॥
एक ग्राम हित देश दुखावै। तऊ तिह त्यागन ही बनि ग्रावै।
इक कुल हेत ग्राम दुख पाइ। तौ तिस कुल को त्याग कराइ ॥५॥

---

१. सुन्दर। २. ग्रत्यधिक दुति। ३. खेती।

इक के त्यागे कुल बच रहै। करहि तजनि यौं बुधिजन कहैं।
यांते तुम घर त्यागन करे। सगरो[1] ग्राम चित को हरे ।।६।।
(रा० १ : २२)

* * *

(योग—भोग-समन्वय)

जोग भोग दीनहुं को पाइ। रहै अलेप कमल जल भाइ।
दुइ दिन घर, पुन सतिगुर पास। आवहि, रहै, दरस की प्यास।
(रा० १ : ३७ : ११)

धन्न गुरू धन्न पंथ तुमारा। सार निकार जु अंगीकारा।
भे श्री नानक आदि गुरू दस। जोग भोग को लियो जिनहुं रस ।।३६।।

जोग भोग मों दोनहुँ रीति। दई पंथ को निरमल चीत।
सत्तिनाम को सिमरन करनो। इही जोग इक लिव को बरनो ।।३७।।

लरनि रिपुनि सों, करिबो राज। इही भोग के दिए समाज।
इत्यादिक कहि निरमल जसु को। बंदहि सतिगुर पाई परस को ।।३८।।
(रितु ३ : २२)

* * *

(क्षमा)

चौपई

करनी छिमा[2] महां तप जान। छिमा करनि ही दैबो दान।
छिमा सकल तीरथ अशनान[3]। छिमा करति नर की कलिआन ।।४३।।

छिमा समान आन गुन नांही। यांते छिमा धरहु मन मांही।
सदगुन को नहिं त्यागनि कीजै। सदा रिदै महिं इसथिर कीजै ।।४४।।
(रा० ११ : १७)

* * *

---

१. सारे। २. क्षमा। ३. तीर्थ स्नान।

(अन्य गुण)

सहनशीलता छिमा धरीजै । किस के संग न द्वैश रचीजै[1] ।
बाक[2]-कठोर अनादर करे । सुनि करि तपहि न रिसि[3] कबि धरे ।।२६।।

गुर सिक्खन को प्रथम अचावहु । शेश रहै भोजन तुम खावहु[4] ।
महां पवित्र होति है सोइ । सिक्खन पीछे अचीयति[5] जोइ ।।३२।।
(रा० १ : ४०)

* * *

(सिक्खी के भेद)

तुक अकाल उसतुति की गाई । पंच बिधिनि सिक्खी सुनि भाई ।
धंधे की इक, देखा देखी । हिरसी त्रै, सिदकी अवरेखी[6] ।।३०।।

पंचम अहै भाव की भले । प्रथमा इम जिम भाई चले[7] ।
सभि सगुरे मुझ निगुरा कहैं[8] । ले सिक्खी धंधे की अहै ।।३१।।

को इक सिक्ख बन्यो किह देखा । सदन पदारथ भले बिशेखा ।
सुत, बित, पति, दुध आदर आदि । सरब प्रकार हेरि अहिलाद[9] ।।३२।।

लोभ पदारथ को मन भयो । गुर को सिक्ख होइ सो गयो ।
इह सिक्खी है देखा देखी । रही पदारथ चाहि विशेखी ।।३३।।

सतिगुर शबद न परचा पायो । गुर सरूप नहिं रिदै बसायो ।
तीजी हिरसी[10] सिक्खी जानो । बहुत जु करहिं करनि सो ठानो[11] ।।३४।।

सोझी कुछ न आप को आई । नहीं सीख ले गुरमति पाई ।
नहिं संगत महिं बैठ्यो जाइ । गुर पाहुल को भेद न पाइ ।।३५।।

चतुरथ सिक्खी सिदकी होइ । गुर बिन अपर न मानहि कोई ।
जीवरण मरण बिखै गुर शरणी । तजहि न जिम प्रवाहि मैं तरणी[12] ।।३६।।

सिर जाणे लगि सदा निबाहै । तन मिथिआ लखि करि जग मांहै ।
सिक्खी सचु प्रापति को करता । इम प्राननि बिनसन लगि धरता ।।३७।।

---

१. द्वेष न करना । २. वचन । ३. सुन कर न संतप्त हो, न कभी क्रोध को धारण करे । ४. दूसरों को देकर जो भोजन शेष बचे वह खाए । ५. खाता है । ६. चौथे प्रकार की सिक्ख सिदक (प्रेम) की लिखी है या देखी है । ७. जैसे भाई-सम्बन्धी चलते हैं । ८. सारे गुरू वाले हैं, मुझे निगुरु कहते हैं । ९. खुशी । १०. ईर्ष्या की । ११. जिसे बहुत से लोग करते हों, वह करने लग जाना । १२. जिस प्रकार नौका के सवार प्रवाह में नौका को नहीं छोड़ते ।

बिघन अनेक कशट सहि सारे । गाढो सिदक नहीं निरवारे ।
पल महिं सिर दे सिदक न खोवै । सो सिख मेरो पूरन होवै ॥३८॥

पंचम सिक्खी भाव उपाई । लखि गुर महिमां परि शरणाई ।
निस दिन गुर मूरति उर धारी । करहि भाव सभि सिक्ख मझारी ॥३९॥
(रि० ३ : ३४)

* * *

(सिक्खी के आदर्श)

रनि गुर सिक्खहु शुभ उपदेशू । धरहि कमावै तजै कलेशू ।
लखहु मुकतनामा इस नामु । जिस के करति लहै गुरधाम ॥२॥

सिक्ख होइ किस करज न लेवै । जे करि लेय भाव करि देवै ।
सुने न झूठ, न मुख ते कहै । संग झूठ के प्रीति न गहै ॥३॥

सतिसंगी हुइ साच कमावै । संगि साच के प्रीति बधावै ।
सच उर धरहि म्रिजादा साची । छल बिन होवै साच उबाची ॥४॥

सचि के संग जीवका जोई । तिस को करहि, दंभ बिनु होई ।
कुछक बिचार दुहन महिं अहै । सूखम भेद सुमति को लहै ॥५॥

कहे साच किसि होवै घाति । इस ते आदि बिचारहु बात ।
तहां साच नहिं अंगीकारै । बनि उपकारी कार सुधारै ॥६॥

अपर जितिक जग के बिवहारे[1] । सचि के सहित करहु हित धारे ।
सिक्ख होइ किस झूठ न खावै । सिक्ख होइ धन प्रेम न लावै ॥९॥

सिक्ख प्रसादि बांट करि खाइ । नंगे केस न करि चिर लाइ ।
मैथन सुपतनि, अचवन आदि । नंगे केस न ले कुछ स्वाद ॥१०॥

पठि जप जापु नाम गुर लेइ । 'तव प्रसादि' कहि करि अचवेइ[2] ।
नगन नाइका[3] नाहिं निहारै । त्रिय के सिमरन उर नहिं धारै ॥११॥
(रि० ३ : ५०)

---

१. व्यवहार । २. खाए । ३. स्त्री ।

काहूं सिउं झगरा नहिं मांडो[1] । रहत आपनी मूल न छाडो ।
दुरजन सेती प्रीत न करो । हिरदे रोस काम[2] परहरो ॥३४॥

पर की रमती नारी छोरि । जे अपनी इंद्री है ठौर ।
दंभ नासतकी मतसर तजे[3] । असूआ, निंदा, चिंत न भजे[4] ॥४०॥

ग्वग तरुवरु जग बास निहारै[5] । रैन दिना निज तत्त्व बिचारै ।
हिय विराग लखि जगत असारा । देह प्राण गुण आतम न्यारा ॥४१॥

सुनि करि शास्त्रन गरब गवावै[6] । काहुँ वसत सों नेह न लावै ।
धीरज सों विवहार घटावै[7] । सहिज सहिज सभि सों छुटकावै ॥४२॥

दीसे कुधी सुमति का बोधक[8] । प्राण अपान की गति का सोधक[9] ।
बड़ी बेर भोजन नहिं खाइ । मान बड़ाई अपन न गाइ ॥४३॥

कुसत कुभोज स्वनारी शोभा[10] । इनको तजै न धरि उर लोभा ।
खल की, मल की, नटकी पंगत[11] । पुत्र पठावै साधू संगति ॥४४॥

देव भवन[12] महिं चिर नहिं रहै । करनी भेद न किह सों[13] कहै ।
समता नित सभिनि को हेरै[14] । न्याइ समै कुछ पच्छ[15] न टेरै ॥४५॥

भोगन की कीरति नहिं कीजै । खान पान महिं थित मन[16] भीजै ।
सूधाहार, बिहार जु सूधा[17] । करति रहै सिख घर धन रूधा[18] ॥४६॥

(रि० ५ : १५)

---

१. नहीं करें। २. काम-क्रोध त्याग दो। ३. दंभ, नास्तिकता और ईर्ष्या को छोड़ दे। ४. दोषारोपण, निंदा और चिंता न करे। ५. जगत का रहना वृक्ष पर पक्षी के रहने के समान जाने। ६. धर्म पुस्तकों को पढ़ कर अहंकार दूर करे। ७. सांसारिक व्यवहार, उत्तरदायित्व, जिम्मेदारियां घटाता रहे। ८. जो बुरी बुद्धि वाला दिखाई दे उसे अच्छी बुद्धि का बोधक बने। ९. श्वासों के साथ नाम जपे। १०. बुरी हठ, बुरा भोजन, अपनी स्त्री की शोभा। ११. दुष्ट की, मल्ल—पहलवान या गन्दे आदमी की, संगति न करे। १२. पूजा मंदिर। १३. अपने भजन आदि करने का भेद किसी से न कहे। १४. सभी को समदृष्टि से देखे। १५. न्याय के समय किसी से पक्षपात न करे। १६. खाने पीने में मन को स्थिर रखे, मन पर मात्मा में लगाए रखे। १७. आहार सीधा और व्यवहार भी शुद्ध रखे। १८. जो सिक्ख (यह सब) करता रहे उसका घर धन से भरा रहेगा।

विनय-भावना

तोसो नहीं दाता कोऊ। मोसो ना भिखारी दीन।
तोसो ना दिआल दुखी मोसो ना अलाईए[1]।

(ऐन० २ : ३६ : ३३)

तुम सो बडो है कौन, मों सो कौन छोटो।
तुम सो खरो कौन है, मोसो खोटो कौन।

सीर ना सुसंग मैं[2] कुसंग मैं संतोखसिंह,
रम्यो[3] नित पापनि सों मिल्यो कबि धीर ना।
धीर ना धरति काम लंपट कठोर कूर[4],
बोर्यो मैं बिकारन[5] मैं भयो मन तीर ना।

तीर ना[6] पछान्यो तुमैं, दूर करि जान्यो प्रभू,
आपने उधार की बिचारी ततबीर[7] ना।
बीर[8] ना भगत, भेख धारी हित नारी,
जिम राखी पैज[9] तैसे मेरी हेरो तकसीर ना।

(रि० २ : ५० : ४४)

---

१. कहा जाता है। २ सुसंग में कभी मेल नहीं किया। ३. प्रवृत्त रहा। ४. मेरा मन धैर्य नहीं धरता, कठोर काम में लंपट है। ५. झूठे विकारों में डूबा हुआ है। ६. नजदीक। ७. तदबीर—उपाय। ८ न वीर हूं—दान, दया आदि में। ९. स्त्री प्राप्त करने के लिए विष्णु का वेश धारण किया था, उसका भी मान रखा (एक राज-कन्या ने प्रण किया था कि वह विष्णु से ही विवाह करेगी। एक बढई के पुत्र ने विष्णु का रूप बना कर उससे विवाह किया। एक बार उस राजा पर किसी ने आक्रमण किया, तो उसने इस विष्णु से बचाने की प्रार्थना की। उस बालक ने भगवान विष्णु की प्रार्थना की—और उन्होंने उसकी लाज रखी थी।

करहि शनान आदि मल हरे। लहै न पार जथामति रहे।
दीन बंधु निज बिरद संभारहु। हम से अधम जीव को तारहु।
(रि० ३ : २६ : ६)

(भाई नन्दलाल का गुरु जी के प्रति भक्ति-भाव)

डेढ हजार मुहर धरि आगे। कलगीधर की चरनी लागे।
महां प्रेम ते जल भरि नैन। मुख ते नहिं निकसति कछु बैन ॥९॥

दरशन करति अमी जनु पीवति। लोचन डोने करि थिर थीवति।
भयो मगन मन देखति रह्यो। लखहि कि तन खुदाइ मैं लह्यो ॥१०॥
(रि० ३ : २६)

(भागभरी की भक्ति-भावना)

चौपई

नाहिं त मैं मतिमंद मलीनी। धन गुन सकल भांति ते हीनी।
विषम पंथ जहिं ब्रिद पहारनि। सभि उलंघि पहुंचे जिस कारन ॥१९॥

सिख प्रिय बिरद आपको सच इम। भगत वछल तुम रूप बिशनु जिम।
मोहि पतित को पावन कीना। दीननि पर करुना रस भीना ॥२०॥

कहां आपकी सतुति बखानौं। अलप मती कुछ कहि नहिं जानौं।
अधम उधारनि-नाम तुमारा। इक इह मैं नीके निरधारा ॥२१॥

देखहु प्रेम कि नर हुइ नारी। गति सुभाउ की महिद बिचारी।
नौ निधि सिद्धनि सभि को स्वामी। पोखनि[1] करहु रूबंतरजामी ॥२२॥
(रा० ५ : ४९)

(भगवान नाम के भक्त की भक्ति-भावना)

दोहरा

संन्यासी भगवान गिर बिचर्यो देश बिदेश।
आवति भयो पंजाब महिं जिस के भाग बिशेष ॥१॥

---

१. पालना करना—पोषण करना।

चौपई

जहिं कहिं महिमा सतिगुर केरी । सभिहिनि ते सुनि श्रोन घनेरी ।
मन अनुराग जागिबे लागा । दरशन चाहति भा बडभागा ।।२।।

सन्यासी के पंथ मझारा । धन कुल को अभिमान निवारा[1] ।
धन लालस दरशन को आवा । रिदे मनोरथ एव उठावा ।।३।।

जे करि परमेशुर अवतारू । अवनी परि ठानति बिवहारू ।
तौ मुझ को दरशन इम देवैं । रूप चतुरभुज को धरि लेवैं ।।४।।

मैं पुन बनौं सिक्ख इन केरा । जिन को पसर्यो जसु बहुतेरा ।
सतिगुर अंतरजामी जाना । बने चतुरभुज रूप सुजाना ।।५।।

श्यामल अलसी कुसम मनो है । द्रिग बिसाल दल कमल बनो है ।
संख गदा धरि पदम चक्र को । मुख मंडल सुठ भ्रिकुटि बक्र को ।।६।।

पीतांबर शोभति बनमाला । को कवि बरन सकै दुति जाला ।
क्रिपा भरे द्वै नैन रसीले । मुसकावति मुख मंद छबीले ।।७।।

सरितापति सुंदरता सार । शेष शारदा पाइं न पार ।
आइ कर्यो दरशन जब ऐसे । अनंद निमगन न तन सुधि कैसे ।।८।।

कितिक समे मैं जबि सुधि पाई । पर्यो दंडवत गुरु अगुवाई[2] ।
शरनि शरनि राखहु दे हाथि । मुझ अनाथ को करहु सनाथ ।।९।।

सिक्ख्य आपनो कीजहि स्वामी । तीन लोकपति अंतरजामी ।
दीन दयाल है बिरद तुमारा । भवसागर ते लेहु उधारा ।।१०।।

बेस पलटि गुर वाक सनायो । हरि दरशन तुम इह ठां पायो ।
सिरीचंद गुरु नानक नंद । तिन अनुकंपा कीनि बिलंद ।।११।।

मिहरचंद पर सो अबि तहां । बेदी बंश बिखे जसु महां ।
तिह को मिलहु सु पूरहि आसा । दरसहु जाइ धरहु बिस्वासा ।।१२।।

इह ठां उह ठां भेद न कोऊ । एकहि रूप जानिये दोऊ ।
तबि भगवान देहुरे गयो । मिहरचंद पग परसति भयो ।।१३।।

सतिगुर ने मुहि[3] अपनो कीनि । कर्यो सु दरशन भा बुध हीन[4] ।
अपनि आप को अधिक धिकारति । गुर पूरन के गुन बीचारति ।।२३।।

---

१. अभिमान त्याग दिया था । २. सामने । ३. मुझे । ४. बुद्धि हीन—मूर्ख ।

उमग्यो प्रेम द्रिगनि जल छावा । गदगद गिरा अधिक बिकुलावा ।
प्रेम बिबसि हुइ मग नहिं बूझै । जहिं कहिं गुर मूरति ही सूझै ।।२४।।

कबहूं ऊचे बोलति दौरे । कबहूं रुदति बैठि बनि बौरे ।
चल्यौ न जाइ, थिर्यो नहिं जाई । मौन न रहै न बोलि सकाई ।।२५।।

कबि घूंमति जिम अमली[1] होइ । सुध शरीर की बिसर्यो सोइ ।
पंथ न सूझै द्रिग जल रुक्यो । महां प्रेम ते इंद्रै थक्यो ।।२६।।

इम व्याकुल बहु दिन मैं आवा । जहिं सतिगुर के थान सुहावा ।
प्रेम मगन हुइ द्वारे आइव । चरन धूरि ले मसतक लाइव ।।२७।।
(रा० ९ : ८)

(गुरु अंगद देव के प्रति श्री अमरदास की भक्ति-भावना)

दोहरा

केतिक दिन बीते जबहि गुरु दरशन नहिं कीन ।
जो नित प्रति निकटी रहैं होइ प्रेम आधीन ।।१।।

चौपई

तिन को बिन देखे दिन बीते । कुतो शांति करि चीति प्रतीते ।
तरफति रात नींद नहिं आवै । दिन महिं रुचि करि असन[2] न पावैं ।।२।।

खान पान सों नहीं सनेहू । पद अरबिंदनि प्रेम अछेहू ।
सभि सों उदासीन रहिं बैसे । नहिं रुचि बोलन सुनहिं न कैसे ।।३।।

मन सिमरन करि करों हकारन[3] । निशचै आवहिंगे मम कारन ।
तऊ तिनहु को श्रम मग होइ । इहु मेरे चित रुचहि न कोइ ।।४।।

दरशन बिनां शांति किम धारैं । इम असमंजसु रिदै बिचारैं ।
जाइ खडूर निहारन करिहों । हुकम मिटहि अपराध बिचरिहों ।।५।।

मन महिं अनगिन ठानहिं गिणती । निस दिन भनहिं दीन बनि बिनती ।
चित चटिपटी लगति अधिकाई । करों कहां कुछ करी न जाई ।।६।।

उत श्री अंगद जग गुर स्वामी । दास रिदै लखि अंतरजामी ।
बढी प्यास जिह शांति न आवति । सुकचति चित करि नहीं बुलावति ।।७।।

---

१. मद्यपायी, नशे वाला । २. भोजन । ३. बुलाना ।

असमंजस महिं सेवक परिश्रो। अपनो बिरद संभारन करिश्रो।
जिमि चात्रिक की प्यास बिचारु। जलधर[1] धावहि करुना धारि ॥८॥

बूझि प्रेम निज बचन सम्हाला। उठि करि गमने दयाल बिसाला।
रह्यो निकटि जबि गोइंदवालू। लखि श्री अमर उठे ततकालू ॥९॥

हित सनमान अगारी गए। मनहु प्रेम धरि मूरति थए।
देखि दूर ते द्रिग जल छाए। धाइ परे चरननि लपटाए ॥१०॥

पकरि भुजा गर संग लगाइव। दुहु दिश प्रेम अधिक उमगाइव।
कर सों कर गहि करि पुन चले। ग्यान बिराग मनहु दो मिले ॥११॥
(रा० १ : २५)

(काशीराज की गुरु-भक्ति)

बीत्यो चिर दरशन ते हीन। तरफति चित जिम जल बिन मीन।
सुखद वसतु बहु मोली आवै। गुरू बिरहि करि नहिं उर भावै ॥५५॥

जिम चात्रिक इक बूंद चहंता। आदि सिंधु नदि नीर तजंता[2]।
जथा कंत के ब्रिहु करि तरुनि[3]। दुखद होति जे सुखदा बरनी ॥५६॥

नीर नैन चित चैन न कैसे। दरब क्रिपन को बिनसति जैसे[4]।
दुर्यो लहै संकट उर भारे। तबि मन करि सतिगुरू चितारे ॥५७॥

हे गुर अंतरजामी स्वामी। बखशति सदा सेवकनि खामी।
दीन दयाल गरीबनिवाजा। नाम कहैं इम रंक कि राजा ॥५८॥

सिमरन करहु हकारहु मोही। नहीं आपते आवनि होही।
नहीं दास के बसि किस भांती। आप अहो समरथ बख्याती[5] ॥५९॥

जिम चाहहु तिम रचहु गुसाईं। बिगरे सुधरहिं सुधि बिगराहीं।
इमि बिनती करि कवित बनाए। गुरू ध्यान करि देति सुनाए ॥६०॥

कवित्त

गाइ सुत[6] जैसे मिल मात मन चाहि ऐसु,
कूद बिललाय, गर बंधन बसाइ ना[7]।

---

१. मेघ। २. छोड़ देता है। ३. युवती। ४. जैसे कंजूस को द्रव्य-धन नष्ट होने पर चैन नहीं पड़ती। ५. प्रसिद्ध। ६. बछड़ा। ७. परन्तु गले में रस्सी के कारण कुछ वश नहीं चलता।

जैसि तो बिगार निज धाम को पधार चाहै
जान पराधीन चितं चितवति जाइ ना।
जैसे बिरहनी पति संग को सनेह चाहै,
देखि कुल अंक लाज[1] संगम[2] सु पाइ ना।
तैसि हौ शरन गुर चरनन चाह सदा,
आइसु[3] बिदेस बसि अति बिललाइ ना ।।६१।।

सवैया

मीन सदा जिम चाहति नीर को चात्रिक बूंद सदा मन चाहै।
नीरज[4] चाहि सदा रवि की पुन औ नलिनी ससि देखि उमाहै।
अग्रज ताडिति है सभिही वहु प्रीत न त्याग सदा रुचि आहै।
तैसि प्रभू मम प्रीत रिदै तुम ताडति हो जन प्रीति वधाहै ।।६२।।
(रा० ७ : ४)

(कृष्णभक्त माईदास की भक्ति-भावना)

चौपई

नहिं मुझ को दरशन दिखरायसि। दोइ बार दे अन्न सिधायसि।
इम बिचारि करि हेरनि लागा। चहुं दिशि फिरति बध्यो अनुरागा ।।३२।।
पर्यो रह्यो तिह ठां पकवान। इति उति खोजति भयो हिरान[5]।
प्रेम समुंद्र बिखै बहि गयो। माईदास थाहु नहिं लह्यो ।।३३।।
रुदनि करति अरु ऊच पुकारै। नहिं तन की सुधि कछु संभारै।
गुन गावति 'हे पतित उधारन। हे घनश्याम जगत के कारन ।।३४।।
हे अनाथ के नाथ क्रिपाला। नाम गरीब निवाज विसाला।
हे मनमोहनि सुंदर सांवरि। मैं मलीन पांमर ते पांवरि[6] ।।३५।।
अपनो बिरद संभारनि करीयहि। मम अवगुन को नहीं[7] निहरीयहि।
ह्वै क्रिपाल दिहु दरस गुसाईं। प्रिथम जथा भोजन दिय आई ।।३६।।
इत्यादिक प्रभु को जसु कहै। बिनती करति नीच निज लहै।
कर्यो प्रेम ने ब्याकुल भारा। तबहि श्यामघन बिरद संभारा ।।३७।।

---

१. कुल लज्जा का अंकुश। २. मेल। ३. आज्ञा के वश विदेश में। ४. कमल। ५. हैरान।
६. अधम से अधम। ७. मत देखिये।

अद्रिश ह्वै करि श्री भगवान। हित कल्यान सु कर्यो बखान।
माईदास भगत तूं मेरा। सहत प्रेम बैराग बडेरा ॥३८॥

इक अपराध आपनो सुनो। जहां प्रेम तहिं नेम न गुनो।
जहां नेम तहिं प्रेम न पूरा। यांते रह्यो रिदे महिं ऊरा ॥३९॥

हुटि अबि गमनहु गोइंदवाल। तहिं मम दरशन करहु क्रिपाल ॥४२॥

श्री गुर अमर मोहि महिं कोऊ। भेद न जानहु इक लखि सोऊ।
जिस बिधि को सरूप उर बांछे[1]। तहां जाइ दरशहु सो आछे ॥४३॥

जग कारन तारन तन मेरा। भगत रूप धरि सो लिहु हेरा।
शंका मन महिं करहु न कोई। शरधा धारि दरसीअहि सोई ॥४४॥
(रा० १ : ५२)

(बाबा बुड्ढे की भक्ति भावना)

ब्रिध जी ! श्री हरिगोबिंद आए। सुनति प्रेम उमग्यो अधिकाए।
सभि तन महिं रुमंच हुइ आवा। रुचिर बिलोचन महिं जल छावा ॥२०॥

गदगद बानी जाइ न बोला। मनहुं प्रेम पूरन भरि तोला[2]।
उठि करि गमन्यो भयो सथंभा[3]। चलति न पग मन मानि अचंभा ॥२१॥
(रा० ६ : ५३)

(मक्खनशाह की भक्ति)

सिक्खी महिं शरधा नित राखहु। गुर हाज़र सद जहां भिलाखहु[4]।
श्री गुरु बाक सुनति सिख सोइ। भयो प्रसन्न संदेहनि खोइ ॥३९॥

गर जामे की तनी तराकी[5]। भए रुमंच रिखीकनि थाकी[6]।
देखे सतिगुरु दिनकर तूला[7]। बर अरबिंद मनिंदै फूला[8] ॥४०॥

---

१. चाहे। २. मानो प्रेम का तोल पूरा भर गया है। ३. स्तम्भ (एक सात्विक भाव)। ४. सिक्खी में श्रद्धा रखो, गुरु वहीं आ उपस्थित होंगे, जहां चाहोगे। ५. गले में पहने हुए जामे (कुरते) की तनियाँ (खुशी में) टूट गईं। ६. इंद्रियां ठहर गईं। ७. सूर्य समान। ८. सुन्दर कमल की भांति खिल गया।

गदगद गिरा न बोल्यो गइऊ। रुके कंठ परिपूरन भइऊ।
नेत्रनि बिखै अश्रु भरि आए। दशा देखि मन रहि बिसमाए ।।४१।।

जनम रंक जिम नव निधि पाई। बदन उमंग अरुनता[1] छाई।
कितिक बेरि टिक गयो अडोला। चखनि पलक[2] मुख बाक न बोला ।।४२।।

सतिगुरु महिमा गुरुवी[3] जानी। महां प्रेम महिं मति मसतानी।
पूरब रिदा शुद्ध जिस केरा। पुनहि दरस पिखि राग बडेरा ।।४३।।

ज्यों अति स्वेत बसत्र हुइ कोई। रंगरेज ले रंगहि सोइ।
गूढा रंग बिमल अति आवै। जिस की समता अपर न पावै ।।४४।।

त्यों मक्खरण मन रंग्यो राग[4]। हलत पलत महिं भा बडिभाग।
पूरन चंद मनिंद निहारे। चख चकोर तबि भए बिचारे[5] ।।४५।।

सतिगुरु सूरज दरशन जोवा। रिद अरबिंद प्रफुल्यति होवा[6]।
साधनि[7] साधति सिधि लै जैसे। धरि अनंद को बैठ्यो तैसे ।।४६।।
(रा० ११ : ७)

(बुलाकीदास की माता की भक्ति भावना)

धूप दीप पूजा नित करै। दरशन आस ध्यान पुन धरै।
आरबला[8] मम भई बितीत। नित प्रति वधहि गुरू पग प्रीति ।।३७।।

करुना करि गुर मम घर आवैं। इस प्रयंक[9] पर बैठि सुहावैं।
पहिरहिं पोशिश[10] को मम हाथ। करहि अहार इहां गुर नाथ ।।३८।।

लखि करि गमने अंतरजामी। लीनसि तिस घर को मग स्वामी।
जाइ ठांढि होए तिस पौर[11]। सुधि भेजी अंतर जिस ठौर ।।३९।।

हरिबराइ सुनि तूरन[12] आई। चरन कमल गहि करि लपटाई।
'आज घरी पर मैं बलिहारी। जिस ते पुरवी[13] आस हमारी ।।४०।।

तिस प्रयंक पर आनि बिठाए। हरखति चारु बसत्र निकसाए।
अपने कर ते करे बनावनि। प्रेम सहित सो किय पहिरावन ।।४१।।

---

१. लालिमा। २. नेत्रों के पलक नहीं झपके। ३. भारी। ४. प्रेम। ५. चंद्रमा समान गुरु जी को देखकर उसके नेत्र चकोर जैसे हो गये। ६. सूर्य के समान गुरु जी को देखकर हृदय कमल की भांति खिल गया। ७. साधना करके जैसे साधु सिद्धि प्राप्त कर ले। ८. आयु। ९. पलंग। १०. पोशाक—वस्त्र। ११. द्वार। १२. शीघ्र। १३. पूर्ण हुई।

धूप दीप नईबेद सुधारा। करि पूजन सतिगुरू उदारा।
तबि सो बिरधा भई निहाल। पुर्यो मनोरथ गुरू क्रिपाल ।।४२।।

भई प्रेम ते गद गद बानी। नहिं उसतति मुख जाइ बखानी।
नेत्रनि जल अनंद भरि आवा। हरखति रंक मनहुं धन[1] पावा ।।४३।।

जथा चंद को पिखहि चकोर। इक टक देखति गुर पग ओर।
क्रिपा निधान प्रेम तिस हेरा। उमड्यो इनके प्रेम घनेरा ।।४४।।

श्री मुख ते कहि मधुर सुनावहु। तव कारन मैं इस थल आयहु।
तोहि प्रेम मेरे मन भायहु। भाउ बिलोकनि को ललचायहु ।।४५।।
(रा० १२ : ४)

---

१. ऐसे प्रसन्न हुई जैसे रंक धन पाकर होता है।

युद्ध वर्णन

(ललावेग युद्ध)

रसावल छंद

गुरू सूर दौरे। करे शत्रु बौरे[1]।
कछू नांहिं सूझै। लगै शशत्र जुझैं ॥१३॥

थके पंथ मांहीं। भई नींद नाहीं।
किते भूख भारे। छुधा ना निवारे ॥१४॥

परै भूर पारा। न जाइ संभारा।
गुरू की रजाए। समीरं चलाए ॥१५॥

महा सीत ब्यापे। बड़े शत्रु कांपे।
जुटे दंत बोलैं। मसें हाथ खोलैं ॥१६॥

किती देर लागे। तफंगानि त्यागे[2]।
कर्यो जोध हल्ला। नहीं जाइ झल्ला[3] ॥१७॥

लखे शत्रु हारे। मिले बीर भारे।
करे खग्ग[4] नंगे। जिनैं बाढ चंगे ॥१८॥

दोहरा

द्वै हजार गुर सैन तबि हेरि सुगम ही जंग।
खडग निकासे म्यान ते तुरकनि हते निसंग ॥२६॥

---

१. अर्थात् शत्रुओं के छक्के छुड़ा दिए। २. बंदूक चलाते। ३. सहारा न गया। ४. (तलवार की) धार।

रसावल

क्रिपानैं चलाई। सु लोहू चखाई।
कटैं शत्रु अंगा। भई लाल रंगा ॥२७॥

पलावैं तुरंगा। मिलैं शत्रु संगा।
पिखैं सो संभारैं[1]। नहीं ओज धारैं ॥२७॥

ठरे हाथ भारे। न जाहीं उभारे।
कहां वार ओटैं[2]। करै कौन चोटैं ॥२६॥

मरैं मूढ मारे। क्रिपानं प्रहारे।
किनूं तीर छोरे। रिदै शत्रु फोरे ॥३०॥

किनूं फेरि नेज़ा। परोयो करेजा।
हलाहाल माची। लहू धूल राची[3] ॥३१॥

गिरे अंग भंगे। समूहं तुरंगे।
किते 'हाइ' बोलैं। किते छूछ डोलैं ॥३२॥

दोहरा

इक इक गुर के सूरमें पंच कि सपत संघारि[4]।
करे निबेरन तुरक गन जिम खाती बढि दार[5] ॥३३॥

(रा० ७ : ४५)

कटैं शत्रु अंगा। किसु सीस भंगा।
कट्यो हाथ काहूं। गिरैं भूम माहूं ॥२६॥

किसू जंघ काटैं। असी श्रोण चाटैं[6]।
कटे कंध कां के[7]। करे दोइ फांके[8] ॥२७॥

तुरंगान भंगा। चढैं खग्ग संगा।
भए रुंड मुंडा। कटे कांहु तुंडा ॥२८॥

प्रचंडैं घुमंडैं। करे खंड खंडैं।
पिछारी[9] तमांचा। हत्यो बीर राचा[10] ॥२६॥

खरे सावधाने। जबै शत्रु जाने।
हतैं ताहिं गोरी। कि खग्गं सज़ोरी[11] ॥३३॥

---

१. (तुरक) देखकर संभालते हैं। २. वार का बचावा कैसे करें। ३. खून धूल में मिल गया। ४. मारे। ५. तुरकों को ऐसे काटा जैसे बढ़ई लकड़ियों को काटता है। ६. तलवारें रक्त चाटने लगीं। ७. किसी के। ८. दो फांकें—दो हिस्से। ९. पीछे से। १०. वीर रस में रच कर। ११. ज़ोर के साथ।

भए मूढ अंधे। मनो काल फंधे।
जहां जाहि भै ते। तहां होइं छै ते ॥३४॥
मरे आप मांही। बचैं प्रान नांही।
भई घोर राती[1]। करी भूमि राती[2] ॥२५॥
परे सूर घोरा[3]। भयो खेत घोरा[4]।
कराहैं बिसाला। जिन्हैं घाव घाला[5] ॥३६॥
(रा० ७ : ४६)

निसानी

बीस रु पंच सहस्र दल तम महिं इम नाशा।
जिम तम को सूरज हत्यो करि दीनि प्रकाशा।
जिम उडगन सगरे दुरे[6] नहिं देहिं दिखाई।
तिम तुरकाना छपि गयो, जिन धूम मचाई ॥२॥

बड़ी नींद सुपते परे रण खेत मझारा।
दीरघ मग ते थकति भे जनु श्रम निरवारा।
गिरे तुरंग तुरंग पर धर पर धर[7] ब्रिंदा।
शसत्र बसत्र बिखरे परे जनु बीज बिलंदा ॥३॥

आमिष श्रोणति छूटति बहु बहि चाल्यो सारे।
रुण बरण की चूनरी अवनी जनु धारे।
पंछी उड़ चहुं दिशा ते, बाइस, ग्रिझ[8] आए।
कंक[9] आदि आमिष[10] भखी भरमहिं समुदाए ॥१६॥

जंबुक[11] त्रिपति पुकारते खायो मन भायो।
मनहुं असीसां देति गुर लखि-हम त्रिपतायो।
लला बेग बिसम्यो पिखति चहुं दिशि भय माना।
'या खुदाई इह क्या भयो' किम लशकर हाना[12] ॥१७॥
(रा० ७ : ४७)

दोहरा

सिर ते कंचन खोद जबि पगीआ सहित गिराइ।
नगन मूंड मूंड्यो हुतो पिखि सभि गे बिसमाइ ॥१॥

---

१. रात। २. लाल। ३. घोड़ा। ४. घोर युद्ध। ५. जख्म (घाव) खाया। ६. छिपे। ७. धड़। ८. गिद्ध। ९. स्फेद चील। १०. मांस। ११. गीदड़। १२. सेना मारी गई।

निसानी

इति उत सगरे हलचले कुछ त्रास उपंना।
ललाबेग लज्जति भयो मानहुं मन हन्ना।
कट को पट झटपट ठट्यो लटपटा लपेटा[1]।
झपट बाग दबट्यो तुरंग, सटक्यो मुगलेटा[2] ॥२॥

कुप्यो बिलोचन रकत करि कहि भुजा उठाए।
क्यों न करति हेला अबहि मारहु समुदाए।
इक इक छोरि तुफंग को खैंचहु खर खंडे।
करति चलहु सिर धर जुदे हय बेग प्रचंडे[3] ॥३॥

सुनि आइसु को तुरक भट बड मुगल रिसाए[4]।
मुंडति मुंड बिलंद जिन बड शसत्र उठाए।
क्योहूं अटकी पाग सिर टेढी नित धारे।
ज़रीदार बड छोर को प्रिशटी तक[5] डारे ॥४॥

आमिष भक्खी[6] अधिक ही बहु करहिं अहारे।
सुरापान को प्रेम बड मानी मतवारे।
गौर बरण सभि के अहैं सूखम पट सेता।
बहुते रखहिं कमान को सर हतने हेता[7] ॥५॥

किस किस निकटि तुफंग है, किह तोमर धारा।
किन किन लीनहु म्यान ते करवार दुधारा।
जमधर फेंटन[8] सभिनि के बोलति निज बोली।
कर्यो नेर गुर सैन सों छूटति सर गोली ॥६॥

दुती पठाननि की चमूं बड ओरड आई।
बड़े बहादुर की जिनहुं सभि दें बड़िआई।
छोरति ब्रिंद तुफंग को चहिं मेल दुहेला[9]।
'मारि मारि' बक 'हाइ हुह' कीनसि बड़ हेला ॥७॥

इति सतिगुर करि शीघ्रता ढिग जोध हकारा।
अरध चमूं निज संग लै हूजहि अबि न्यारा।

---

१. कमर में बंधा वस्त्र खोल कर लटपटा सिर पर बांध लिया (ललाबेग ने)। २. मुगल बच्चा (ललाबेग) वहां से टल गया। ३. घोड़े की चाल तेज करो। ४. क्रोधित हुए। ५. पीठ तक। ६. माँस-भक्षी। ७. तीर छोड़ने के लिए। ८. कमरबंद में कटार है। ९. मुठभेड़ करना चाहते हैं।

हम सनमुख इस लारहिंगे झालहिं बड हेला[1] ।
दक्खन दिशि ते तुम परहु दे रेलु रु पेला ॥८॥

सुनि श्री हरिगोबिंद ते भट जोध बखाना ।
'तुम प्रताप सूरज उद्‌यो' तुरकनि तम हाना[2] ।
कहां शकति इन म्रिगनि गन गजराज बडेरे[3] ।
केहरि के सनमुख अरहिं हुइ सकहिं न नेरे[4] ॥९॥

कहि कहि चरन सरोज को म्रिदु चारु बिलोका ।
बंदनीय बंदति भयो घोरा पुन रोका ।
द्वै सहस्र कुछ नून भट ले करि हुइ न्यारो ।
चढ्‌यो बरोबर रिपुनि के मारति ललकारो ॥१०॥

रसावल

भयो नेर सैना । कुपे लाल नैना ।
तुफंगानि छोरी । परी मार गोरी ॥११॥

हलाहाल होई । भई सूर ढोई ।
मचे बीर धीरा । चले खग्ग तीरा ॥१२॥

तुरंगानि मेला । भयो भूर हेला ।
मच्यो रौर भारी । बकैं 'मार मारी' ॥१३॥

किनूं मारि नेजा । करी भूम सेजा[5] ।
कि सारी[6] संभारी । सु ऊचे उभारी ॥१४॥

लगैं बीर देही । सुता नाग जेही ।
चले तीर तीखे । बिखीचै सरीखै[7] ॥१५॥

परैं पार अंगा । गिरैं प्रान भंगा ।
किनूं छोरि गोरी । रिपू देहि फोरी ॥१६॥

किनूं फेरि घोरा । गहे खग्ग घोरा ।
कटे कंध गेरे । धका धक्क भेरे ॥१७॥

कट्यो मुंड कांहू । परे भूम मांहू ।
कटे पाइ हाथा । त्रिखी[8] तेग साथा ॥१८॥

---

१. बड़े हमले को सहेंगे । २. आपका प्रताप रूपी सूर्य उदित हुआ है, वह तुरकों रूपी अंधकार को नष्ट करेगा । ३. तुरक मृगों और हाथियों के समान हैं, आप सिंह समान, इनमें कहां शक्ति है कि सिंह के निकट आ सकें । ४. निकट । ५. भूमि पर सेज बनाना (मृत होकर गिरना) । ६. तलवार । ७. सर्प जैसे । ८. तीक्ष्ण ।

किसी तुंड खंडा[1]। लगैं दीह खंडा।
भए छिन्न भिन्ना। किसी भै उपन्ना ॥१९॥

दुहूं ओर भारे। जुझाऊ नगारे।
बजे और बाजे। सुनैं सूर गाजैं ॥२१॥

जुटे आप मांहीं। फिरें फेर नांही।
तुफंगैं तड़ाकैं। सु गोरी सडाकैं ॥२२॥

लगै मुंड छंडी। मनो फूट हंडी[2]।
कटी बाहु कोई। परी तीर डोई[3] ॥२३॥

बही मीझ सेता। कढी खान हेता[4]।
तहां प्रेत भारे। मनो सूपकारे[5] ॥२४॥

रसोइ बनावैं। किते बैठि खावैं।
कपालैं[6] बिसालैं। लहू पान वालैं ॥२५॥

खिचैं आंत्र कोई। गरे पाइ सोई।
मनो फूल माला। भले डालि चाला ॥२६॥

भखैं मास फारें। अघावैं डकारें।
मिले स्याल[7] ब्रिंदा। सु खावैं बिलंदा ॥२७॥

घनी जोगनीआं। महां मोद कीआ।
भरें खप्प्र लोहू। करें पान ओहू ॥२८॥

फिरें हूर गैनं[8]। सुधारे सु नैनं।
मरे कोप धारी। बरैं ओप भारी[9] ॥२९॥

चढावैं बिमाना। करैं अग्र गाना।
घनो मान ठानैं। रिझावैं महानैं ॥३०॥

चले तीर सीधे। बड़े बीर बीधे।
भयो देखि हल्ला। रणं खेत मल्ला ॥३५॥

गुरु चांप लीना। कठोरैं जु पीना।
सरं जोरि छोरे। रिदै शत्रु फोरे ॥३६॥

---

१. मुँह काट दिया। २. गोली लग कर सिर फूटता है मानो हांडी फूटती है। ३. कड़छी की तरह पड़ी है। ४. स्फेद चरबी पड़ी है, जैसे कढ़ी खाने के लिए पड़ी हो। ५. मानो रसोईये हैं। ६. खोपड़ियां। ७. गीदड। ८. हूरें आकाश में फिरती हैं। ९. भारी उपमाओं वाले शूरवीरों को वरती हैं।

बधै जौन आगे। तिसै बान लागे।
परै पार तांहूं। लगै और मांहूं ।।३७।।

दुति बेधि जावै। त्रिती फेर घावै।
लगै चौथ जाई। करै पंच घाई ।।३८।।

इसी रीति मारे। सु तीरं करारे[1]।
उडें नाग मानो। करैं शत्रु हानो ।।३९।।

गुरू कोप धारा। तजी तीर धारा।
दडादाड गेरे। कराहैं घनेरे ।।४०।।

तजे प्रान डारे। सु पैरं पसारे।
बमैं[2] श्रोण तेई। रिदै फूट जेई ।।४१।।

परे धूल मांही। जमं धाम जाहीं।
गुरू लाल नैनं। कहे ऊच बैनं ।।४२।।

करो दुशट नाशं। हतो जीत आसं[3]।
नहीं जानि दीजै। इहां गेर लीजै ।।४३।।

कर्यो बाक जोई। सुन्यो सूर सोई।
मनो ओज दीने। सवाधान[4] कीने ।।४४।।

खिचे खड्ग खंडे। दुधारे प्रचंडे।
कुदावैं तुरंगं। कटैं शत्रु अंगं ।।४५।।

नहीं जान देते। रखैं जंग खेते।
ललावेग धायो। सु चाहै हलायो ।।४६।।

'पलावैं अगारी'। कर्यो जोर भारी।
परे हूह दै कै। नगारे बजै कै ।।४७।।

गुरू फेरि घोरा[5]। तजैं तीर घोरा[6]।
बिधैं पांच साता। परैं प्रान घाता[7] ।।४८।।

पर्यो खेत भारी। करे मार मारी।
गिरे शसत्र लागे। नहीं पैर भागे ।।५०।।

---

१. तीखे। २. उगलते हैं। ३. शत्रुओं को जीत की आशा की नष्ट करो। ४. सावधान। ५. घोड़ा। ६. घोर—प्रचंड। ७. प्राण नाश करके।

खरे प्रान त्यागे। लहू रंग पागे।
भए लाल बागे। तऊ कोप जागे ॥५१॥

तछामुच्छ होई। कटी बांहि दोई।
किसू पाइं काटे। कटे सीस साटे[1] ॥५२॥

गुरू जुद्ध कीना। रणं रंग भीना।
उतैं जोध जोधा। पर्यो आई क्रोधा ॥५३॥

खचा खच्च खंडे। चलाए प्रचंडे।
कटे मुंड तुंडे। भए खंड खंडे ॥५४॥

गनं अंग भंगे। सु डारी तुफंगे।
जम्यो श्रोण मुशटं। हते ब्रिंद दुशटं ॥५५॥

दुपासे लराई। सु मारं मचाई।
फिरैं शत्रु दौरे। मनो होइ बौरे ॥५६॥

महां धूम माची। लहू धूलि राची।
भयो लाल गारा। भजैहैं मझारा[2] ॥५७॥

ललाबेग जोरा। कर्यो है न थोरा।
तऊ राखि खेतं। गुरू ह्वै सुचेतं ॥५८॥

रिपू हालि चाले। मरे ह्वै बिसाले।
गुरू तीर मारैं। करैं एक वारैं ॥६०॥

अनेकानि घावैं। गिरे प्रान जावैं।
इमं मार कीनी। भए सैन हीनी ॥६१॥

झटा झट्ट बाहैं[3]। कटैं अंग लाहैं।
गिरे बीर घोरा। भई भूमि घोरा ॥६२॥

दोहरा

कहां लगे बरनन करौं माच्यो जिम घमसान।
हानि भई तुरकान की, पाछे हटे निदान[4] ॥६३॥
संभारे सूरा सरब इक सहस्र हय संग[5]।
नौ सहस्र रण खेत महिं को तरफंति को भंग ॥६४॥

---

१. कहीं कटे हुए सिर पड़े हैं। २. (गारे के) बीच में से दौड़ते हैं। ३. चलाते हैं। ४. अन्त में। ५. एक हजार घोड़ों सहित (बचे)।

इक सहस्त्र गुर सूरमे मरे करति बड जंग।
जनम मरन बंधन महां अंग संग सो भंग ।।६५।।

सरब गरब तुरकनि हर्यो ऐसी मार मचाइ।
सरब शकति धरि सतिगुरू करहिं जथा मन भाइ ।।६६।।

(रा० ७ : ४८)

* * *

(काबलबेग वध)

तोटक

कहि काबलबेग गुरू सुनीए। भट नाहक आन नहीं हनीए।
तुम पीर सु लोक उबाचति हैं। चित वांछति को सभि जाचति[1] है ।।२६।।
रण[2] दुंद इहां अबि मांगति हौं। तुम सों लरिबो अनुरागति हौं।
इहु कामन पूरन मोर करो। इत होइ जुदे मुझ संग लरो ।।२७।।
थिर होइ बिलोकन लोक करैं। तबि लौ पखबाद न बीर धरैं।
सुनि श्री हरिगोविंद शत्रु गिरा। बडि बीर बहादुर कोप करा ।।२८।।
हम त्यार खरे चित्त चाहति हैं। तुरकानिपनो सभि गाहति है[3]।
अरि को न अरै[4] बल को न धरैं। रण हेरति कातुर भाज धरैं ।।२९।।
समुहाइ थिरे नहिं धीर धरी। जिम होति बधू नव लाज भरी।
हथ्यार दिखावन हेति धरे। मरि क्रूर[5] गए नहिं अग्र अरे ।।३०।।
तुव साध अहै[6] अस बाक कह्यो[7]। सभि सैन बिखै इक वीर लह्यो।
हमरी चित चाहि पुजावन को। अबि आइ करो मन भावन को ।।३१।।
सुनि काबलबेग बडो हरख्यो। गुर बीर बहादुर को परख्यो।
तजि देहु तुरंगम भूम थिरो[8]। गहि ढाल क्रिपाननि वार करो ।।३२।।
गुर श्री हरिगोबिंद बीर महां। उतरे हय ते ततकाल तहां।
कर बाम बिखै गहि ढाल लई। उतसाह बड़ो चित चाहु जई[9] ।।३३।।
अविलोकति काबलबेग जबै। तजि दीन तुरंगम तेज़ तबै।
जुग ओरनि के भट ब्रिंद थिरे। हथ्यार प्रहार न कोई करे ।।३४।।

---

१. मनोकामना पूरी करने वाले। २. मैं तुम से द्वन्द्व युद्ध करना चाहता हूं। ३. तुरकपन पचहानते हैं या तुरकान-पना नष्ट करेंगे। ४. शत्रु कोई अड़ नहीं सकता। ५. कायर या दुष्ट। ६. तुझे धन्य है—शाबाश हो। ७. जो ऐसे शब्द कहे। ८. घोड़ा छोड़ कर ज़मीन पर आओ। ९. चित्त में जीत की चाह है।

करि शीघ्र सु फांदति ओज धरे। इत ऊत फिर्यो हुइ अग्र खरे।
तिम श्री गुर चंचलता करिकै। करि दाव फिरैं असि को धरिकै[1] ।।४१।।

कबि संमुख होइ तकावति हैं। चहिं मारन आप बचावति हैं।
सम दोनहुं दाव बिचारति हैं। उछलंति महां पग धारति हैं[2] ।।४२।।

गुरवाक कह्यो, करि वार पुरा[3]। नतु ह्वै पछुतावन—नांहि करा।
मम वार चले नहिं बाचहिंगो। रज श्रोणति दीरघ राचहिंगो।।४३।।

तबि काबलबेग शिताव करे। इत ऊतहिं फांदति वार करे।
गुर छार करी[4] सु बचाइ गए। जबि छूछ पर्यो तबि क्रोध भए[5] ।।४४।।

करि नेर बहोर प्रहार कर्यो। नट के सम फांदति बेग धर्यो।
पुन ढालि सु ऊपर रोकि लयो। गुर आपनि वार प्रहार कियो।।४५।।

तन नम्रित भूतल साथ छुयो[6]। लुघता करि दाव बचाइ गयो।
करवार उभारति वार कर्यो[7]। तिरछी सु तिछी हति मान भर्यो[8] ।।४६।।

बहु शीघ्र करे सु बचाइ रहे। पिपला खग अग्र सरीर छुहे[9]।
छुटि श्रोण बह्यो गुर चीर भिगे। पिखि घाव लग्यो उर कोप जगे।।४७।।

भभकार परे सम शेर तबै[10]। चमकै शमशेर[11] बिलोकि सबै।
करि ढाल सु अग्र दबाइ लयो। करि शीघ्र तऊ भजि दूर भयो।।४८।।

पिखि बेगललादिक[12] साध कह्यो। करि घात, किधौं गुर लेहु गह्यो[13]।
नहिं जानति मूढ खिलावति हैं[14]। क्रित मानव की मन भावति हैं।।४९।।

चपलंति चल्यो पुन नेर कियो। लघुता दरसाइ हंकार हियो।
प्रथमैं सम चाहति वार करौं। धर द्वै करिकै धर पै सु धरौं[15] ।।५०।।

करवार संभारि उभारि महां। तकि वार प्रहारनि बेग लहा[16]।
गुर अग्र भए बिन त्रास तबै। दिश दोइनि के भट ठाँढि सबै।।५१।।

रिपु ढालहिं ढाल भिराइ दई। करि ऊच उभारति शीघ्र लई[17]।
बहु काबलबेग बचाई रह्यो। बल साथ क्रिपान महान बह्यो।।५२।।

---

१. तलवार पकड़ कर। २. बहुत उछल कर पैर रखते हैं। ३. पहले। ४. छलांग लगा कर। ५. वार खाली पड़ा तो (काबल बेग) क्रोधित हुआ। ६. नीचे होकर पृथ्वी के साथ स्पर्श किया (काबलबेग)। ७. तलवार उठाकर वार किया। ८. अहंकार में भरे हुए ने टेढ़ी और तीखी मारी। ९. तलवार की नोक (गुरु जी के) जामे की आसतीन के निकट शरीर को छू गई। १०. सिंह की भांति भभक कर पड़े। ११. तलवार या सिंह समान। १२. जब वह शीघ्र से बच कर दूर हो गया तो उसकी वीरता को देखकर ललाबेग आदि ने कहा, साधु-साधु—शाबाश। १३. गुरु को पकड़ लो या मार दो। १४. मूर्ख यह नहीं जानते थे कि गुरु जी इसे खिला रहे हैं। १५. धड़ को दो टुकड़े करके धरती पर धरूं। १६. प्रहार करना चाहा। १७. (क्रिपाण) जल्दी से ऊपर उभार ली।

लगि तुंग सिकंधहि[1] चीर दयो। अटक्यो न कहूं चलि पार भयो।
जिम होति जनेऊ पर्यो गर मैं। तिम दो धर होइ गिर्यो धर मैं ।।५३।।

भट जोध सु आदि निहारति हैं। गुर जैं गुर जैति उचारति हैं।
लखि कौतक आनंद धारति हैं। उतसाहि करे ललकारति हैं ।।५४।।
(रा० ७ : ४९)

* * *

(शमसबेग वध)

पाधड़ी छन्द

उत जाती मलक रिसाइ धाइ। जहिं शमसबेग तहिं अग्र जाइ।
खैंची कमान मारे खतंग। लगि गए पार भे फोर अंग ।।२६।।

चरडंति चाप, मुकतंति तीर[2]। खरडंति खोल, भरडंति भीरु।
ढरडंति ढाल[3] सडकंति[4] तेग। छुटकंति लहू, दरडंत बेगि ।।२७।।

थहिरंति[5] मरति, महिरंति भाग[6]। बहिकंति[7] खडग जिन श्रोण लागि।
इम मची मार घमसान घालि। बहु गिरति बीर अरु तुरंग जाल ।।२८।।

ढुकि नेर मलक जाती रिसाइ। पिखि शमसबेग के घाल घाइ।
करि ढाल अग्र निज को बचाइ। हुइ गयो दूर बाज़ी धवाइ[8] ।।२९।।

तबि अपनि आप को बल संभाल। बलवान बाज ते करि उताल।
ढिग भयो आइ करि खडग नंगि। कर को उभारि बड़ बेग संग ।।३०।।

कीनो प्रहार तन सुभट बिप्र। रण चतुर हाथ धरि सिपर[9] छिप्र।
लीनसि बचाइ आपन सरीर। उर भयो कोप बिन त्रास धीर ।।३१।।

अति निकटि तुरंग लरि आप मांहि[10]। दिज को[11] बिलंद अरु थकिय[12] नांहि।
हटि तुरत पछंडा मारि दीनि। हय बली तुरक को थकति कीनि ।।३२।।

लगि शमसबेग की जांघ चोट। करि रह्यो जतन हुइ कहां ओट।
दिज शीघ्र धारि हय ताड फेर। पुन कर्यो आनि करि तुरक नेर ।।३३।।

मार्यो क्रिपान लगि कंठ घाइ[13]। सिर पर्यो जाइ भू पर लुठाइ।
जिम पक्यो होइ फल डाल संग। तिस हतहिं लशटका गिरहि भंग ।।३४।।

---

१. ऊंचा कंधा। २. छोड़ते हैं। ३. नीचे ऊपर करके घुमाना। ४. चलती है। ५. कांप कर मरते हैं। ६. जो डरते हैं, भागते हैं। ७. चमकती हैं। ८. घोड़े को दौड़ा कर। ९. ढाल। १० घोड़े बहुत निकट होकर आपस में लड़ पड़े। ११. दिज (जाती मलक) का (घोड़ा)। १२. थका हुआ नहीं था। १३. घाव।

धर[1] सहति तुरंग आगे चलंति। पग फसे रकाबन महिं गिरंति।
जबि चल्यो अग्र तर लटक आइ[2]। तिभक्यो[3] तुरंग करि वेग धाइ ॥३५॥

ज्यों ज्यों चलंति ऐंच्यो सु जाइ। त्यों त्यों त्रसंति सबदु जु उठाइ।
नहिं टिकहि कितहुं भाज्यो फिरंति। धर को घसीट अतिशै डरंति[4] ॥३६॥

सभि सैन बिखै इत उत सु जाइ। जहिं ललाबेग लरि कशट पाइ।
घोरा पछानि धर लटक देखि। मरि गयो जानि, शोकति बिशेख ॥३७॥

सुनि ललाबेग के शोक भार। परवार मोर नर भे संहार[5]।
जानी न रीति इम मोहि होइ। लरिबे फरेशते संग जोइ ॥४०॥
(रा० ७ : ५२)

* * *

(ललाबेग-वध)

दोहरा

रोदति शोकति हेरि करि हुतो मुसाहिब पास।
गुलखां नाम पठान को बोल्यो सुमति प्रकाश ॥१॥

भुजंग छन्द

[6]ललाबेग ! शोकं न कीजै सुजाना। समो जंग को जानि लीजै महांना।
फते होइ कै हार एको सु पावै। लरैं बीर सारे इही रीति भावै ॥२॥

तजै जंग जोधा बुरी बात होवै। दुहूं लोक को मोद तारीफ[7] खोवै।
बडे आप दाना[8], कहै कौन स्यानो। भली बात जेति सभै बुद्धि जानो ॥३॥

हजो न करैं तोहि तारीफ सारे। रखो लाज आछै, करो नांहि टारे।
गुलंखान के बैन जाने सुजाने। ललाबेग ने शोक त्याग्यो महांने ॥५॥

कर्यो ओतसाहं[9] रिदै धीर धारै। गुरु संग चाहै भिरों जंग भारे।
हुतो फैज़खां पास दीनी दलेरी। अहैं प्राण जौ लौ सुनो बात मेरी ॥६॥

---

१. धड़ समेत। २. घोड़ा आगे चला तो धड़ नीचे लटक गया। ३. तिभक जाना—शोर सुनकर घोड़े का घबरा कर भागना। ४. धड़ लटकता देख कर और शब्द सुन कर घोड़ा और डरता और तेज़ी से इधर-उधर भागता है। युद्ध-भूमि का यह दृश्य कितना स्वाभाविक और सजीव है। ५. मेरे परिवार के पुरुष मर गए हैं। ६. शत्रुपक्ष के वीरों की वीरता, साहस और उत्साह का कितना भव्य चित्रण है। वीरता का यही आदर्श होता है। शत्रु पक्ष के योद्धाओं की ऐसी आदर्श वीरता का प्रदर्शन करना, संतोखसिंह की विशेषता है। भूषण आदि ने कहीं भी शत्रु-पक्ष के वीरों का ऐसा चरित्र प्रकट नहीं किया। ७. यश। ८. बुद्धिमान। ९. उत्साह।

[1]गुरू को गहैं कै हतैं शसत्र मारैं। तबै शाहु के पास आपा दिखारैं।
नहीं तो इहां बीर खेतं मझारा। सरीरं तजैंगे सहैं खग्ग धारा ॥७॥

इही बात आछी ललाबेग मानी। चल्यो सामुहे जंग के हेतु मानी।
बजै संग धौंसा जुझाऊ बडेरा। लरै बेरि दो चाव ठानै घनेरा ॥८॥

हका हाक[2] बाजी, लखै प्रान अंता। न जान्यो परै आज कोऊ बचंता।
भए सामुहे तुंद ताजी[3] कुदाए। गहे शसत्र तीखे तुफंगं चलाए ॥९॥

किनूं चांप लीने सु बानं संधाने[4]। धरे दीह[5] नेजे कि सांगं महाने।
कर्यो हेल[6], मेल्यो भटं शोर भारो। नहीं जानि दीजै गहों कै प्रहारों[7] ॥१०॥

दुहूं ओर ते भेड माच्यो दुहेला[8]। सटासाट सेले भई रेल पेला[9]।
चले तीर तीखे लगे अंग गाढे। छुटे श्रोण चाल्यो महां रोस बाढे ॥१२॥

बिधीचंद चाहै वरौं शत्रु मद्धं। बधौं एक बारी करौं जुद्ध सुद्धं।
गुरू जी निवार्यो[10] उचार्यो थिरीजै[11]। लगे घाव अंगं श्रमं जानि लीजै ॥१७॥

अबै अंत को जुद्ध देखो हमारा। ललाबेग के साथ खग्गं प्रहारा।
जिती शाहु की सैन जोधा कहावै। मचै मार ऐसी नहीं शेष[12] पावै ॥१८॥

बिधी जोध दोनो कह्यो नंम्रि ह्वै कै। समं[13] आपके कौन ह्वै है अरै कै।
नहीं देव दैंतानि मैं बीर कोइ। कहां बापुरे[14] मानुषा जून जोई ॥१९॥

कहो एक वारं त्रिलोकी बिनासो। रचो फेर तैसे, करै मूढ सांसो[15]।
इतो बोलते आप मांही क्रिपाला। इते बीर आए महां ज़ोर घाला[16] ॥२०॥

तुफंगानि तीरानि नेजानि संगा। महां कोप धारे करे घाव अंगा।
गिरे बीर मारे हलाहाल होई। पर्यो हेल घाल्यो मिट्यो नांहि कोई ॥२१॥

गुरू जानि लीनी, तजे प्रान सारे। लयो चांप गाढो त्रिखे तीर मारे।
बिधे ब्रिंद बैरी परे जाइ भूमैं। इको, दोइ, तीजो हते, कोइ झूमै[17] ॥२२॥

भयो टोल आगे रिपू सामुहाए। ललाबेग देखे गुरू आप आए।
चहौं चित्त जोऊ भई बात सोई। अबै जंग मेरो गुरू-संग होई ॥२३॥

---

१. यहां भी शत्रुपक्ष के योद्धाओं का वीर-चरित्र दिखाया है, स्वामी भक्ति भी। २. शोर मचा। ३. अरबी घोड़े। ४. तीर संधे (संधान किया)। ५. भारी। ६. हल्ला। ७. युद्ध-भूमि में (वीरों की उत्साहपूर्ण गर्वोक्तियां)—जाने न दो, पकड़ लो, या मार दो। ८. कठिन, भयंकर। ९. धक्का धक्की। १०. मना किया। ११. ठहरो। १२. बच न पाए। १३. बराबर। १४. बेचारे। १५. संशय, मूर्ख ही इसमें सन्देह करेगा। १६. ज़ोर पड़ गया। १७. घाव खा कर लोटपोट हो रहा हो।

भयो टोल आगे गुरु ज्यों निहारे। तके तीर तीखे धनु ऐंच मारे।
हयं अंग बोधो लगे घाव जाई। छुट्यो श्रोण ब्रिंदं सु धारा चलाई ।।२४।।

सुहेला पिख्यो घाव लागे घनेरे। रिदे रोस जाग्यो गुरू के बडेरे।
जिन्हों अग्र चौरे खतंग[1] निकासे। कुदंड[2] संधाने बिखी[3] से प्रकाशे ।।२५।।

कर्यो जोर घोरं लग्यो कान हाथं[4]। ललाबेग सौंहे तज्यो बेग साथं।
चल्यो क्रोध ते शूक बानं महाना। उड्यो पंख धारे फनी[5] के समाना ।।२६।।

लग्यो भाल मैं तातकालं प्रवेशा। ललाबेग घोरा बली जो विशेशा।
घनो दीन मोलं चलाकं बडेरा। पिछारी निकास्यो पर्यो पार फेरा ।।२७।।

गड्यो जाइ भू मैं, स लोहू सुरंगा। गिर्यो शीघ्र घोरा सजै जीन[6] चंगा।
ललाबेग ने बेग ते त्यागि दीना। महां क्रोध ते तीर त्यागे प्रबीना ।।२८।।

सुहेला अमोला तकै तांहि मारै। दयो बीध आगे शिताबी[7] प्रहारै।
रिदे भाल मैं[8] तीर लागे घनेरे। गिर्यो जंग खेतं हत्यो तांहि बेरे ।।२९।।

बड़े भाग जांके गुरू अंग संगे। मिले सो रहे, प्रान त्यागे तुरंगे।
गयो देवलोकं तजे शोक मोहं। नहीं फेर फेरी जगं बीच होहं ।।३०।।

बिधीचंद शीघ्रं कह्यो होहिं नेरे। चढो और घोरे प्रभू याहि बेरे[9]।
गुरू धरम जुद्धं बिचार्यो उचारे[10]। खरो अग्र बैरी हयं तांहि मारे ।।३१।।

नहीं और लीनो, प्रिथी बीच ठांढो। अहै संमुखं जंग को चाव बाढो।
तथा जानि मोही अरूढं न घोरै। अबै जंग खग्गं करैं भेर घोरै[11] ।।३२।।

कह्यो बाक ऐसो, भए फेर सौहैं[12]। कराचोल ऐंच्यो[13] करी बंक भौहैं।
ललाबेग के अग्र आयो पठाना। महां कोप ते संग ताके बखाना[14] ।।३३।।

गुरू और मोरे[15] न बीचं परीजै। टरो आन थानं मरीजै कि जीजै।
इनौ संग जंगं करों आप आछा। मरौं कै संहारों, नहीं आन बांछा ।।३४।।

किधौं शाहु के बाज लै के चलैंगे। किधौं प्रान दै संग धूली मिलैंगे।
खरो दूर ह्वै कै तमाशो पिखीजै। किधौं और जोधानि सों जुद्ध कीजै[16]।।३५।।

---

१. तीर। २. धनुष में चढ़ाए। ३. सर्प जैसे। ४. कानों तक (खींच कर) हाथ जा लगा। ५. सर्प। ६. काठी। ७. शीघ्र। ८. माथे और हृदय में (छाती में)। ९. इस समय। १०. धर्म युद्ध करना चाहिए, यह विचार कर गुरु जी ने कहा। ११. युद्ध में खड्ग की भयानक भेड (मुठ भेड़) करेंगे। १२. सामने। १३. तलवार खींची। १४. (ललाबेग ने) कहा। १५. मेरे। १६. वीरों की गर्वोक्तियों—उनकी वीरता की परिचायक।

तिसी रीति सारे गुरू जी हटाए। मच्यो दुंद जुद्धं क्रिपानं चलाए।
कबै नेर ढुकैं कबै दूर होवैं। दुहूं बीर बांके हतैं घात जोवैं ॥३६॥

दुहूं कीरती चाहिं, चौंपे जुभारे। दुहूं सेन के सूर स्वामी उदारे।
बिजै बांछि दोऊ रसं बीर भीने। दुहूं शसत्र बिद्या कमाई प्रबीने ॥३७॥

दुऊ जुद्ध जैता[1] घने जंग कीने। हयं हीन दोनो, रणं धरम चीने।
दुऊ दाव ताकैं अरैं आप मांही। मनो शेर दोनो मिटैं पाइ नाहीं[2] ॥३८॥

रुपे बीर दोनो गजंराज भारे। बड़े दंत धारी, महां छोभ वारे।
दुहूं ढाल ढोई ढका ढूक कीनी। दुहूं खग्ग धारी मती कोप भीनी ॥३९॥

ललाबेग धायो कराचोल मारा। गुरू ढाल पै लीनि ओजं संभारा।
कह्यो वार औरं करो घात पैकै। पिछारी बिसूरैं गिरै म्रितु ह्वै कै ॥४०॥

दलेरी गुरू की महानी पछानी। करै वार ते वार को खग्ग पानी[3]।
पुनं शीघ्र साथं कर्यो नेर आयो। चह्यो मारिबे हाथ ऊचो उठायो ॥४१॥

करो ढाल सौंहैं त्रिभै होइ आगे। गुरू जी चलायो रिदै कोप जागे।
ललाबेग ने आप नांही प्रहार्यो। गुरू वार ते अंग सारो उबार्यो ॥४२॥

करी छाल शीघ्रं इतै ऊत होयो। पहूंचे गुरू जी, गयो दूर जोयो।
खरो होहु गीदी[4] कहां जानि पावैं। दिजै वार मेरो कहां लौ बचावैं ॥४३॥

सुने बैन कोप्यो ललाबेग बीरं। थिर्यो फेर ऐसे रिदै धारि धीरं।
भयो सामुहे[5] ज्यों बिखी होइ भारो[6]। दबै पूछ ते काटिबे को पधारो[7] ॥४४॥

प्रहारै क्रिपानै कई वार कीने। तथा शीघ्र धारे गुरू ओट लीने।
धरी हाथ बामे बड़ी ढाल भारी। दुती हाथ मांहे क्रिपानं संभारी ॥४५॥

तरे वार ताक्यो प्रहारे समाना[8]। करी ओट ताहूं ललाबेग जाना।
तरे दाव को मैं बचावों चहंता। करी ढाल आगे सु पैरं रुपंता ॥४६॥

गुरू शीघ्र ते हाथ उचे उभारा। कराचोल बाह्यो, लगी जाइ धारा।
बहो कंठ मैं पार भी रीति ऐसे। करे काट सांबूण को तार जैसे[9] ॥४७॥
गिर्यो सीस शीघ्रं रहे नेन बायो[10]। मनो श्री फलं बायु शाखा गिरायो।
बिना मुंड ते रुंड भूमैं पर्यो है। तरू मूल छिनं[11] मनों सो गिर्यो है ॥४८॥

---

१. युद्ध जीतने वाले। २. पैर पीछे नहीं हटाते। ३. खड्ग हाथ में ले कर। ४. कायर। ५. सामने। ६. भयंकर सर्प समान। ७. जो पूंछ दबाए जाने पर काटने को दौड़ता है—(बहुत ही सुन्दर उपमा है)। ८. उसने सोचा कि नीचे से प्रहार करेंगे। ९. जैसे तार साबुन को काट देती है। १०. नेत्र खुले रह गए। ११. वृक्ष जड़ से काट दिया हो।

दोहरा

रह्यो बचावति तरे को ऊपर भयो प्रहार।
प्रान त्यागि गमन्यो भिसत सतिगुर अग्र निहारि ।।४६।।

(रा० ७ : ५३)

*　　　*　　　*

(सतिगुरु जी की विजय)

दोहरा

बेगलला को मारि कै सतिगुर पाइ प्रमोद।
फते लीनि बड जंग की हटे पाछली कोद ।।१।।

सवैया

दियो हुकम सभि सैना के प्रति, हेल करहु तुरकनि पर धाइ।
अरहि सु कटहु, मिलहि सो छोरहु, त्यागै शसत्र सु लेहु बचाइ।
सरब चमूं पति[1] होति भयो हति, बिन भूपति को लर न सकाइ।
करहु, फते, अबि अंत भयो रण, श्री नानक जी भए सहाइ ।।२।।

सुनि आइसु को गही क्रिपानैं बाज समान गए सभि सूर।
मनहुँ म्रिगनि पर केहरि दौरे, 'मारि मारि' करि भरे गरूर।
जो सनमुख हुइ तजै तुफंगनि, तोमर तीर तुरक भट भूर।
सभि पर परि मार इक समसर रुंड मुंड करि मेले धूरि ।।३।।

कंठ कट्यो किह, भुजा तुंड किह, सिर पर बजी कांहि करवार।
कुछक अरे पुन भाजि परे तहिं किस ने त्याग दीनि हथ्यार।
को कर जोरति खरो निहोरति, 'गुरू दुहाई' कांहि उचार।
दीन भए त्रिण दांतनि गहि करि[2] इस बिधि केतिक प्रान उबारि ।।४।।

जंग खेत महिं फते भई गुरु जबहि दुहाई तुरक पुकार।
बिधीचंद को श्री हरिगोविंद पठ्यो 'दीन' तिन लेहु उबार।
गयो तुरंग धवावति देखे बरजे भट नहिं 'कीजहि मार'।
सरब चमूं को इकठी करि कै हट्यो बोलि सतिगुर जैकार ।।५।।

(रा० ७ : ५४)

---

१. सेनापति। २. दांतों में तिनका लेकर।

(कालेखां ने बीडा उठाया, पैंदेखां की विमुखता)

दोहरा

देखि दूर ते शाहु को निव निव[1] करति सलाम।
अग्र जाइ ठांढो भयो जिह ठां सभा तमाम[2] ॥१॥

चौपाई

सुंदर डील बिलंद निहारा। बाहु बिसाल बड़े बलवारा।
हज़रत मुदति भनी तबि बानी। तें किम कीनि पुकार महानी ॥२॥

क्या तुम छीन्यो कै किन मारा। हैं अस कौन दियो दुख भारा।
सुनि पैंदे कर जोरि बखाना। हरि गुबिंद मम शत्रु महाना ॥३॥

करति चाकरी रिपु बहु हने। ठांनति जंग कीनि बल घने।
मम बाहन के होइ अलंब। तुमरें लशकर हने कदंब ॥४॥

बड़ी बड़ी मैं जोखौं खाइ[3]। लई फते बहु जसु उपजाइ।
तिस को इह इनामु मुझ दीनो। आयुध[4] बसत्र छीन करि लीनो ॥५॥

जितिक चमूं गुर के संग रहै। मम सम अपर न बल मैं अहै।
सुनति कुतबखां कहति बनाइ। इस को नाम रह्यो बिदताइ[5] ॥७॥

रण महिं प्राक्रम करे बडेरे। खडग खतंगनि[6] हते घनेरे।
अबि हजूर! इस डील निहारहु। अपर मनिंद न कोइ बिचारहु ॥८॥

आयुध बिद्या जानति सारी। निज बचाइ दे रिपुनि प्रहारी।
नर उठाइ पटकै छित[7] मांही। इह किम अरन देहि बल[8] बांही ॥९॥

रण बातनि ते हज़रत ढर्यो। बहुर बूझिबो हस कै कर्यो[9]।
कहां कहां कहु जंग परे हैं। किम गुर दिशा प्रहार करे हैं ॥१०॥

तबि पैंदे कहि सकल सुनाए। मुगलसखां सैना युति धाए।
गुरपुरि[10] महिं संग्राम उदारे। तहिं मैं जीत लीनि गन मारे ॥११॥

तहिं मैं करी लथेर पथेरा। काट्यो रावरि कटक बडेरा।
फते लई इम तीनहु बारी। हरिगुबिंद अबि चित बिसारी ॥१४॥

---

१. झुक-झुक कर। २. सारी। ३. बड़े-बड़े खतरे मोल लिए। ४. शस्त्र। ५. प्रसिद्ध—जानते रहे। ६. तीरों से। ७. भूमि पर। ८. भुजबल से। ९. उसकी युद्ध वीरता की बातों से प्रसन्न होकर हंसते हुए पूछा। १०. अमृतसर।

करि मेरो त्रिसकार निकारा। दरब चाकरी जानि उदारा[१]।
चाकर हुतो, अदब मैं राखा। नहिं सनमुख कुछ उत्तर भाखा॥१५॥

नतु गुर हुतो अग्र मम ऐसे। तोरति ग्रीव काकरी जैसे।
देति बगाइ न लावति बारी। गिरति सीस जिम फल टुटि डारी[२]॥१६॥

क्या बल गुर को मोरि अगारी। जिस को लोक कहैं भुज भारी।
अबि आवन को हेतु बतावौं। तुम सहाइ ते बदला पावौं॥१७॥

इक तुरंग रावर को भर्यो। दूसर अहै तिनहुं ढिग खर्यो।
हय समेत गुर कौ गहि ल्यावौं। पीछै रहनि जीवका पावौं[३]॥१८॥

अबि मुझ कौ दिहु लशकर संग। करौं जाइ मैं दीरघ जंग।
गुर के गर दुपटा गहि पावौं। ऐंचि आपके निकटि लिआवौं॥१९॥

पैंदेखान तबि नाम कहाऊँ। नतुर आइ मैं मुख न दिखाऊँ।
सुनि बहादुरी के बच शाहू। महां अनंदति ह्वै मन मांहू॥२०॥

अपनी सिफत जथा तैं बरनी। अबहि लायकी सच इह करनी।
डील बिलंद बली बड बाहू। तिम दिखीयति मन को उतसाहू॥२१॥

मन भावति लशकर समुदाइ। हम दै हैं तुव संग चढाइ।
चमूं चमूं सों मिलि कै लरै। तुम पहुंचहुं जहिं गुर थिर अरै[४]॥२२॥

अपर सुभट गुर के बलवंते। तुझ ढिग पहुंचि न देहिं कदंते[५]।
तेरो अरु गुर को रण दुंद। जुटहु ज़ोर करि बाहु बिलंद॥२३॥

जे बल करि गुर को गहि ल्यावैं। मनसब मन सभि बांछति पावैं।
हय दिलबाग संग लै आऊ। बिनां बिलंब लेहु सिरुपाऊ॥२४॥

इम सुनि शाहु दई कर शारत। 'तूशनि रहु' समुझाइ बिचारत।
थिर उमराव हुते समुदाई। सभा बिखै सभिहूंनि सुनाई॥२७॥

नगन तेग अरु पानन बीरा। धरहु आनि करि बिच, बड बीरा।
जो उतसाह जंग को धरै। हरिगुबिंद पर चढिबो करै॥२८॥

पैंदखान के संग सिधारै। करि वहादुरी अरि कौ मारै।
तीन बार करि रार[६] उदारा। जो उमराव चढयो सो मारा॥२९॥

---

१. बहुत। २. सिर ऐसे टूट कर गिर पड़ता, जैसे डाल से फल टूट गिरता है। ३. पहले घोड़े सहित गुरु जी की पकड़ लाऊं, तब रोज़ी प्राप्त करूँगा। ४. सेना उनकी सेना से लड़ती रहे, तुम वहां पहुंचो, जहां गुरु जी खड़े हों। ५. हमारे योद्धा तुम्हारे निकट गुरु जी के योद्धाओं को कभी आने नहीं देंगे। ६. झगड़ा, युद्ध।

इस पठान के बल करि जीता । अबिके गहि लीजै दे भीता ।
इस प्रकार सभि सभा मझारा । तीन बार जबि शाहु उचारा ।।३०।।

मुगलसखान भ्रात इक अहै । कालेखान नाम जग कहैं ।
सूबा पुरि पिशौर को भारा । सैना संग पचास हज़ारा ।।३१।।

तिन सुनि कै उर बिखै बिचारा । भ्रात मरे को बैर संभारा ।
तिस को पलटा मैं नहि लीनो । खान ब्रिंद सभि भाखहिं[१] हीनो ।।३२।।

अबि अवकाश भलो मुझ पावैं । गहौं गुरू को शाहु पठावैं ।
इक तौ हज़रत कारज अहै । दुतीए जसु मेरो जग रहै ।।३३।।

त्रितीए पलटा मुगलसखान । इम मेरो हुइ काज महान[२] ।
उठि कर जोरति बोल्यो सोइ । हज़रत हुकम मोहि कउ होइ ।।३४।।

सैना सकल जंग करि घैहैं[३] । हरिगुबिंद जीवति गहि लैहैं ।
निकटि आपके जद हम ल्यावैं । भ्रात मरे की करक मिटावैं ।।३५।।

भर्यो रिदा रिस ज्वाल[४] प्रकाशी । सो सभि गुर पर करव निकासी[५] ।
तिस दिन सुपतौं नींद सुखारी । हरिगुबिंद गहि लेहुं कि मारी ।।३६।।

सुनति शाहु तबि हरख वधावै । कालेखां इम ही बनि आवै ।
पैंदखान के संग सिधावहु । सजहु सैन दुंदभि बजवावहु ।।३७।।

इम सुनि कालेखां हरखायो । करि सलाम को सीस झुकायो ।
नगन तेग बिच सभा उठाई[६] । पानन बीरा लीनि चबाई[७] ।।३८।।

हुतो मीत इक अबदुल खान । खोजा अनवर नाम बखानि ।
तिन भी देखति चौंप बढ़ाई । चही गुरू पर करन चढाई ।।४२।।

'हज़रत' हुकम आपको पाऊँ । पैंदखांन के संग सिधाऊँ ।
अबदुलखान मीत मम मारा । अहै करज़[८] सिर करों उतारा ।।४४।।

दाव भेत बुधि के उपजाइ । कालेखां को बनौं सहाइ ।
पंच हज़ारनि को सिरुपाइ । हरख शाहु करि तांहि दिवाइ ।।४५।।

---

१. कहते हैं, (हीन, नीच) । २. यहां कवि ने योद्धाओं के मनोविज्ञान का सुन्दर चित्रण किया है । एक तो प्रतिशोध की भावना, दूसरे यश, तीसरे स्वामी-कार्य और चौथे फल पाने की कामना से योद्धा युद्ध में प्रवृत्त होकर उत्साह और साहस से लड़ता है । ३. मार देंगे (गुरू जी की सेना) । ४. क्रोध की ज्वाला । ५. वह सब गुरू जी पर निकालूंगा । ६. सभा बीच नंगी तलवार उठाई । ७. पान का बीड़ा उठा कर चबा लिया । ८. ऋण (मित्रता का) ।

तजि देहु कपट भा जंग भेर। धौंसनि वजाइ अबि करहु नेर।
कहि कुतवखान अरु पैंदखान। इहु आप जि मरज़ी दिहु निशान ॥८॥
अबि करहू न विलम[1] विहाइ काल। इकबार परहु हमला[2] बिसाल।
पुरि महिं प्रवेश हुइ करहु मार। नहिं अरन देहु सैना अगार[3] ॥९॥
जबि कर्यो हुकम दुंदभि बजाइ। तबि दई चोब दुहरी लगाई।
धुनि परी कान जोधानि आइ। सवधान हुते चहुं दिशि फिराई ॥१०॥
दिज मलकजाति तिन महिं फिरंति। 'हुजहि तयार' सभि को कहंति।
सुध करो गुरू ढिग जाइ धाइ। सवधान बनहु हि लरन आइ ॥११॥
हय को भजाइ पहुंच्यो तुरंग। उतर्यो सु पौर अंतरि बरंति।
गुर अग्र सौच करिकै शनान। थिर रूप सच्चिदानंद ध्यान[4] ॥१२॥
तबि गयो बिप्र कीनसि बखान। दल तुरक आइ पहुंच्यो महान।
जिम होइ हुकम कीजहि उपाइ। चढि चलहिं बीर जिस लेहु नाइ[5] ॥१३॥
सुधि भाखि बिप्र रहि ठांढि तीर। श्री हरिगुबिंद सुनि बीर धीर।
जप कीनि पाठ चित एक होइ। प्रभु सरब कला समरत्थ सोइ ॥१४॥
पठि अंत कीनि सिर को निवाइ। तबि सुनि तुफंगन धुनि उठाइ[6]।
सवधान बीर जे अग्र ठांढि। रण भयो प्रथम, तहिं रोस बाढ[7] ॥१५॥
जिम भाठ विखै भुजियंति धान[8]। सुनियंति तथा बहु शबद कान।
तबि भन्यो बिप्र सों छिप्र[9] जाइ। लक्खू सु बीर दीजे चढाइ ॥१६॥
जबि हती सांग रण प्रथम मांहि। किय सैनपती लखि सुभट तांहि।
गुर कह्यो पंच सै सेन संग। तुरकांन हान हित रचहि जंग ॥१७॥
भट मिहरचंद, अमीआं सु दोइ। दल संग चार सै लेहिं सोइ।
तिस की सहाइ महिं सावधान। दुहुं दिशा रहहिं रिपु करहिं हान[10] ॥१८॥
नौं सै सऊर[11] हैं शेख जोइ। पुरि करहि रच्छ चहुं दिशिनि सोइ।
भट हुते अशट दस सै[12] तुरंग। जो बचे करति जंगल सु जंग ॥१९॥
सिख हुते बहुत देशानि आइ। सभि हुइ सुचेत सतिगुर अलाइ।
दिज मलक जाति सुनि हुकम धाइ। लक्खू प्रचंड दीनसि चढाइ ॥२०॥

---

१. देर। २. आक्रमण। ३. उनकी सेना को आगे अडने मत दो। ४. यहां वीर और संत का मिला-जुला रूप तथा धैर्य की पराकाष्ठा सांकेतिक है। ५. नाम लेंगे। ६. भगवत्-भजन करने के बाद ही बंदूकों की आवाज़ सुनी=ब्रह्मलीन होन का (concentration) यह एक सुन्दर उदाहरण है। ७. बढ़े हुए क्रोध से। ८. जैसे भट्ठि में धान भुनते हैं। ९. शीघ्र। १०. युद्ध में सैन्य-योजना का परिचय, युद्ध कौशल ११. योद्धा। १२. अठारह सौ।

पशचात सैनपति जुग सुचेत। सुनि हुकम चढे बड जंग हेतु।
बहु भयो कुलाहल सगल थान। चलि ज्वाला बमणी[1] शबद ठानि ॥२१॥

सूरनि अनंद, कातुर[2] डरंति। गुर के निशान ऊचे बजंति।
तबि श्री गुरदित्ता निकटि आइ। हुइ सनध बद्ध रिपु लरनि चाइ ॥२२॥

इम पिता बाक को सीस धारि। हय चढ्यो फिरति सूरनि मझार।
जित गोल तुरक को आइ जोर। तित जाति सूरमे दौरि दौरि ॥२६॥

तजि तुपक तुंड को तोरि तोरि। करि घोर जंग दैं मोरि मोरि।
तीखन खतंग तबि छोरि छोरि। शत्रुनि सरीर गन फोरि फोरि ॥२७॥

प्रमाणका छन्द

तुफंग छोरि छोरि कै। खतंग चांप जोरि कै।
प्रहारि शत्रु गेरते। परे बिहाल टेरते ॥२९॥

तुरंग अंग भंग ह्वै। गिरंति सूर संग ह्वै[3]।
तजंति फेर धाइ हैं। परंति एक आइ हैं[4] ॥३०॥

कुलाहलं हला हली। बलीन मैं चलाचली।
सु ज़ोर पाइ आवते। थिरंति लागि घाव ते[5] ॥३१॥

न तीर[6] होनि पावते। सु चार ओर धावते।
परंति हूह देय कै। मुरंति घाव खेय कै[7] ॥३२॥

बिलंद कोप धारि हीं। उचारि 'मारि मारि' ही।
लगैं तुफंग तीर ही। गिरंति धीर बीर ही ॥३३॥

परे तुरंग सूरमा। मिलंति जाति धूरमा[8]।
दिखंति ना अंधेर मैं। धवाइ जे दरेर मैं[9] ॥३४॥

गिरंति तांहि ऊपरे। बिना हते सु भू परे।
दरंति पाइ संग ते। पलाइके तुरंग ते ॥३५॥

तुफंग के तडाक ह्वैं। खतंग के सडाक ह्वैं।
मच्यो घमंड घोर ही। मरैं न तुंड मोरि ही ॥३६॥

---

१. बंदूकें। २. कायर। ३. योद्धा भी (घोड़ों के साथ) गिरने लगे। ४. एक ओर आकर पड़ते हैं। ५. घाव लगने पर अकटते अथवा जो सामने ठहरते उन्हें घाव लगते। ६. निकट ७. घाव खाकर मुड़ते हैं। ८. मिट्टी में मिलते जाते हैं। ९. (घोड़ों के) दौड़ाने में दले जाते हैं।

कितेक त्रास पाइ कै। न होति सामुहाइ कै[1]।
टरंति आन थान को। प्रहान कै गुमान को ।।३७।।

बजे जुझाऊ बादिता[2]। उतंग जंग नादता[3]।
प्रचार[4] बीर आवते। मरैं तुफंग घावते ।।३८।।

बिलंब ना लगंति है। चटापटी जुझंति हैं।
बिसाल शोर माचिओ। लहू सु धूलि राचियो ।।३९।।

दोहरा

इस प्रकार संघर[5] मच्यो तिमर जामनी[6] माहिं।
धुखहिं पलीते ब्रिंद ही उठहिं शबद बड जाहिं ।।४०।।

(रा० ८ : २०)

(रात्रि का युद्ध)

दोहरा

लिए वाहनी[7] लरति भा लक्खू बीर बिसाल।
जित दिश आवहि टोल रिपु[8] हनहि तुफंग कराल ।।१।।

भुजंगप्रयात छन्द

नहीं नेर ढूके कुप्यो खान काला। सु ऊचे उचार्यो कठोरं बिसाला।
कहां त्रास धार्यो खरे देर लावो। करो क्यों न हेला सु आपा बचावो ।।२।।

गुर सैन थोरो जथा लौन आटा। परो एक बारी असी[9] काढि काटा।
चढै सूर जौ लौ[10], फते लेहु[11] पाई। जबै क्रोध कै खान बानी सुनाई ।।३।।

सुनी खान कानं जु बीसैं हज़ारा। दलं चालि आगै चह्यो जंग भारा।
हकं हाक बाजी[12] तुरंगं धवाए। करैं त्यार हाथैं तुफंगैं उठाए ।।५।।

हला हाल बोलैं धकाधक्क होए। अंधेरा महां धूर दीखे न कोए।
गिरे बीर केते मरे सो अटंके। परे ऊपरे ना उठे ह्वै अतंके[13] ।।६।।

संभारैं किते हाथ डारी तुफंगैं। किते छूटि कै छूछ दौरे तुरंगै।
बिना मार कीने मरे शत्रु केते। तरे ऊपरे होति भै के समेते ।।७।।

---

१. सामने नहीं होते। २. बाजे। ३. शोर। ४. ललकार कर। ५. युद्ध। ६. रात्रि के अंधकार में। ७. सेना। ८. शत्रु का टोला। ९. तलवार निकाल कर काट दो। १०. जब तक सूर्य चढ़ता है। ११. विजय प्राप्त कर लो। १२. घोड़ों के हिनहिनाने की आवाज़ अथवा हल्ला गुल्ला हुआ। १३. डर के कारण (आतंक से)।

सहस्त्रै जु बीसं ढुकेवाइ धौंसे[1] । इते बीर लक्खू लिए संग नौसै ।
भयै ठांढि आगे तुफंगै चलाई । दड़ा दाड़ गेरे लगी बेग जाई ।।८।।

जिती छोरि गोरी सभी लागि बीरं । नहीं छूछ कोई गई होइ तीरं[2] ।
इकं वार मैं सूर नौं सै गिराए । पुनं पाइ बारूद त्यारी कराए ।।९।।

छरांकार होवैं गजं केर भारे । दु गोरी सु पावैं ढुकैं छिप्र डारे ।
फलीतानि बारूद मेलैं जमावैं । कलापै जड़ैं मोड तोड़ै टिकावैं ।।१०।।

धरैं हाथ पैं, सामुहे शत्रु ब्रिंदा । चलावैं लगैं जाइ जोधे निकंदा ।
प्रकाशैं पलीते शुभैं जंग थाने । अंधेरी निसा महिं समूहं टनाने[3] ।।११।।

मनो बारि धारी गिरै गाज भारी[4] । इमं होति नादं तुफंगैं छुटारी ।
दुहूं ओर धौंसानि धुंकार गाढा । मनो मेघ गाजे महांनाद बाढा ।।१२।।

जुआला वमंती तबै द्रिशटि आवै । अंधेरा सु दूरं न देखंन पावै ।
सु होए बिहालं महां मार माची । हयं सूर के श्रोण सों भूमि राची ।।१४।।

इसी रीति मारे घमंसान मेला । गुरू बीर मोरे जबै घालि हेला[5] ।
फुटैं[6] तुंड आगे मिटे जाहि पाछैं । नहीं फेर आवंन को चीत बांछैं ।।१५।।

दिशा दूसरी को पुरं केर[7] जावैं । तहां और बीरं तुफंगैं चलावैं ।
नहीं होनि दें नेर, हेला जु घालैं । करैं मार गोरी ततंकाल डालैं ।।१६।।

फिरैं आलबाले[8], चलैं चुंग होए । जिते जोर घालैं सकैं ना खरोए ।
पर मार गोरीन की एक बारा । सहारैं न शत्रु गिरैं ह्वै सुमारा[9] ।।१७।।

कितै प्रान हाने कितै भाज जै हैं । कितै देखि कै मूरछा ते गिरै हैं ।
परैं भूम औंधे[10] वहैं श्रोण अंगा । भए अंध जैसे बड़ी धूल संगा ।।१८।।

चढी स्वास सों सीस सों नासक मैं । गए कान पूरे तथा बाहिका[11] मैं ।
धका धक्क होई धवाए तुरंगा । गिरे खेत जोधा मले[12] पाइ संगा ।।१९।।

बहु नमसकारनी[13] छोरि छोरि । सुभटनि सरीर को फोरि फोरि ।
करि प्रान हानि छित डालि डालि । गन लोथ पोथ हय घालि घालि ।।२७।।

---

१. धौंसे बजवाए । २ निकट से होकर निकल गई । ३. पट बीजने, जुगनु । ४. वज्र, बिजली । ५ गुरु जी के शूरवीरों ने जब हमला करके शत्रुओं के मुंह मोड़ दिए । ६. पीछे हटते गए क्योंकि आगे गुरु जी के योद्धा उनके मुंह तोड़ते जाते थे । ७. नगर की दूसरी ओर । ८. चारों ओर । ९. ज़ख्मी हो होकर । १०. पृथ्वी पर उल्टे पड़ना । ११. सवारी गाड़ी—रथ आदि से तात्पर्य है । १२. मले गए । १३. बंदूकें ।

बहु तुरक तुरंग अंबार लाग। रणखेत परे तन त्यागि त्यागि।
इक मुख कराहते 'हाइ हाइ'। दुख महां घाव गन खाइ खाइ ॥२८॥

गुर सूर थोरहूं लागि घाइ। प्रभु महाराज होवति सहाइ।
तुरकनि हज़ारहूं प्रान हानि। मिलि धूर परे सुपते महान ॥२९॥

बहु भयो पंक श्रोणंति चालि। इम लरति मरति रण घालि घालि।
बिति गई जामनी तम समेत। नभ चढचो दिनेश[1] प्रकाश हेतु ॥३०॥

तबि लगे दिखन भट आप मांहि। तक तीर तुफंगनि हतहिं तांहि।
तोमर बिलंद ऊचे उभारि। किन कराचौल[2] लीने निकारि ॥३१॥

जुट परे काटिबे सुभट अंग। खंडे प्रचंड दुइ धार संग।
बहि चल्यो श्रोण ते बसत्र लाल। जनु कुसमत किंसक तरु[3] बिसाल ॥३२॥

कै रंग पतंगी पाइ पाइ। भट फाग खेलते धाइ धाइ।
कहिं 'मार' गीत जनु गाइ गाइ। मिलि जाहिं बीर चित चाइ चाइ ॥३३॥

हुइ जूथ जंबुकनि करि पुकार। उर अनंद अधिक आमिख अहार।
बहु फिरति जोगनी श्रोणपान। भरि भरि कपाल त्रिपतैं महान ॥३४॥

निज उदर पूरि लेती डकार। गावंति गीत पावति धमार[4]।
गन काक कंक कूकैं कराल। बहु मिली ग्रिझ भक्खहिं बिसाल ॥३५॥

बड भयो भीम रण खेत हेरि। नर तुरंग मरे धर पर घनेर।
दारुन महान कूकर श्रिगाल। मिलि मास अहारी बिहंग जाल ॥३६॥

कहकह हसंति[5] काली कराल। कर रकत खपर[6] लटकंति बाल।
पोअंति[7] मुंड माला बिसाल। बहु नर्चाहि जोगनी बजहि ताल ॥३७॥

छुटकंति तुपक फटकंति देहि। लटकंति गिरति मिलियंति खेह[8]।
करतार पुरा दीपक मनिंद। जनु तुरक पतंग सु परति ब्रिंद ॥३८॥
(रा० ८ : २१)

(दिन का युद्ध)

दोहरा

भई प्रभाति बिलोकि कै लशकर हति भा[9] ब्रिंद।
कुतब, पैंद, अनवर अपर लखि कै बली बिलंद ॥१॥

---

१. अंधेरी रात बीत गई और प्रकाश के लिए सर्य आकाश में चढ़ आया। २. तलवार। ३. केसु के फूलों का वृक्ष। ४. नाच। ५. खिड़-खिड़ हंसना। ६. लहू का खप्पर। ७. परोती हैं। ८. धूलि में। ९. मारा गया।

रसावल छन्द

रिस्यो खान काला । इनो तातकाला ।
कह्यो कोप संगा[१] । न कोटं उतंगा[२] ।।२।।

नहीं दीह खाई[३] । लरे दूर आई ।
मरे बीर आधे । नहीं शत्रु साधे ।।३।।

जिती देर धारो । तितो ह्वै बिगारो ।
चहुं ओर घेरा । करो एक बेरा ।।५।।

दोहरा

कुतबखान[४] ! पूरब दिशा दस हज़ार लै सैन ।
पुरि के सनमुख हेल करि मारि करहु बिन चैन ।।६।।

अनवर अरु असमान खां ! दक्खन दिशि की ओर ।
पुरि कै निकटि पहूंचि कै करीए संघर घोर ।।७।।

सोरठा

दस हज़ार लिहु संग जबि हेला सगरे करहिं ।
कराचोल के जंग लरति लरति पुरि महिं बरहिं[५] ।।८।।

मैं पशचम दिशि ठांढि इति ते करौं प्रवेश को ।
हतहिं खडग को काढि अरहि जु आइ अशेश को[६] ।।९।।

पैंदखान बलबान उत्तर दिशि लरिकै परहि ।
लिहु बिचलाइ महान मारि मारि करिकै बरहिं ।।१०।।

इम मसलत को धारि लै लै दसं हज़ार दल ।
चार ओर हुइ चार भनति परसपर अपन बल ।।११।।

रसावल छन्द

बजाए नगारे । चले चौंप धारे ।
जुदी सैन कीनी । निजं संग लीनी ।।१२।।

---

१. (कालेखां ने) तत्काल इन्हें (पैंदेखान, अनवरखान आदि को) क्रोध में भर कर कहा । २. किला ऊंचा नहीं है। ३. न बड़ी खाई ही है। ४. आक्रमण के लिए सेना व्यवस्था का उदाहरण । ५. घुस जाएंगे । ६. सब को ।

सुरापान कीने[1]। रणं रंग भीने।
वड़े चुंग होए। चहैं शत्रु ढोए ॥१३॥

वकैं बीर बंके। बिसाले निशंके।
गुरू थान कौने। पिखो क्यों न तौने ॥१४॥

बली जो कहावै। नहीं दाव खावै।
गहो क्यों न जैकै। किधौं मारि धैकै ॥१५॥

इमं ऊच भाखैं। बिसालाभिलाखैं।
भए चार ओरं। कर्यो जंग घोरं ॥१६॥

तुफंगैं चलाई। तुरंगैं धवाई।
महा नाद होवा। बिधीचंद जोवा ॥१७॥

चहूँ ओर हेरा। जथा पाइ घेरा।
सभी भेत जाना। जथा शत्रु ठाना ॥१८॥

गुरू पास जैकै। सुनाई सबै कै।
बंधे चार गोलं[2]। बकैं ऊच बोलं ॥२०॥

सुनी बात सारी। गुरू यौं उचारी।
जिती सैन भारी। करौ थाउं चारी[3] ॥२२॥

दोहरा

पुरब दिशि जाती मलक ले दल संग समुहाइ।
मिहरचंद अमीआं दुती दक्खन दिश कौ जाइ ॥२३॥

लक्खू पशचमु दिशि लरै लै सैना सवधान।
रहहि पीन[4] करि पुरि निकटि हनहि तुफंग महान ॥२४॥

बिधीचंद ! संग चमूं के उत्तर दिशा पधारि।
बधहु अग्र नहिं अधिक तुम ढिग रिपु पहुंचहि मार ॥२५॥

रसावल छन्द

गुरू बैन श्रोणे[5]। लए मानि तौने।
करी संग सैना। चले बीर भै ना[6] ॥२६॥

---

१. शराब पी। २. टोले, दल। ३. जैसे शत्रु ने चारों ओर से आक्रमण करने का निश्चय किया है उसी प्रकार चारों ओर से उनका मुकाबला करने के लिए गुरू जी अपनी सेना की व्यवस्था कर रहे हैं। ४. मजबूती से रहे। ५. सुने। ६. भय रहित—निर्भीक होकर।

जहां खान काला। बडो हेल घाला।
गयो वीर लक्खू। महां ओज रक्खू ।।२७।।

तुफंगैं चलाई। कि नेज़े भ्रमाई।
बड़े बाण मारे। सु लोहा करारे ।।२८।।

किते सांग मारैं। क्रिपानैं प्रहारैं।
तुफंगानि मेला। लियो झालि हेला ।।२९।।

खरे थंभ जैसे। हले सो न कैसे[1]।

अरे होइ सौहैं[2]। करी बंक भौहैं ।।३०।।

दडा दाड गेरैं। तुरंगैं घनेरैं।
उथल्लैं पथल्लैं। नहीं पाइ[3] हल्लैं ।।३१।।

महां शसत्र खाए। रिपू ब्रिंद घाए।
भयो जंग भारी। परी भूर मारी ।।३२।।

चले खग्ग खंडे। दुधारे प्रचंडे।
करे खंड खंडे। घने ही घुमंडे[4] ।।३३।।

भए रुंड[5] मुंडे[6]। किनू जंग छंडे[7]।
कटी ग्रीव बाहू। परे भूमि मांहू ।।३४।।

किसू सीस काटा। किनूं कोई डाटा[8]।
रिपू नेर होए। सु नेज़े परोए ।।३५।।

तुफंगानि छोरी। किसू मारि गोरी।
कि सागं प्रहारी। भजे भीरु[9] भारी ।।३६।।

महां लोह माचा। लहू धूल राचा।
किसू तुंड खंडा। कि सीसं विहंडा[10] ।।३७।।

हथा हत्थ होए। रिपू कीनि ढोए।
चलैं तीर तीखे। सु सरपं सरीखे ।।३८।।

भयो भूर नादं। करैं सूर बादं।
गुरू त्यार होए। महां जंग जोए ।।३९।।

---

१. खंभे की तरह डटे खड़े थे, ज़रा भी अपने स्थान से नहीं हटे। २. सामने। ३. पांव। ४. बड़े अहंकार वालों को खंड-खंड कर दिया। ५. सिर बिना, धड़। ६. धड़ बिना सिर। ७. कइयों ने युद्ध छोड़ दिया। ८. कोई किसी को डांटता है। ९. कायरों की भीड़। १०. कट गया।

धरे जुद्ध चीरं। सुभंते शरीरं।
बडो खग्ग भारा। गरे बीच धारा ॥४०॥

लई ढाल चौरी। हुती भार गौरी[1]।
लगाई पिछारे। महां शोभ धारे ॥४१॥

शुभै भूर भाथा। भर्यो बान साथा।
लग्यो हेम[2] जांही। दिपैं हीर मांही ॥४२॥

सु मोतोनि गुच्छे। भले गोल सुच्छे[3]।
सज्यो अंग संगा। गह्यो चाँप चंगा ॥४३॥

कठोरैं बिसाला। महां भार वाला।
हयं 'जान भाई'। सु लीनो मंगाई ॥४४॥

गुरू कोट तीरं[4]। खरे संधि[5] तीरं।
महां शत्रु हेरे। लरंते घनेरे ॥४६॥

तिन्हों ताकि मारा। चल्यो शूक मारा[6]।
डसे शत्रु जाई। जु आयो अगाई ॥४७॥

बिध्यो एक दोऊ। त्रिती चौथ सोऊ।
जऊ आई आगे। गयो बीध लागे ॥४८॥

जथा पौन केले। गिरावै धकेले।
तथा एक बारी। गिरे शत्रु भारी ॥५०॥

पुनं और जोरा। धनू ऐंचि घोरा।
लग्यो कान पाना। करे तान ताना ॥५१॥

तज्यो नाद होवा। रिपू चै परोवा।
नहीं जाइ जाना। परै पार बाना ॥५२॥

हतैं तीर तीखे। जु सरपं सरीखे।
मरैं सूर घोरे। पुरं चार ओरे[7] ॥५४॥

बड़ा हेल मेला[8]। चहैं रेलि पेला।
परै मार आगे[9]। गिरैं शसत्र लागे ॥५५॥

---

१. बहुत भारी। २. सोना। ३. स्वच्छ, शुद्ध। ४. किले के पास। ५. संधान करके, निशाना बना कर। ६. सर्प (की तरह)। ७. नगर के चारों ओर। ८. तुरकों ने बड़ा हल्ला किया। ९. सामने से मार पड़ती हो।

तुफंगानि गोरी। लगै अंग फोरी।
परें भूम धूमै। मिलैं धूलि भू मैं ॥५७॥

नहीं अग्र आवैं। महां त्रास पावैं।
गुरू बान[1] लागैं। तबै प्रान त्यागैं ॥५८॥

चहूँ ओर मारे। सु लागे अंबारे[2]।
तुरंगं कि बीरा[3]। परे ह्वै बिखीरा[4] ॥५९॥

परैं दौर कैकै। फिरैं मार खैकै।
तबै खान काला। हिरानं बिसाला[5] ॥६०॥

(रा० ८ : २२)

(खोजा अनवर वध)

तोमर छन्द

मिहरा रुप्यो धरि धीर। धनु ऐंचि मारती तीर।
सुभटानि को ललकारि। तुपकानि गोरिनि मारि ॥९॥

खर सांग मारि धसाइ। तरवार ते करि घाइ।
गन तुंड मुंड बिहंड[6]। करि खंड खंड घमंडि ॥१०॥

जुटि आप मैं तिस बार। इकसार होवति मारि।
कटि अंग श्रोणत भीज। रण खेत मैं जनु बीज[7] ॥११॥

बहु बीर घाइल होइ। मरि भूम पैं परि कोइ।
असमानखान खतंग। गुर बीर बेधति अंग ॥१२॥

किह सीस पै तरवार। किह कंध को कटि डारि।
मुख छेद कीनसि काहि। कटि जंघ को चलि नाहिं[8] ॥१३॥

पाधड़ी छन्द

तबि अनवरखान बिलोकि सैन। किम सुभट हटति रण लरति है न।
को अर्यो आइ नहिं जानि देति। गमन्यो अगाइ बिच जंग खेत ॥२१॥

---

१. गुरू जी के बाण। २. ढेर। ३. क्या घोड़ा क्या योद्धा। ४. बिखरे हुए। ५. बहुत हैरान हुआ। ६. नाश किए, काटे। ७. युद्ध भूमि में खून में लिपटे कटे अंग ऐसे पड़े हैं मानो खेत में बीज पड़े हों। ८. किसी की जांघ कट गई है और उससे चला नहीं जाता।

लै बीर कितिक करि रेल पेल। बिच बर्यो आइ बकि 'हेल हेल'।
पिखि बिधीचंद ललकार तांहि। मिलि परे बीर तबि आप मांहि ॥२२॥

हथ्यार हाथ लै सावधान। तबि बिधीचंद रोप्यो महान।
धनु ऐंचि ऐंचि त्यागंति तीर। तुरकनि ताकि बेधति सरीर ॥२५॥

जिस लगहिं, नहीं जाचंति नीर[1]। परि पार शुशक गेरंति बीर[2]।
तबि अर्यो आइ अनवर पठान। बहु कोप संग कीनसि बखान ॥२६॥

त्रिसकार कीनि बहु मार मोहि। बिच सभा आबरू खोइ तोहि।
अबि लेहुं सु पलटा करि बिनाश। तजि देहु सरब जीवंति आस ॥२७॥

नहिं करन उचित करि मोहि संग। अबि लेहु सु पलटा बीच जंग।
सुनि बिधीचंद कोनसि बखान। बलवान केहरी[3] गुर महान ॥२६॥

सम तोहि म्रिग मारे अनेक। जिन को गिनंति नहिं हुइ बिबेक।
अर बड़े मसत बल जुति मतंग। सो ललाबेग कबर जि अंग ॥३०॥

अबि करहु जगावन तुमहु आइ। बलधार आज दें सभि खपाइ[4]।
नहिं तजहिं, करहु केतिक उपाइ। जे जियनि चाहि अबि ते पलाइ[5] ॥३२॥

सुनि अनवर मन रिस अधिक धारि। धनु ऐंचि ताकि करि सर प्रहार।
लगि जीन माहिं अटक्यो मझार। तबि बिधीचंद हय को संभारि ॥३३॥

इति उत धवाइ चौगिरद फेर। गुन[6] महिं अरोपि खपरा बडेर।
धनु तान कान लगि रिस महान। रिपु ताकि लच्छ छोड्यो सु बान ॥३४॥

सम सरप शूंक चाल्यो बिसाल। बड बेग सहित लगि शत्रु भाल।
पंखनि समेत धसि होइ पार। कुछ रह्यो दिखति बागर अकार[7] ॥३५॥

जुग भौहं बीच सो असु सुहाइ। जनु तिलक लाल सुंदर लगाइ।
किह जतन संग कै गुल अनार। बहु सजहि, भाल राख्यो सुधार[8] ॥३६॥

जनु बैठि निड्य[9] महिं सिर निकारि। इहु बतस सारका मुख पसारि[10]।
जनु बिधीचंद को कोप लाल। थिर भयो जाइ तकि शत्रु भाल ॥३७॥

---

१. पानी नहीं मांगता। २. सीधा सूखा पार निकल जाता है, और योद्धा को मार गिराता है। ३. सिंह। ४. नष्ट करना। ५. भाग जाओ। ६. चिल्ला, डोरी। ७. बागड (तीर का पिछला भाग) की शकल में। ८. या किसी ने अनार का फूल यत्नपूर्वक माथे पर लगा रखा हो, जो खूब शोभित हो रहा हो। ९. नीड, घोंसला। १०. मैना का बच्चा सिर निकाल कर मुंह खोल कर बैठा हो।

गिर पर्यो भूमि पर भूंम सोइ। लगि बायु बेग ज्यों ब्रिच्छ कोइ।
पिखि तुरक त्रास को पाइ भूर। तजि चले जंग पिखि शोर सूर ।।३८।।

बहु लरति सुभट घमसान घालि। इम दिशा दक्खणी-रण कराल।
गुर फते भई दुंदभि बजंति। सभि कहति शबद जैकारवंति ।।४३।।
(रा० ८ : २३)

दोहरा

श्री सतिगुर जोधा बली छोरति तीछन बान।
करहि एक ते नाश गन गिरहिं तुरक तजि प्रान ।।१।।

मधुभार छन्द

लरिते सु बीर। बिधिते सरीर।
हुइ अग्र धीर। प्रविशंति तीर ।।२।।

तुपकैं तड़ाक। गुलकां सडाक।
लगि अंग फोर। उकसैं न थोर ।।३।।

गिरते बिहाल। बहि श्रोण लाल।
छुटके तुरंग। असवार भंग ।।४।।

गुर क्रोध धारि। बहु बान मारि।
टिकने न देति। बड जंग खेत ।।५।।

रद[1] पीस पीस। दल ब्रिंद ईश[2]।
सुभटानि प्रेरि। हुइ कै दलेर ।।६।।

जबि होति मार। गिरते सुमार[3]।
ठटकंति हेरि। नहिं ह्वै अगेर ।।१०।।

दोहरा

थिर ह्वै जाती मलक दिज मारति कसि कसि बान।
सय्यद मुगल पठान गन गिरहिं प्रान करि हान ।।१३।।

---

१. दांत। २. पातशाह का। ३. ज़ख्मी होकर।

रसावल छन्द

गुरू सूर बंके। सु ह्वै कै निशंके।
कबै शसत्र लागैं। कऊ प्रान त्यागैं॥१४॥

पर्यो आनि हेला। महां शोर मेला।
तुफंगानि नादं[1]। बकैं बीर बादं॥१६॥

रुपैं ढाल हाथे। दुती खग्ग साथे।
सरोही सु खंडे। दुधारे प्रचंडे॥१७॥

कटाकट्ट काटैं। मनो मास बाटैं।
भए खंड खंडा। परे भूमि मंडा॥१८॥

किसू काटि तुंडा। पिखे भीरू पंडा[2]।
चले जंग छंडा[3]। नचै नंग खंडा॥१९॥

फटे बसत्र झंडा। भयो बंस[4] खंडा।
बडो जुद्ध मंडा। परी मार चंडा॥२०॥

दोहरा

कुतबखान जाती मलक लरति करति घमसान।
दुहूं दिशिनि के सूरमा लगि आयुध हति प्रान॥२१॥

सवैया

यो चहूं ओर ते मार मची तुरकानि के ढेर लगे मरिकै।
श्री हरिगोबिंद तीरनि ते बहु बीर सरीर परे थरकैं[5]।
बेधति पार परैं असु कै नर ना अटकैं खपरे बरि कै।
बेधन को करि कै सरकैं पिखि कातुर ही धरकैं डरि[6] कै॥२२॥

श्री हरिगोबिंद बीर बहादुर पंनग के सम बान चलावैं।
ब्रिदं प्रहारति शत्रुनि डारति, छूछ निखंग ह्वै और मंगावैं।
लाघवता करि छोरति हैं इकसार ही सार[7] महां बरखावैं।
एक को बेधति द्वै पुन तीनहु चार कि पंच, छठों सु गिरावैं॥२३॥

---

१. शोर—आवाज़। २. कायरों के मुख पीले (पड़ गए)। ३. छोड़ कर। ४. झंडे का बांस। ५ कांपते हैं। ६. कायरों के हृदय धड़कते हैं। ७. लोहा—(शस्त्र)।

झूकति जाति सबेग सपंखन ज्यों चलि धावति तोप को गोरा ।
ओट बचै नहिं कोट उपाव ते[1] लोटति भूम परै तनु घोरा ।
पान[2] न हालति, पान[3] न जाचति, तूरन प्राननि देती है छोरा।
जांघ कटै कि भुजा कटि जाति, फुटै सिर भाल कि दैं उर फोरा ।।२६।।

छोरि तुफंग हजारनि को, गुलकां घन ओरनि[4] ज्यों बरखावैं ।
फेर बरूद उताइल डालति, को गज काढति ठोक उठावैं ।
पाइ दुगोरनि को गुर सूर पलीतनि को करि जोर मिलावैं ।
पावक डाभि[5] उठावति नाद तडाभड यौं इक बार चलावैं ।।२८।।

क्रोध करैं चहूं ओरन ते मिलि हेल को घालति शोर मचाए ।
ब्रिंद तुफंग खतंगन को हति बेधति अंग तुरंग धवाए ।
तोमर तुंग भ्रमाइ[6] प्रहारति, यौं तुरकानि परे तहिं आए ।
रैंन मैं दौं[7],लगि कानन कौ तिहि देखि पतंग मरैं जनु[8] आए ।।२९।।

नाद तुफंगन होति घनो नभ धूम महां पसर्यो द्रिशटावै ।
मानहु श्याम घटा घन की गन गोरनि ओरन[9] ज्यों बरखावैं।
पावक होति बरूद भखे तडिता सम दीख महां चमकावैं ।
धूर ते पूरन होइ रह्यो पुरि, तूरन सूरनि हूर लिजावैं ।।३२।।

चावंड[10]चीकति मास अचैं, बहु बाइसु[11]कंक[12]अघावति हैं ।
कूकर जंबुक कूकति है गन आमिख ऐंचति खावति हैं ।
श्रोणत पीवति आनंद थीवति जोगनी नाचति गावति हैं ।
दुंदभि, ढोल, पटे, तुररी गन नाद उठाइ बजावति हैं ।।३३।।

पुरि आवनि को रुकि पंथ गयो बड ढेर डग्यो म्रितु घोरन को।
गन सूरनि के तन बीच पर, बहि श्रोण चल्यो दुहूं ओरन को ।
जनु गेरू के सैल श्रवैं बहु थानन[13]होति नदी लघु बोरन को[14]।
जनु दूसर कोट रच्यो लरिबे हित ओट करे रिपु मोरनि को ।।३४।।

---

१. करोड़ों यत्न करने पर भी । २. हाथ । ३. पानी । ४. जैसे बादल ओले (गड़े) बरसा रहे हों । ५. आग लगाकर । ६. ऊंचा घुमा कर । ७. दावानल, अग्नि । ८. जैसे वन में आग लगने से उसमें पड़ कर पतंग मरते हैं । ९. गोले रूपी ओले । १०. चीलें (इल्लां) । ११. कौवे । १२. सफेद-चील । १३. मानो गेरू के पर्वत अनेक स्थान पर सिम रहे हैं । १४. डूबने को ।

भैरव[1] थान भयो चहूं ओरन आमिख[2] हाड कि श्रोणत चाला।
हाथ कटे कित मुंड पर्यो कटि, जांघ कटी गन रुण्ड कराला।
आइ सकैं न उलंघ कै तांहि गिरैं हय हेरि कि त्रास बिसाला।
छोरि तुफंगनि अंगन भंगति रंग सुरंग बनैं ततकाला ॥३५॥

सूर तुरंग सरीर परे म्रित, सैल मनिंद पर्यो द्रिशटावैं।
मुंड कटे जनु पाथर के गन जांघ भुजा कटि काठ लखावैं।
श्रोणत के झरने सु झरैं मिझ ब्रिंद परी जनु फेन[3] उठावैं।
लांगुल[4] ग्रीवन केस पवंगम[5] ब्रिंद खरे त्रिन सो मन भावैं ॥३६॥

(रा० ८ : २४)

दोहरा

अधिक गई मरि सैन जबि रही अलप सी आइ।
करिबे हेल समत्रथ नहिं भे घाइल समुदाइ ॥९॥

सुनि सुनि कै बच श्रौण महिं सनै सनै समुदाइ।
गमने कालेखां निकटि हतहिं तुपक पिछवाइ ॥१०॥

पाधड़ी

असमान खान पहुंच्यो सु धाइ। जो बची बाहनी संग लाइ[6]।
दुंदभि बजंति हारे तुरंग। को भिगे अंग श्रोणत सु रंग ॥११॥

उतसाह हीन जै ते निरास[7]। मुख मलिन बीर उर भूर त्रास[8]।
सुनि कुतबखान दिशि अपनि छोर। चलि फिर्यो थिरे सभि जाहिं ओर ॥१२॥

जे बचे लरति सभि लीनि संग। दुंदभि बजाइ नादति उतंग।
जिम गिर बिसाल हड़ रोकि लीनि। टक्कर सु खाइ हटिबो सु कीनि ॥१३॥

जिम चहूं ओर ते सिमटि नीर[9]। इक थान होति सरुवरु गहीर[10]।
तिम भई सैन इकठी बिसाल। मसलति करंति मिलि बीर जाल ॥१५॥

जिम भए प्रथम रण, हार पाइ। तिस रीति होइ जानी सु जाइ।
अबि लरहु एक थल ज़ोर घाल। तजि चहूं ओर घेरा कराल[11] ॥१६॥

---

१. भयानक। २. मांस। ३. झाग। ४. पूंछ। ५. घोड़े। ६. बची सेना साथ लेकर। ७. विजय की आशा से हीन होने के कारण जिसका। ८. हृदय में भारी डर। ९. इकट्ठा हुआ जल। १०. गहरे तालाब में। ११. घेरा छोड़ कर एक जगह होकर लड़ो।

कहिं लागि लरहु सभि घात होइ। सभि बाद जाहि[1] पकरहु न कोइ।
सुनि पैंदखान बोल्यो गरूर[2]। मैं रह्यो पिखति गुर रहहि दूर ॥२०॥

अबि ज़ोर पाइ पहुंचौं नज़ीक[3]। तुम दिखहु खरे गहि लेहुँ ठीक।
निज सैंन बिखै आनहुं उठाइ। भट अपर जि पहुंचहिं निकटि धाइ ॥२१॥

तिन लेहु रोकि तुम हेल घाल। तबि तुरत सिद्ध कारज बिसाल।
असमानखान सुनि करि बखान। मैं हनौं बान तकि तान तान ॥२२॥

(रा० ८ : २५)

(पैंदेखान बध)

दोहरा

खरे गुरू एकल पिखे चित की चौप बधाइ।
पैंदखान हय चपल को प्रेर्यो चल्यो फंदाइ ॥१॥

रसावल

पिखैं सैन दोऊ। लखैं जंग होऊ।
लगैं डंक घाऊ। सु बाजैं जुझाऊ[4] ॥२॥

वरोला तुरंगं[5]। बड़े बेग संगं।
हुतो कोट छोटा। भटं कीनि ओटा ॥३॥

तहां बीच ठांढे। गुरू कोप गाढे।
पिखै पैंदखाना। कुदायो किकाना[6] ॥४॥

पर्यो पार जाए। नहीं पैर छ्वाए।
पिखंते हिराना। बडो ओज ठाना ॥५॥

लियो खैंचि खंडा। त्रिखी धार चंडा।
हटे और हेरे। नहीं होति नेरे ॥७॥

सभै चौंप संगा। दिखैं दुंद जंगा।
भयो पैंद नेरे। कह्यो बाक टेरे ॥८॥

गुरू जी! संभारो। जथा ओज धारो।
करो नाहिं टारा। चितो मोहि मारा ॥६॥

---

१. सभी (यत्न) व्यर्थ जाएँगे। २. अभिमान, अहंकार में भरा। ३. नजदीक, निकट। ४. जंगी (युद्ध के) बाजे। ५. वरौला नाम का घोड़ा जो गुरु जी ने पैंदे को दिया था। ६. घोड़ा।

दोहरा

सो पलटे को समो अबि लैहौं पकरौं तोहि।
शाहजहां के निकटि लै तिह ठां छोरनि होहि ॥१०॥

जौ जीवन चहु आपना चलीअहि आगै होइ।
हज़रत संग मिलाइ करि खता[1] बखशि है[2] सोइ ॥११॥

रसावल छन्द

नहीं तो संभारो। जितो ओज धारो।
करो वार खंडा। बनै दोइ खंडा[3] ॥१२॥

गुरू कोप धारे। सु बाकं उचारे।
जु गीदी सु त्रासै[4]। तकै शाहि पासै ॥१३॥

हमैं जंग भावै[5]। रिपू ब्रिंद घावैं।
नहीं मेल ठानैं। हनैं आयुधानैं[6] ॥१४॥

करैं तोर हाना। लिजै साच जाना।
अबै प्रान धारैं। न धामं सिधारैं[7] ॥१५॥

पर्यो काल तुंडा[8]। बनैं रुंड मुंडा।
तऊ बात जैसे। सुनो कान तैसे ॥१६॥

तोटक

सुनि खान बिचारति मूढ बली। अबि छोर तुरंगम घात भली।
फिरि पाइन सों[9] निज वार करौं। हुइ तीर किधौं कर माहि[10] धरौं ॥२०॥

बस को करि लै निज सैन बरौं। चिरकाल इहां अबि मैं न थिरौं।
सभि सैन रही रुकि सूरन ते। शुभ काज बनै अबि तूरन[11] ते ॥२१॥

हय ऊपर मो[12] बल लाग नहीं। मिलि दोइ तुरंग लरंति सही।
चित बीच बिचार शिताब करी[13]। बलवान तज्यो हय तांहि घरी ॥२२॥

बल ते पकर्यो खग वार कर्यो। निज हाथ उभारति नेर धर्यो।
गुर पीन उरु तकि मारति भा। ढिग होइ सु बाहु पसारति भा ॥२३॥

---

१. अपराध। २. क्षमा करना। ३. तुम्हारे खंडे के दो टुकड़े हो जाएँगे। ४. (गुरु जी ने कहा) जो कायर हो, (युद्ध से) डर उसे लगता है। ५. हम युद्ध करना चाहते हैं। ६. शस्त्र। ७. (अब तू) घर नहीं जा पाएगा। ८. तू काल के मुंह में पड़ा है। ९. पांव से चल कर। १०. या निकट होकर पकड़ लूं। ११. शीघ्र। १२. घोड़े पर चढ़े रहने से। १३ जल्दी की।

हरिगोबिंद देखति धीर धरी। पग साथ शिताब रकाब करी।
दह सेर सु तोल बिखे जुगते[१]। बल दीरघ संग तहां लगते ॥२४॥

दोहरा

हुती भरत को[२] पीन बड खडग लग्यो तिह संग।
सर्यो न कारज कुछ तबै निफल्यो वार कुढंग ॥२५॥

पाधड़ी छन्द

पुन पैंदखान कुपि कै प्रचंड। खंडा उभारि बल बांहु दंड।
करि तुरत फुरत कूदयो उतंग। चित चहि प्रहार प्रभु के सु अंग ॥२६॥

श्री हरिगोबिंद अति शीघ्र कार। ढाला बिलंद कर लीनि धार।
रिपु खडग आवतो निकटि देखि। तिह संग रोक करि बल विशेख ॥२७॥

करि निफल शत्रु की वार फेर। धरि धीर खरे तिस के अगेर।
तबि पैंदखान चित चिंत पाइ। नहिं सर्यो काज सभि बाद जाइ ॥२८॥

पुन छिप्र[३] उछल इत उत तकाइ। खर खडग प्रहारन करति दाइ।
हुइ दिशा दूसरी रिस बिसाल। कर को उभारि मार्यो कराल ॥२९॥

गुर बीर बहादुर धीर साथ। करि छिप्र ताहिं दिश कीनि हाथ।
बड सिपर सवा सिर फूल जोइ। तिह लग्यो खडग बल अधिक सोइ ॥३०॥

खंडा दुखंड[४] टूट्यो प्रचंड। रहि हाथ मुशट बड बांहु दंड।
श्री हरिगुबिंद अविलोक तांहि। अबि हतन हेतु किय वार नांहि[५] ॥३१॥

ह्वै गो लचार[६], निज चित बिचार। बल बांहु करनि गुर सों जुझार।
दिस बाम जाइ तबि पैंदखान। गुर को तुरंग गहि डारि पान[७] ॥३२॥

जहिं हुतो तंग[८] इक हाथ पाइ। पुन दुतिय हाथ ऊपर उठाइ।
भर करि सु कौर जुग करन मांहि। बल ते उठाइ गेरंनि चाहि ॥३३॥

समरथ उचाइ साकहि सुमेरु[९]। तिस ते न उठहिं गुर गुर बडेरु[१०]।
बल अधिक करति भरि कौर मांहि। टिक रहे तुरंग हाल्यो सु नाहि ॥३४॥

---

१. दोनों रकाबों का वजन दस सेर था। २. कांसी की। ३. शीघ्र। ४. दो टुकड़े होना। ५ (निःशस्त्र देखकर) गुरू जी ने अब उस पर वार न किया। यह वीरता का आदर्श है। ६. लाचार, विवश। ७. हाथ डाला। ८. काठी को कसने वाली पेटी। ९. जो (कोई) समर्थ (व्यक्ति) सुमेरु को भी उठा सकता हो। १०. गुरु इतने भारी हैं, कि वह भी उन्हें नहीं उठा सकता।

श्री हरिगोबिंद पकरंति जानि[1] । हय के छुटान हित जतन ठानि ।
दोनहु रकाब मारी सु जोरि । चंचल तुरंग किय चलनि जोर ॥३५॥

सो खा रकाब थिर भा सथान । अस अधिक बली भट पैंदेखान[2] ।
गुर लख्यो तुरंग नहि चलन दीनि । कर जोर पाइ बस अपन कीन ॥३८॥

खर खडग प्रहार सु लगहि नाहिं । दिश बाम बिखै अति निकटि आहि ।
चितवंति गुरू रिपु हतन हेतु । को करहिं जतन रहि जंग खेत ॥३६॥

ततकाल गरुव[3] ढाला संभालि । करि को उठाइ करि बल बिसाल ।
सिर पैंदखान के हतन कीनि । नहिं सकि सहार कर छोर दीनि[4] ॥४०॥

थिर भयो कुछक बहु घूमि घूमि । गिर पर्यो भूम बहु भूमि भूमि ।
जानून भार[5] ह्वै कै बिहाल । छित[6] पर सु पर्यो मुरछा बिसाल ॥४१॥

तन स्वेद सहित श्री गुर निहारि । सुध बिनां भयो नहिं कीन वार ।
ततकाल तुरंगम छोरि दीनि । तर उतरि गुरू रण धरम चीनि[7] ॥४२॥

जबि छुटी मूरछा सुध सरीर । दुहि दिशनि सैन के पिखति बीर ।
गुर केर जु अंतहिपुर बिसाल । चढि तुंग अटारनि तातकाल ॥४३॥

अवलोकि झरोखनि महिं सत्रास । श्री गुर मनाइ धरि करि बिसास[8] ।
श्री नानक आदि होवहु सहाइ । समुदाइ तुरक ते लिहु बचाइ ॥४४॥

तुरकानि हान को जतन कीनि । तबि खरो भयो पैंदा सु चीन ।
बोले बंगार 'सुन रे पठान' । मम वार देहु बनि सावधान ॥४७॥

करि लोन तीन, तैं बल लगाइ । तबि पैंदखान बोल्यो रिसाइ ।
क्या करो वार गहि लेउं अंग[9] । अबि के न छुटहु गहिहौं कुढंग ॥४८॥

लै हौं उठाइ बस करि महान । करि लिजै ओज दै हौं न जान ।
नहि गह्यो गयो छुटिगा सुखैन । सुनि गुरू कोप ते लाल नैन ॥४६॥

पहुंचे समीप इति उत फिरंति । करि सिपर खान आगे करंति[10] ।
गुर चहति एक ही बार संग । चीरहिं सरीर करि प्रान भंग ॥५०॥

---

१. पकड़ा जान कर (घोड़े का तंग) । २ शत्रुपक्ष के वीरों की प्रशंसा करना कवि की एक विशेषता है । ३. भारी । ४. हाथ छोड़ दिये । ५. घुटनों के बल (भार) । ६. भूमि । ७. गुरु जी ने सभी युद्धों में धर्म-युद्ध के नियमों का पालन किया, यहां भी वे मूर्छित शत्रु पर वार नहीं करते । ८. विश्वास रख कर । ६. पैंदखान ने कहा, आप वार क्या करेंगे, मैं आप को पकड़ लूंगा । १०. खान ने ढाल आगे की ।

तबि पैंदखान चित चाहि धारि। गुर गहौं अबहि कारी मझार।
ले चलौं वहिर नहिं को छुराइ। दल खरे महद सभि धाइ आइं ॥५१॥

इव चितवि रोकिबे ढाल त्यागि। करि फुरति तुरत गुर गहिन लाग[1]।
अवकाश पाइ श्री हरिगोंबिद। खर खग प्रचंड तडिता[2] मनिंद ॥५२॥

बल ते उभारि शत्रु सरीर। कीनो प्रहार दीनो सु चीर।
कलवत्र मनो लै कै त्रखान। जिम करति दोइ काशट महान ॥५३॥

जिम सबुनीगर[3] लै लोह तार। साबुन दुखंड करि बिन अवार।
जबि गिरन लाग कहिं गुर उदार। तुव तुरक जनम कलमा उचार ॥५४॥

दोहरा

गिरन लग्यो पैंदा कहै स्री गुर तुव तरवार।
भई रूप कलमा अबहि करीयहि मोहि उधार ॥५५॥

(रा० ८ : २७)

(कालेखां वध)

दोहरा

सूर हज़ारक बचे जबि कालेखांन बिचारि।
लरों आप गुरु संग मैं मरौं कि लैहों मारि ॥१॥

भुजंगप्रयात

जबै नेर ढूके[4] मिलैं तुंड दौना। तबै एक बारी हनो जौन कौना।
दडादाड गेरो क्रिपानै संभारो। तछामुच्छ काटो जथा काठ आरो[5] ॥१८॥

फिरैं देति बारूद गोरी खतंगा। दए दीह नेज़े हनो शत्रु अंगा।
गुरू बीच ठाढे बिधीचंद तीरं[6]। खरो बिप्र जाती धनू संधि तीरं ॥१९॥

अमृतधुनि

श्री हरिगोबिंद बदन को देखि बुद्धि बिध सुद्ध[7]।
तुरकनि संग बिरुद्ध कै[8] बिधीचंद धरि क्रुद्ध।

---

१. इस प्रकार सोच कर जो ढाल आगे की थी, वह छोड़ कर, फुरती के साथ गुरु जी को पकड़ने लगा। २. तडित समान तलवार उठा कर शत्रु-शरीर पर प्रहार किया और उसे चीर दिया। ३. जैसे साबुन बनाने वाले। ४. निकट आए। ५. जैसे आरे से लकड़ी काटी जाती है। ६. निकट। ७. शुद्ध बुद्धि वाला। ८. विरोध करके, मुकाबले में आकर।

बिधीचंद धर क्रुद्धध[1], धनु[2] करि उद्धधि[3] धरि[4] सर संधध[5] ।
धर[6]मन बुद्धध[7] धिर जिस मद्धध[8] धिर[9] अरि मद्धध[10] ।
धरा सु जुद्धध[11] धर सर सुद्धधि[12] धरि रिपु ब्रिद्धध[13] ।
धसकति जोधध धरकति बोधध[14] धिधकध[15] क्रुद्धध धमकति[16] ।।२७।।

चाचरी

तुफंगैं । उतंगैं । उठाई । चलाई ।।२८।।
कमानैं । सु तानैं । प्रहारैं । संहारैं ।।२९।।
जुझारैं । प्रचारैं । उभारैं । दुधारैं ।।३०।।
प्रचंडे । उमंडे[17] । घमंडे । सुखंडे[18] ।।३१।।
महाने । प्रहाने । भयाने । पलाने[19] ।।३२।।

साबास

चलति खतंगहिं । भट तनु भंगहिं ।
त्ररन सुरंगहिं । गिरति तुरंगहिं ।।३३।।

गहिति क्रिपानहिं । खिच करि म्यानहिं ।
बल करि बाहति । रन फिर गाहति ।।३४।।

हति हति गोरनि[20] । मरि जुग ओरनि[21] ।
धर पर डारति । फिर फिर मारति ।।३५।।

सतिगुर हेरति । हय निज प्रेरति ।
करखति चांपहि[22] । करि बल आपहि ।।३६।।

तुरक निबेरति । गिरि गिर टेरति ।
परति कराहति । जल कहु चाहति ।।३७।।

नभ महिं हूरनि । पिखि बर सूरनि ।
चख जिन चंचल । नचति द्रिगं चल[23] ।।३८।।

---

१. क्रोध धारण करके । २. धनुष । ३. ऊंचा करके । ४. रख कर । ५. संधान किया, जोड़ा । ६. धर्म । ७. ज्ञान धारण करने वाला, ज्ञानी । ८. जिसका हृदय धैर्य धारण करने वाला है—(धीरज) । ९. पराक्रमी । १०. शत्रु को दल देना । ११. युद्ध किया । १२. शुद्ध तीर साध कर । १३. बड़े-बड़े शत्रुओं को बींध दिया । १४. धैर्य धारण करने वाले । १५. धकेलता है । १६. धमकाता है । १७. तीखे योद्धा उमड़ आए । १८. अहंकारियों को मारने लगे । १९. डरपोक भाग गए । २०. गोलियां । २१. दोनों ओर से । २२. धनुष खींचते हैं । २३. पलकें ।

शुभति सु अंजन। करि मन रंजन।
नचति सु खंजन[1]। कर जनु कंजन[2] ॥३९॥

भट बर टोलति[3]। चरब तमोलत[4]।
हसि हसि बोलति। हरखति डोलति ॥४०॥

करति बधाइनि[5]। बहु चित चाइनि।
कर महिंदी जुति। बर नहुं[6] दी क्रित ॥४१॥

दोहरा

इस प्रकार जुग सैन को रण माच्यो घमसान।
निबरि गए बहु सूरमा आपस मैं लरि हान ॥४२॥

नर तुरंग गन म्रितक के लागे बड़ अंबारि[7]।
भीखन भयो सथान सभि लाल रंग को धारि ॥४३॥

आमिख आंत्रनि मिझ ते श्रोणत केर प्रवाह।
भई अधिक दुरगंधता गन हाडनि जुति तांहि ॥४४॥

ऐंचत मास गुमाइ[8] गन लरि आपस महिं स्वान।
चाटति श्रोणत मीझ को त्रिपत होति करि खान ॥४५॥

कंक बंक बोलति उड़ति, काक खाहिं बहु टेरि।
ग्रिद्ध ब्रिद्ध भरमहिं टिकहिं मानव हयनि उधेर[9] ॥४६॥

कहौं कहां लगि जंग को लरति बाहिनी दोइ।
म्रितक भए कुछ बच रहे नर गिनती के जोइ ॥४७॥

कालेखां अरु गुरू को भयो समुख जिम जुद्ध।
सुनहु संत मन दै सभै करिकै सुद्धि सु बुद्धि[10] ॥४८॥

(रा० ८ : ३०)

दोहरा

लगी सैन सों सैन तबि हथ्यारन कहु मारि।
कालेखां सनमुख गयो जहिं सतिगुरू निहारि ॥१॥

---

१. खंजन जैसे नेत्र। २. हाथ कमल जैसे। ३. योद्धाओं को वर रूप में पाने को खोजती हैं। ४. पान चबाती हैं। ५. आपस में बधाइयां देती हैं। ६. नाखूनों की बनावट बड़ी सुन्दर है। ७. ढेर। ८. गीदड़। ९. मनुष्यों और घोड़ों को उधेड़ कर। १०. शुद्ध बुद्धि से।

चौपई

चंचल करति तुरंग नचायो। श्री हरिगोविंद सनमुख आयो।
पहुंच्यो निकटि धनुष संभारति। खर खपरा गुन महिं संचारति[1] ।।२।।

गुरनि बंगारति बाक उचारे। प्रिथम तुमहु बहु खान संहारे।
जे तीरन को अधिक चलावति। सभि महिं बड बलवान कहावति ।।३।।

अबि मैं चलि आयो तुम ओरा। कालेखान नाम लखि मोरा।
तुम को पकरनि शाहु पठायो। बहु लशकर ले चढि मैं आयो ।।४।।

कै सभि को पलटा रण लै हौं। नाहिं त प्राण आपने दै हौं।
सावधान हुइ सहु मम बाना। हतों महां तीखन हित हाना[2] ।।५।।

श्री हरिगोविंद सुनि मुसकाए। जिस मग पूरब तुरक पठाए।
सो अबि बंद नहीं कुछ भयो[3] । सभिनि आइ भट रण करि लयो ।।६।।

नासहि शाहु बाहिनी सारी। हम ठांढे अबि तोहि अगारी।
जसु बिद्या तीरनि की पाई। सो अबि करहु देहु दिखराई ।।७।।

पूरब सहैं वार सर तोरा। पीछे करहु बिलोकन मोरा।
इम सुनिते श्रुति लउ धनु ताना[4] । बल ते त्याग्यो तीखन बाना[5] ।।८।।

छोरति बोल्यो कालेखाना। लेहु पता जिम विद्यावाना।
मारा ही जानहु धर गिर्यो। आवति सर सतिगुरू निहर्यो[6] ।।९।।

मसतक छुवति सु गयो अगारे। खर खपरा कुछ मास उतारे।
बूंद रकत की निकसी लाल। मनहुं तिलक जै को लगि भाल[7] ।।१०।।

रिदै क्रोध तबि दून चऊना[8] । कर्यो निकासन सर खर तूना[9] ।
तूरन[10] पूरि कान लगि मारा। पिखि सरूप को डर बहु धारा ।।११।।

तानति धनु को टरि करि चाला। प्रेरति बाजी बहु बलवाला।
छूट्यो तीर गुर कर ते ऐसे। बिषधर रिस धरि उडिगा जैसे ।।१२।।

तुरक गयो बचि तुरंग संहार्यो[11] । लग्यो उदर महिं पार पधार्यो ।।१३।।

---

१. चिल्ले में जोड़ता है। २. मारने के लिए (यहां भी कवि ने शत्रु-पक्ष के वीरों की वीरोक्तियों का वर्णन किया है। ३. जिस मार्ग से पहले तुर्क गए हैं, वह मार्ग अभी बंद नहीं हुआ—अर्थात् जैसे हम ने पहले तुर्कों को मारा है, वैसे ही तुम्हें भी मारेंगे। ४. कान तक धनुष खींचा। ५. तीखा बाण। ६. देखा। ७. मस्तक पर थोड़ा सा खून निकल आया है, मानो विजय तिलक लगा है (कितनी भव्य उपमा है)। ८. दुगना—चार गुणा। ९. तश्कर। १०. शीघ्र। ११. मार दिया।

कालेखान उतर करि खर्यो। अपना आप संभारन कर्यो।
कहति भयो अबि होति अनीती। जे तुम करहु जंग की रीति ॥१४॥

खरो धरा पर मैं हय बिना। तुम चढि रहे बेग जिस घना[1]।
जेकरि सम हुइ रण को करहु। तजहु तुरंग चरण पर थिरहु ॥१५॥

तौ[2] मैं करौं खडग संग्रामा। तकि बहु दाव दहिन अरु बामा।
जे नहिं मानहु चहु संहारा। तौ करि लेहु आपनो वारा ॥१६॥

जथा प्रथम भा तीरनि संग। तथा खडग को चहीयहि जंग।
होइ बराबर हेरहु वार। अपनो कीजै बल संभारि ॥१७॥

सुनि[3] सतिगुर कालेखां बैन। तज्यो तुरंग जिनहुं कुछ भै न।
कह्यो तोहि चित हौस न रहै। लरहिं तथा जिम अबि तूं चहैं ॥१८॥

खडग सिपर दोनहुं कर धारी। भए समुख दोनहुं भट भारी।
द्वै[4] दल के दोनहुं सरदार। दोनहुं कै उतसाह उदार ॥१९॥

दोनहुं बीर बीर रस ढरे। दोनहूं दाव जंग को करें।
दोनहुं के आनन पर लाली। दोनहुं विद्यावान बिसाली ॥२०॥

दोनहुं जीतन के अभिलाखी। दोनहुं को दल देखति आंखी।
दोनहुं इत उत बिचरन लागे। दोनहुं बाम दाइं हुइं आगे ॥२१॥

दोनहुं पटेबाज़ की विद्या। करि करि दोनहुँ चाहति छिद्या[5]।
दोनहुं चरन चलाकी करैं। वार रोक दोनहुं ढिग अरैं ॥२२॥

सिपर सिपर सों दोनहुं भेर। कर दोनहुं चमकति शमशेर[6]।
जुटे बीर दोनहुं सम शेर[7]। जनु दोनहुं बलि त्रिखभ बडेर[8] ॥२३॥

सिंग[9] खडग ते दोनहुं अरे। मनहुं मसत द्वै कुंजर भिरे[10]।
भुज दंडन हैं सुंडा जिनके। तीछन दसन असिनि वड जिनके[11] ॥२४॥

---

१. ऐसे घोड़े पर चढ़े हो जो बहुत वेग वाला है। २. युद्ध करते हुए कालेखां की वीरता, साहस, निर्भयता, धीरता आदि का भी कवि ने खुल कर वर्णन किया है—चाहे वह शत्रु-पक्ष से ही है। ३. उसके मुकाबले में श्री हरिगोबिंद की वीरता और साहस का महत्त्व स्वयं बढ़ जाता है। वे सच्चे धर्म योद्धा की भांति उससे युद्ध करते हैं—युद्ध-नीति और युद्ध-कुशलता दोनों के साथ। ४. यहां भी दोनों की वीरता और युद्ध का उल्लेख किया गया है। ऐसे शत्रु पर विजय पाना ही अद्भुत वीरता है। ५. काटना। ६. तलवार। ७ सिंह के समान। ८. बड़े बली बैल हैं। ९. जो खडग रूपी सींगों से एक दूसरे से अड़ पड़े हैं। १०. (अथवा) मानो दो मस्त हाथी आपस में लड़ पड़े हों। ११. तलवारें ही उनके तीखे दाँत हैं।

कालेखां उछर्यो बल धारे। खडग उभारि गुरू ललकारे।
रहु ठांढो मार्यो अबि जानि। नहिं जैहैं अबि लै करि प्रान ।।२५।।

सतिगुर अधिक शीघ्रता धारी। करति चलाकी सिपर अगारी।
रोकि वार निज खडग प्रहारा। कालेखान तबै बल धारा ।।२६।।

लियो खडग पर खडग जु मारा। निकसति भई ब्रिंद चिनगारा[1]।
मानहुं चमकति रैन टनाने। टूटे न दोनहुं बचे महाने ।।२७।।

गयो फरक करि कालेखान। भयो निफल द्वै वार क्रिपान।
थकति न दोनहुं जोधा भारी। पुन अभिलाखति करनि प्रहारी ।।२८।।

लाइ घात पुन ढूक्यो नेर। दोनहुं कीनि भीम भट भेर[2]।
अंतहिपुर हेरति है सारा[3]। त्रास तुरक ब्रिंदनि ते धारा ।।२९।।

गुरू बीर अरु तुरक जि बाचे[4]। रण हेरत संसैं चित राचे।
अर्यो तुरक नहिं मार्यो गयो। घात खडग को फिरि फिरि कियो ।।३०।।

बिधीचंद आदिक बड जोधा। पिखहिं तुरक उर बाढहि क्रोधा।
सभि के मन की सतिगुर जानी। चाहति भए करनि रिपु हानी ।।३१।।

आइ पर्यो करि खडग प्रहार। कालेखान महां बल धारि।
श्री हरिगोबिंद ढाल संभालि। रोकि वार को मारी भाल ।।३२।।

बल ते हनी, गिरन लगि पाछे। कराचोल बाह्यो तबि आछे[5]।
बिहबल ते न बचायो गयो। लग्यो सीस चीरति वपु भयो ।।३३।।

एकै आंख, एक ही श्रोण। इक कर, इक पग खंड सु दौन[6]।
अरधो अरध सु चीरन करती। पुन तरबार बरी कुछ धरती ।।३४।।

हुइ जुग खंड परे तरफंते। गयो भिशत को भा सुखवंते।
देखति जै जै बाक उचारा। बज्यो फते को अधिक नगारा ।।३५।।

बचे तुरक कुछ चले पलाई। भूप बिना को करै लराई।
तजि रणखेत निकेत सिधारे। दई सभिनि की सुध रण मारे ।।३६।।

जहिं कहिं बिधवा गन तुरकानी। सिर मुख पीटति दुखी महानी।
उत काबल अरु दिल्ली देश। चाकर ग्रामनि नगर अशेश ।।३७।।

---

१. चिंगारियां। २. भयानक मुकाबला, टक्कर। ३. गुरु जी के घर को स्त्रियां भी देख रही थीं। ४. गुरु जी के और तुरक सेना के योद्धा, जो बच रहे थे। ५. ऐसे ज़ोर से मारी कि पीछे गिरने लगा, तब तलवार अच्छी तरह दे मारी। ६. दो टुकड़े हो गया।

शोक[1] बास करि बिच तुरकाने। भ्रात पितादि बंधु जिन[2] हाने।
किस को पुत्र, भतीजा कांहू। भए संहारण संघर मांहू ॥३८॥
गुरू बीरता जाहर भारी। बच्यो कौन जो गयो अगारी।
जहां कहां तुरकन के ओक[3]। कीन अखारो कंजर शोक[4] ॥३९॥
नाइण देति तलीमन नाचति[5]। है है ओह गाइबो माचति[6]।
सिर मुख को पीटति इक बारी। उठहिं ताल जनु मिल मिल भारी ॥४०॥
इस[7]बिधि की गति लहि तुरकाना। भनहिं सिआने भा बहु हाना।
चार जंग मैं दियो खपाई। सय्यद मुगल खान समुदाई ॥४१॥
अबि भी पठहि शाहु जे लशकर। सरब निबेरहिं[8] रन को करि करि।
नहीं चाकरी जो अबि करिहैं। प्रान सहित सो तुरक उबरिहैं ॥४२॥
नाहिं त दै हैं गुरू खपाइ। शाहि क्रोध करि तहां पठाइ।
इस ते आदि अनिक बिधि बाती। करहिं तुरक मिलि संकट छाती ॥४३॥
सतिगुर कालेखां जबि हयो। चतुर घटी दिन तबि रहि गयो।
चहुं दिशि पुरि के दारुन खान। धुकि धुकि उठिबे लगे मसान ॥४४॥
जंबुक बोलति त्रास उपावैं। मास खाइ खग ब्रिंद भ्रमावैं।
कुछ्क ऊन लछ तुरक संहारे। गुर के बीर सात सै मारे ॥४५॥
पुन सतिगुरु कीनसि बिसराम। जियति सुभट सभि लह्यो अराम।
कमर कसा तिम ही सवधाना। श्रमति जि पांच जाम रण ठाना ॥४६॥

(रा० ८ : ३१)

वीर रस सम्बन्धी कुछ अन्य छन्द

(विधीचंद की गर्वोक्ति)

चौपई

श्री गुरु! तुम सहाई जे पाऊं। कहां शाहु असु[9] रवि को ल्याऊँ।
सुने बरुन[10] ढिग सुंदर घोरे। तहिं ते ल्याई सकौं तुम जोरे ॥१५॥

---

१. तुर्कों में शोक छा गया। २. जिनके पिता भाई आदि मारे गये थे। ३. घर। ४. शोक रूपी कंजर ने उसे अखाड़ा बना लिया (वहां नाचने लग पड़ा) अर्थात् वहां शोक छा गया। ५. नाइन जो शिक्षा दे रही है उसका अनुकरण हो रहा है। (सियापा करते हुए पहले नाइन बोलती है और पीछे दूसरी स्त्रियां पीटती हुई वे शब्द बोलती हैं)। ६ है है, ओह ओह आदि का गाना हो रहा है, अर्थात हाय हाय करके रो पीट रही हैं। ७. तुर्कों की जिस दुर्दशा और उनके घर वालों के शोक का जो चित्रण यहां किया गया है, उससे कवि की यवन अत्याचारों के प्रति विद्रोही भावना का पता चलता है। ८. नष्ट कर देंगे। ९. घोड़े। १० वरुण।

रावर की सहाइता पाइ। को अस काज जे न बनि जाइ।
सुनि बिधीए ते भए प्रसनं। हनुमत सम तुम को नहिं अंन[1] ।।१६।।
(रा० ७ : २६)

(केसरीचंद का प्रण)

सुनि मंडिसपति ते अस बानी। रिस्यो केसरीचंद बखानी।
क्या मत देति कातुरन[2] केरी। गुर पक्खी[3] बुधि लखीअति तेरी ।।२८।।
प्राति होति हेरहु रण मेरा। लिहु सभि को दल संग घनेरा।
रवि असतन ते पूरब जबं। जे नहिं लोहगड तोडौं तबै ।।२६।।
तौ निज पित ते जनम्यों नाहीं। मुख न दिखावहुं राजनि माहीं।
शालगराम अवज्ञा दोश। लगहि मोहि जे हटि हौं रोस ।।३०।।
लात प्रहारनि करहि जु धेनु। बरजहि बेदन बिद्याधैन।
देहि सती को पतिब्रत टारे। गन देवन की निंद उचारे ।।३१।।
कन्या मारन दिज संहारनि। करनि संत सों द्रोह अकारन।
चलति लोहगड ते मुख फेरे। ऐ सभि पाप चढहिं सिर मेरे ।।३२।।
कहां खालसा सिंह जु थोरे। देखहु दल बिलंद निज ओरे।
आटे बिखै मेलियति लौन। अंतर इतो लखहि नहिं कौन ।।३३।।
(रि० ४ : २१)

(पैंदेखान की उत्साहपूर्ण उक्ति)

रिपु लशकर सलिलापति[4] भारो। गिर मंदर[5] सम बरौं मझारो।
बाहु श्रिग ते मथि करि डारौं। रुंड मुंड रण खेत बिथारौं।
(रा० ५ : ६४ : ३७)

(मुगलों एवं पहाड़ी राजाओं की सेना का प्रस्थान)

कवित्त

दल जे दिलेश[6] अचलेश[7] दोऊ मिलि धाए,
धुरवा से[8] धौंसा की धुंकार उठै घोरि घोरि[9]।

१. अन्य। २. कायरों की सी मति। ३. गुरु के पक्ष की। ४. सागर। ५. मंदराचल की भांति—(मथने की)। ६. दिल्लीपति—औरंगजेब। ७. पहाड़ी राजा। ८. बादल जैसे। ६. भयानक।

बांधे बड़े ठट्ट भट्ट घट्ट के संघट्ट जुट[1],
लोह[2] की चमक छटा छबि भांत कोरि कोरि[3]।
गोरे परे ओरे धूम अधिक अंधेरो धूर,
हलके हरौल[4] हला हली[5] उठै ठौरि ठौरि।
तौ लौ ही बनाउ श्री गुबिंदसिंह राउ जौ लौ,
छोरे न समीर तीर जेहि[6] माहिं जोरि जोरि[7]।
(रा० ६ : १ : १३)

(श्री हरिगोबिंद का युद्ध)

सवैया

यौं कहि पीस के दांत परे गुरु ऊपर एक ही बारि घने।
होति भए थिर थंभ मनो गन छोरति बान को कोप सने।
अग्र जु आवति तां उथलावति ज्यों बड़ गाज मुनारे हने।
कान प्रमान लौ[8] तानि चलावति मारे अनेक ही कौन गिने।
(रा० ६ : ११ : २८)

(युद्ध)

पाधडी

सुनि तुरक चपे[9] चाले अगाइ। इक बार दौरि रौरा मचाइ।
चमकंति खडग पकडंति ढाल। छटकंति तुपक बमकंति ज्वाल ॥२४॥

सरकंति[10] सूर, हरखंति हूर। दरडंति दीह[11], गरजंति भूर।
उछलंति जाति, मारंति शत्रु। खडकंति मिलति टुटियंति अत्र[12] ॥२५॥

इक बार शलख छोरी तुफंग। पुन खडग गहे करि म्यान नंगि।
कटियंति अंग, गिरियंति भूमि। लटकंति बीर, गिर परति घूमि ॥२६॥
(रा० ६ : १०)

१. बड़े ठाठ बांधकर बादल की तरह योद्धाओं का दल इकट्ठा होकर। २. शस्त्र। ३. करोड़ों करोड़ों; बिजली की चमक चारों ओर से, कभी इधर से कभी उधर से उठती है। ४. सेना का अग्रभाग—आगे चलने वाला भाग, (हरावल)। ५. हलचल, शोरोगुल। ६. चिल्ला (फारसी-जिह)। ७. जोड़-जोड़ कर। ८. कान तक खींच कर। ९. खीझे। १०. आगे बढ़ते हैं। ११. बहुत सों को दरड़ देती है। १२. शस्त्र मिल कर खड़कते हैं और अस्त्र टूटते हैं।

चाचरी

तुफंगैं	। निसंगैं	। उठाई	। चलाई ।।३५।।
डुगोरी	। कि छोरी	। पलीते	। धुखीते ।।३६।।
उलट्टे	। पलट्टे[१]	। दबट्टे[२]	। न लट्टे[३] ।।३७।।
कडाके	। तडाके	। सु नेजे	। जु तेजे ।।३८।।
उठाए	। भ्रमाए	। लगाए	। धसाए ।।३९।।
क्रिपानैं	। महानैं	। निकासी	। प्रकाशी ।।४०।।

सिरखिंडी

पैंदेखां बड जोधा पर्यो रिसाई कै।
खडग हाथ बड क्रोधा करहि प्रहारि कै।
जिन आगा बड रोधा[४] मारे धरि परे।
जाती मलक जि प्रोधा 'हति हति' तां ररे[५] ।।४७।।

नंदा सिक्ख पिरागा तेग़े धूहि कै।
सुभटनि काटनि लागा तुरंग फंदाइ कै।
मारे रोकति आगा झट पट गिर परे।
जंग भीम बड जागा जोगनि हसति हैं ।।४८।।

लोहू खप्पर भरति अघावति पावती।
रिदे हरख को धरति सु तालि बजावती।
भूत प्रेत गन फिरति खाइ डकरावते[६]।
आंत्रन माला करति हसति बहु नाचते ।।४९।।

भेड पइआ तरवारीं बरछे ठेलिकै[७]।
अति काली किलकारी आमिख भक्खिकै।
आंत्रै गहति उडारी ग्रीभ कि चंग[८] हैं।
काक रु कंक पुकारी दारुन शबद ते ।।५०।।

(रा० ६ : ११)

---

१. पलट कर। २. दबाए। ३. हटे नहीं। ४. रोका। ५. उसने कहा 'मारो मारो'।
६. डकारें मार कर (तृप्त होकर)। ७. तलवारें और बरछे आगे निकाल कर। ८. चील।

नराज

भरे पठान कोप मैं फिरे सु मोर[१] खाइ कै।
तडा भडी तुफंग ते मचाइं बीर घाइ कै।
इते गुरू अगार को सिधारि पाऊं डारि कै[२]।
परे जुझार दौरिकै क्रिपान को प्रहारिकै ॥१८॥

तुरंग संग अंग भंग सूर प्रान छोरिकै।
भए अरोह[३] देवलोक शोक त्यागि लोरिकै[४]।
फिरैं कबंध[५] अंध से गिरैं भवारि खाइ कै[६]।
पुकार मारि मारि कै कटैं क्रिपान घाइ कै ॥१९॥

कटैं सिकंध[७] दंड[८] बाहु, हाथ अंगुरीन ते।
गिरंति सीस ग्रीव ते, कि तुंड[९] काटि दीन ते।
उरू कि गोडियान ते निकंदि देति डारि कै।
गुमाय मास खाति ब्रिंद जोगनी डकारि कै ॥२०॥
(रा० ६ : १२)

विचित्रसिंह युद्ध

(तैयारी)

निसपालक छन्द

श्री गुर प्रयंक[१०] निस के बिच सदीव हीं।
होवहिं सुचेत रखवार थित थीव हीं[११]।

बिंसत सु पंच गिनती तिनहुँ जानिये।
जागति रहंति गहि आयुध सु पानिये[१२] ॥२१॥

नराज

तिनहुं मझार एक है बचित्रसिंह सूरमा।
बली बिलंद बाहु दंड शत्रु ते गरूरमा[१३]।

१. मोड़। २. आगे को पांव रखकर चले—तुरकों पर जा पड़े। ३. चढ़ गए—स्वर्ग को चले गए (मर गए)। ४. चाह कर। ५. धड़। ६. चक्कर खा कर। ७. कंधे। ८. भुजाएँ। ९. मुंह। १०. पलंग। ११. उनके पास नित्य ही सावधान रखवाले स्थित रहते थे। १२. हाथ में। १३. शत्रु पर भारी है।

सु राजपूत जाति ते मुछैल छैल[1] जानिये।
क्रिपान ढाल अंग संग जंग मैं महांनिये ।।४।।

दोहरा

पोशश पट बहु रूप की पहिरति अपने अंग।
पिखि प्रभु कहिं बहुरूपीआ भयो सु संग्या[2] संग ।।५।।

चंचला

श्री गुरू बिलोक कै बिलंद ओजवान जानि।
सामहे थिर्यो सु बीर हाथ धारि आयुधान[3]।
मानि है प्रभु सुबाक है अनंद धीर मांहि।
बासतो हज़ूर नीति भाउ दीह[4] चीत जांहि ।।६।।

ललितपद

बिद्या नेज़े मारनि की महिं बुद्धिवान बड जानै।
चढि तुरंग कै पैदल ह्वै करि अधिक भ्रमावनि ठानै ।।७।।

नेजा गहे खरो जो सनमुख श्री प्रभु निकट हकारा।
आउ बचित्रसिंह बड जोधा तुव सिर भार उदारा ।।८।।

उत सैलेंद्रनि[5] को मतंग[6] बड, इत ते केहरि थीजै।
महां दाड नेजा खर दै हैं[7] गज हतिबे को कीजै ।।९।।

आयुध भाला भाल प्रहारहु[8] मुर है[9] जिसते हाथी।
नहीं कदाचित सनमुख आवै पीछे मारै साथी ।।१०।।

धरि धीरज दीरघ बल करिकै शंका त्यागि प्रहारो।
त्रास न करहु प्रयास धरहु अस जसु को पाइ सुखारो ।।११।।

सुनि बचित्रसिंह भयो प्रफुल्यत तबि दोनहुं कर बंदे।
महाराज की आइसु जैसे तिम ही करौं निकंदे[10] ।।१२।।

महि महिं इह हाथी क्या बपुरो जो अर सकहि[11] अगारी।
सुन्यो सुरग महिं इक एरावत, तिस को लैहौं मारी ।।१३।।

---

१. बड़ी मूछों वाला। २. बहरुपिया संज्ञा वाला हो गया। ३. शस्त्र। ४. बहुत अधिक। ५. पहाड़ी राजाओं। ६. हाथी। ७. तीखे नेजे रूपी (शेर की) भारी दाढ़ देंगे। ८. चौड़ा नेजा माथे में मारो। ९. मुड़ना, वापिस जाना। १०. मारूं। ११. अड़ सके।

अपनि खजाने बिच ते सतिगुर तबि नेज़े मंगवाए।
किसी वलाइत भए त्यार सो कीमत अधिक बनाए ॥१४॥

बेग़ा बिखै बहु कली पूर करि ऊपर पै लपटाए[1]।
दुहरे होइ बनहिं पुन सरली नहिं टूटहिं बल लाए[2] ॥१५॥

परे बंद बहु चामीकर के नग तिन पर जरवाए।
धन दस सपत सहस्रै[3] लाग्यो बाशक[4] सम दरसाए ॥१६॥

श्री प्रभु दोनहुं लए हाथ महिं परखहिं तोलन कीना।
कुंजर के मसतक को फोरनि इक तिन महिं ते दीना ॥१७॥

फल फ़ुलाद कीमत बहुते की[5] लोहा बीधन वारो।
ले बचित्रसिंह बंदन कीनसि ततछिन भा बल भारो ॥१८॥

पुन बिजीआं[6] घुटवाइ मंगाई सिंहन पान कराई।
पीवति चढ्यो बिसाल अमल[7] तबि, लाली लोचन छाई ॥२८॥

भौहैं चढी कमान मनिंदै[8] मूछन पर कर फेरा।
खडग सिपर ते कमर कसी दिढ बरछा कर महिं फेरा ॥२९॥

करि बंदन पग, भयो अरूढनि बरछा हाथ हुलारा।
दूसर कर महिं बाग तुरंग की ले गुर नाम पधारा ॥३३॥

गज शिंगार कीयो बहु गाढो[9] लोहे संग अछादा।
इत उत सौंडा फेरनि करतो[10], चमक सैफ भट बादा[11] ॥३७॥

एक लाख गिनती को जोधा पुन सतवंज हज़ारा।
संग केसरीचंद सु लैकै हेला घालनि त्यारा ॥३८॥

सुथरी, धौंस, दीरघा, भेरहि, डफ, गन ढोल समूहं।
पटहि, बांसुरी बजी नफीरी[12] भट उमडे हित हूहं[13] ॥३९॥

---

१. बांस में कली भर कर ऊपर तंदी (जानवरों के शरीर से लिए गए पट्ठे आदि) लपेटी हुई थी। २. दोहरे होकर सीधे हो जाते थे पर जोर लगाने पर भी टूटते नहीं थे। ३. सत्रह हज़ार। ४. (शेषनाग) बाशक नाग जैसे। ५. बहुत मूल्य की। ६. भांग। ७. नशा। ८. धनुष की भांति वक्र हो गई। ९. (पहाड़ियों ने) हाथी का अच्छी तरह शृङ्गार किया हुआ था (सजाया हुआ था और लोहे से ढका हुआ था)। १०. सूंड को इधर-उधर करता था। ११. योद्धाओं का नाश करने के लिये बंधी हुई तलवार चमकती थी। १२. युद्ध के बाजे। १३. हल्ला करने को (शोर करने को)।

मारि मारि कहिं रौर पर्यो बड तोमर लए हज़ारा।
खडग सिपर ले फांदन करिते तडभड तुपक उदारा ।।४०।।
(रि० ४ : २५)

दोहरा

दोनहुं दीरघ सूरमे अपर सिंह समुदाइ।
चले लरन के हेतु को जहिं रणखेत बनाइ ।।१।।

चंपकमाला छन्द

दीरघ रौरा द्वै दिशि होवा। चाहति हाथी को तबि ढोवा।
सिंह गए घोरे असवारा। लोहगडी को द्वार निहारा ।।२।।

नाहरसिंहं बीर बिसाला। बीच थिर्यो लै सिंहनि जाला[१]।
काशट प्रिशटा[२] हाथ संभारे। डालि दुगोरी ह्वै करि त्यारे ।।३।।

चंचला छन्द

शेरसिंह दूसरो सु जूथनाथ[३] बीच बीर।
त्यार जंग खेत को सु लोह कोट पौर तीर[४]।
सैन सैल नाथ की बिसाल हेल घालि घालि।
'मार मार' बोलती पुकार भूरि डालि डालि[५] ।।५।।

श्री गुरू बिलोकते उतंग थान पै थिरंति।
जंग मैं उमंग कै तुफंग संग भंगयंति[६]।
गेरिआं दुओरियां[७] सु छोरियां सरीर फोर।
गोरियां घनेरियां बिखेरियां जि लोथ घोर[८] ।।६।।

मुंड तुंड तूटिगे प्रचंड ही घमंड घालि।
टूट हाथ पाइं गे सु जंघ कंध श्रोण डाल[९]।
नैन, कान, नाक, ओठ, ग्रीव, भाल, सीस लागि।
फोरि देति गोरियां उतार देति कांहु पाग ।।७।।

---

१. बहुत से सिक्खों को साथ लेकर। २. बंदूक। ३. जत्थेदार, सेनापति। ४. लोहगढ़ के दरवाजे के पास ही। ५. बहुत शोर डाल-डाल कर। ६. नाश करते हैं (शत्रुओं को)। ७. दोनों ओर से। ८. बहुत अधिक लोथें गिराईं जो भयानक तरह से बिखरी पड़ी थीं। ९. जांघों और कंधों में से खून गिरता है।

सवैया

बान सटासट[1] छूट चले गन बीर कटाकट होनि लगे।
नाद चटापट ऊठति दीरघ होति हटाहट सूर अगे[2]।
तीखन भीखन मार मची रज श्रोण रची भट चीर पगे[3]।
अंगन भंग तुरंग भए किह पेट फटे रणखेत डिगे ॥८॥

छूछ फिरे हिहनावति हैं हय हाक पुकारति हैं करि कोऊ।
भारथ[4] दूसर होति भयो जनु मारि मरे किह ठां भट दोऊ।
धूल उडी अंधकार भयो बड धूम उठ्यो जनु बादर होऊ।
होइ प्रकाश बरूद धुखै तडिता समता कहु पावति[5] सोऊ ॥९॥

रसावल

दए ब्रिंद नेजे। कल्हूरी सु भेजे।
मतंगै पिछारी। करो जाइ मारी ॥१०॥

किते होइ दाएं। दिजै चोक जाएं[6]।
किते बाम पासे। थिरो जाइ रासे[7] ॥११॥

सुनि भूप बानी। करे सावधानी।
बडो फील प्रेरा। महां मत्त घेरा ॥१३॥

मनो सैल श्रिगं। चल्यो यौं मतंगं।
फुंकारे कराला। महां ओज वाला ॥१४॥

सु नेज़ान प्रेरा। चिंघारै बडेरा।
घनी कैफ[8] पानी। चल्यो अग्र थानी ॥१५॥

पदांती हज़ारैं[9]। मिले हैं पिछारैं।
तुरंगै नचाए। भए बाम दाए ॥१६॥

भुजंगप्रयात

चल्यो केसरी चंद लीनी कमाना।
गहे बान तीखे गुनं संधिताना[10]।

---

१. जल्दी-जल्दी। २. एक दूसरे को हटाकर योद्धा आगे होते हैं। ३. वस्त्र भीग गए। ४. महाभारत (के समान भयंकर युद्ध)। ५. बारूद के जलने से बिजली के समान प्रकाश होता है। ६. हाथी को चौक मारते जाना। ७. बहुत। ८. शराब। ९. हजारों पैदल योद्धा। १०. जोड़ कर खींचा।

प्रहारै चलै सामुहे कोट पौरा।
करी हाल हूलं पर्यो भूर रौरा ॥१७॥

दुऊ सिंह जोधे गुरू आप भेजे।
बरे कोट मैं जाइ लीने सु नेज़े।
जिते सिंह संगी करे ज़ोर आए।
तुफंगै प्रहारें तडाके उठाए ॥१९॥

दोहरा

हुतो अगम पुर मोरचा तहां पर्यो घमसान।
थिरहिं सिंह[1] छोरहिं नहीं परे पहारी आनि ॥२०॥

भुजंगप्रयात

बडे ओज लाए तुफंगै प्रहारी।
तबै आनि ढूकै समूहं पहारी।
चली ब्रिंद गोरी मरे बीर केते।
तऊ नांहि छोरैं रुपे सिंह जेते ॥२१॥

कराचोल काढे भए हत्थ वत्थं।
मरे सिंह मारे पहारी प्रमत्थं[2]।
रहे आनि थोरे सुलीने धकाई।
लियो मोरचा मल्ल छूछं तकाई[3] ॥२२॥

चल्यो मत्त हाथी जबै पौर आयो।
धकेले सभै सिंह यौं ज़ोर पायो।
बरे बीच कोटं लिए ओट ठांढे।
तुफंगैं तडाके परैं होइ गाढे ॥२६॥

छुटी सैकरे एक बारी तुफंगैं। फुटैं तुंड मुंडै लिटैं ज्यों मलंगैं।
हज़ारों परे मार गोरीन होई। तऊ ना मिटे हेल घालंति सोई ॥२७॥

---

१. मोर्चे पर सिक्ख डट गए। २. मल कर मारा। ३. सिक्खों का मोर्चा खाली देखकर अधिकार में कर लिया।

पहूंचे जबै पौर लौ आनि बैरी। बडी मार खै कै नहीं तुंड फेरी।
कराचोल काढे चहैं सो प्रवेशे। दियो ढोइ हाथी प्रहारैं विशेशे ॥२८॥

दडादाड गेरैं तुफंगैं प्रहारैं। किले मोरचे मैं खरे सिंह मारैं।
परी लोथ पै लोथ पौरं अगारी। गए जूझ केते बकैं मार मारी ॥२९॥

ललितपद

तबि बचित्रसिंह रिदै बिचार्यो इह अवसर अबि मेरा।
हतौं मतंग अंग मैं बरछा करिकै ओज घनेरा ॥३०॥

हय अरूढ़ि करि ठांढो अंतर उदेसिंह के पासा।
मादक चढ्यो मसत अति होवा सभि सों बाक प्रकाशा ॥३१॥

खोलि कपाट देहु मुझ आगै देखहु जंग मतंगा।
अपर सभिनि कौ तुम दिढ झालो[1] शलख तुफंगनि संगा ॥३२॥

इम कहि करि कपाट खुलिवाए हय की बाग उठाई।
समुख मतंग आवतो पिखि करि गमन्यों केहरि न्याई ॥३४॥

चरबति ओठन लाल बिलोचनि फरकति मूछ उठाई।
भ्रिकुटी चढी कुटिल मुख लाली शमश महां छबि छाई ॥३५॥

मनहुं क्रोध ते शेर सटा उठि भीखन दरशन होवा।
तोमर धरिकै हाथ उभार्यो हाथी मसतक जोवा ॥३६॥

पग को बल रकाब पर करि कै उछल्यो आसन छोरा।
सभि सरीर कौ ओज संभारिकै हय फांद्यो गज ओरा ॥३७॥

सैफ बचाइ चलाइ सु बरछा तवा पुलादी फोरा।
बर्यो जाइ गज मसतक मैं जबि पुन कर जुग करि ज़ोरा[2] ॥३८॥

कर्यो धसावनि प्रविश्यो ऐसे उपमां कहौं बनाई।
क्रौंच सैल महिं जिम शिव नंदन बरछी मारि धसाई[3] ॥३९॥

---

१. दृढ़ता से झेलो। २. दो हाथों का ज़ोर करके। ३. जैसे क्रौंच पहाड़ में कार्तिकेय ने बरछी मार कर धसाई हो। (क्रौंच हिमालय का पोता और मैनाक का पुत्र था जो अहंकारी होकर क्रौंच द्वीप के निवासियों को मारने लगा था, तो शिव के पुत्र कार्तिकेय ने बरछी मार कर उसे मार दिया था और उसका सिर काट लिया था।

बाशक किधौं बेग फरा दीरघ बिनता सुत के त्रासा[1] ।
देखि रंध्र गिर बिखै प्रवेशा[2] नहिं पुन बदन निकासा ॥४०॥

मनहुं इंद्र करि क्रोध विलंदै लीनि रुद्र ते सूलं[3] ।
गिर को हत्यो बधन के हित करि[4] अस उपमा अनुकूलं ॥४१॥

पुन तोमर कौ दोनहुं कर सों बल ते बहु झकझोरा[5] ।
खैंचि निकास्यो श्रोरात लिपट्यो कीनसि अपनी ओरा ॥४२॥

बरछा लगति चिंघार्यो दीरघ कुंचर सीस निवायो ।
जनु गुर सिक्ख को बंदन ठान्यो मैं भूल्यो इत आयो ॥४३॥

निकस्यो तोमर मसतक ते जबि हटि पाछै मुख मोरा ।
पुन बचित्रसिंह चोभति नेज़ा[6] रिस्यो दुरद तबि घोरा[7] ॥४४॥

बहिति रुधर की धार बडेरी, झटति सुंड फिर फेरी ।
जे तोमर को चोकति नेरै तिन कौ मारति गेरी[8] ॥४५॥

भयो बिबस बहु मरे पहारी सैफ़ प्रहारति हाथी ।
चिंघारति अरु फेरति बल ते कतल करे निज साथी ॥४६॥

भयो सथार सैफ़ ते काटति पर्यो रौर तबि भारा ।
सहति सिंह कुछ सतिगुर हेरे भयो अनंद उदारा ॥४७॥

प्रेरति घने मोरिबे[9] गज कौ जहिं देखति निज नेरे ।
रिस ते सुंड फेरतो मारति सैफ साथ गन गेरे ॥४८॥

रह्यो खालसा मारन ते कित इक मतंग ही मारै ।
जित दिशि दौर परति है काटति भाजति जाति अगारै ॥४९॥

पैरन सों दरि करि[10] गन मारे सैफ संग बहु काटे ।
जतन हटावनि कौ करि हारे हट्यो न केतिक डाटे[11] ॥५०॥

तबि बचित्रसिंह पेलति पाछे तोमर अनी प्रहारै[12] ।
त्यों त्यों बेग जाति करि आगे घने पहारी मारै ॥५१॥

---

१. या बड़े फन वाला वासुकि (नाग) गरुड के डर से । २. पहाड़ में रंध्र (छिद्र) देख कर घुस गया हो । ३. त्रिशूल । ४. नाश करने के लिए । ५. घुमा-घुमा कर फेरा । ६. पीछे से नेजा चुभाया । ७. भयानक हाथी को क्रोध आया । ८. जो पहाड़िये निकट होकर तोमर चुभाते थे उन्हें मार कर गिरा दिया । ९. मोड़ने के लिए । १०. दरड़ कर, दल कर, पीस कर । ११. बहुत डांटने पर भी । १२. बरछे की नोक चुभा कर हाथी को धकेलता है ।

पर्यो अपूठो[१] घर के मारति जसुवारन को हाथी।
अबि लौ कहिवत अहै गिरनि महिं मिलि मिलि बोलति साथी[२]।।५२।।

हते हज़ारहु गिरनर कुंचर गुर की बिजै करंता।
लोचन लाल चिंघार पुकारैं सुंड प्रचंड भ्रमंता[३] ।।५३।।
(रि० ४ : २६)

(गुरु गोबिन्दसिंह को घेरने की तैयारी)

चौपई

तबि ख्वाजा मरदूद गुलाम। रिसि बोल्यो दल संग तमाम[४]।
घेरहु अग्र जाइ करि ऐसे। जिस ते निकसि जाइ नहिं कैसे ।।३०।।

जथदार[५] सरदार घनेरे। करि करि क्रुद्धति सगरे प्रेरे[६]।
भीमचंद को भाखि पठायो। तैं अपनो दल क्यों अटकायो[७] ।।३१।।

प्रेरहु सभि परबत की सैना। घेरहि जाइ, गहै पिखि नैना।
खान वजीद सिरहंदी धायो। लाखहु लशकर ले उमडायो ।।३२।।

ज़ेरदसत सूबा लवपुरि को। दौर चल्यो पकरनि श्री गुर को।
बेशुमार[८] जिम निस अंध्यारी। सैना उमडी सभि इक वारी ।।३३।।

गुर सूरज को पकरन हेत। गहि गहि आयुध उमडे खेत।
को आगै कोऊ पशचात। दौरति जाति गिरैं को खात[९] ।।३४।।

कितिक परसपर लगहिं धकेले। बाजी लरति सऊरनि मेले[१०]।
करि तूरमता पहुंचे आइ। सिंहन को पीछे जहिं जाइ[११] ।।३५।।
(रि० ६ : ३१)

(रात्रि का आक्रमण एवं युद्ध)

दोहरा

हुतो दूर कुछ लोहगड आनंद पुरि ते सोइ।
ढुके मोरचे निकट तिहि दिन प्रति ग़ाफल होइ ।।१।।

---

१. उल्टा। २. जसुवारियों का हाथी मुड़-फिर कर अपनों को ही मारता है; यह पहाड़ियों में एक मुहावरे के रूप में प्रचलित हो गया है। ३. घुमाता हुआ। ४. सारी सेना से। ५. जत्थेदार, सेनापति। ६. भेजे। ७. रोका है। ८. असंख्य। ९. खाती, गड्ढे में। १०. सवार योद्धाओं के दौड़ाए हुए घोड़े आपस में मिल कर लड़ते हैं। ११. जहां सिक्ख जाते थे, तेजी से वहां आ जाते थे।

ललितपद

इक दिन निसा भई अंधिआरी शेरसिंह बच भाखा।
नाहरसिंह जी! सबाधान बनि सुनि मेरी अभिलाषा ॥२॥

श्री अनंदपुरि ते कुछ अंतर, नेर नहीं लखि सोऊ[1]।
यांते निकट मोरचे ल्यावति मन वधाइ सभि कोऊ ॥३॥

अगम पुरे अरु होल गडी महिं अपर केस गड सारे।
दूर दूर हैं सभि थल मुरचे ढूके निकट हमारे[2] ॥४॥

अबि निसि महां अंधेर गुबारी दुरजन गाफ़ल भारे[3]।
धरे भरोसा सुपत परे बहु को इक जागन हारे ॥५॥

ऊपर परहु क्रिपाननि ऐंचहुं करहु लथेर पथेरा।
एक वार करि करहु किनारा[4] परिहै रौर घनेरा ॥६॥

नहीं पछान परसपर होवै कटहिं परसपर सारे।
होति प्राति के करहिं फरक फिर निकट न आइं हमारे[5] ॥७॥

सुनि नाहरसिंह तिह समुझायहु हुकम न प्रभू बखाना।
नित प्रति कहति न निकसहु बाहर दुरग रहहु सवधाना ॥८॥

अबि बूझन की विधि नहिं बनि है क्रिपा सिंधु सुख मांही।
नहीं जगावन कैसे होवहि कुतो कहहिं तुव पाही[6] ॥९॥

शेरसिंह पुन कह्यो लखहु इम राजनीत की बाती।
समा पाइ रिपु ते न चुकै किम निशचै करहि सुघाती ॥१०॥

तुरकनि को मारन मति गुर को इह विधि तिन अनुसारे।
प्रभु बूझनि की अबि नहिं आछी सुनि हैं सकल सकारे[7] ॥११॥

अबि मैं भली भांति रिपु जोहे[8] परे सुपत इकसारा।
बहुर घात इह[9] हाथ न आवै करहु संहार सथारा ॥१२॥

छकि अफीम मैं बाहर गमन्यों आवति जाति निहारे।
गाफ़ल परे त्रास बिन ह्वै कै आछी बिधि लिहु मारे ॥१३॥

---

१. ये मोरचे (शत्रु के) निकट नहीं हैं। २. इन स्थानों से तो शत्रु के मोर्चे दूर दूर हैं, पर हमारे मोर्चे के निकट आ पहुंचे हैं। ३. बेहद असावधान, सुस्त, आलस्य में। ४. एक वार करके पीछे हट कर एक तरफ़ हो जाओ। ५. प्रातः होने पर हम से दूर हो जायेंगे और फिर हमारे मोर्चे के इतने निकट नहीं आयेंगे। ६. तुम से क्या कहें अर्थात मैं अब क्या कहूं। ७. सारी बात सुबह सुन लेंगे। ८. देख लिए हैं। ९. यह मौका।

सने सने सभि सिंह जगाए सुक्खा पीवन कीनो।
सौच शनान ठानि करि सगरे खडग सिपर धरि लीनो ॥१४॥

जाम निसा ते त्यारी ठानति अपर दुघरी बिताई।
षठ घटिका जबि रही राति लखि सिंह त्यार समुदाई ॥१५॥

सभि को समुझावन करि नीके इक इक खडग प्रहारे।
बहुर शत्रु के बीच न रहीए हूजै तुरत किनारे ॥१६॥

पौर लोहगड को तबि खोल्यो निकसे सिंह जुझारे।
खडग सिपर द्वै कर महिं लीने अछिन अछिन[1] पग धारे ॥१७॥

मौन धरे कुछ करे शबद नहिं औचक परे सु जाई।
मुंडिया नगन तुरक कट डारे सभिनि क्रिपान चलाई ॥१८॥

मारि मारि करि रौर मचायहु कूदति सिंह जुझारे।
नींद मांहि ते पलक न खुलती मारि खडग कटि डारे ॥१९॥

आधी घडी क्रिपान बही बहु रुण्ड मुंड गन होए।
शसत्र संभार न किस की होई कटि कटि धरि पर सोए ॥२०॥

किसको मुंड तुंड किह काट्यो किसकी ग्रीवा न्यारी।
किह सिकंध भुज हाथ कट्यो किह कट[2] किस पेट पिछारी ॥२१॥

जंघ कटी, जानू किस काट्यो, किस के चरन बिदारे[3]।
लोचन करन[4] कटे बिललावति इक बारी इम मारे ॥२२॥

भयो सथार खेत महिं तुरकनि जिम काशट कटि डारे।
निसा अंधेर शोर बड माचा दिखति न हाथ पसारे ॥२३॥

निकट कि दूर हुते गन डेरे सनध बद्ध हुइ धाए।
सिंह किनारा करि तत छिन महिं दुरग बिखै सभि आए ॥२४॥

चलन लगी गन तुपक मिले पुन कछू पछान न होई।
आपस बिखै कटन सभि लागे सूझ बूझ नहिं कोई ॥२५॥

गुलकां संग मरे तबि अनगन कटे खडग के संगा।
इत उत लखै सिंह इह आवति करति आप महिं जंगा[5] ॥२६॥

---

१. धीरे धीरे। २. कटि, कमर। ३. काटे। ४. कान। ५. इधर उधर सिक्खों को आया देखते हैं, मगर आपस में ही युद्ध किए जा रहे हैं।

रसावल

पिता पूत मारा । कि भ्रातं प्रहारा ।
कराचोल चाले । न जांहीं संभाले ।।२७।।

किसू नांहि पूछे । सुधी ते सू छूछे[1] ।
करैं ओज धावैं । प्रहारं चलावैं ।।२८।।

कटैं आप मांही । दिखे कोइ नांही ।
पछानैं न आना । प्रहारैं क्रिपाना ।।२९।।

तिसी मोरचा मैं । संहारे तमामै ।
बह्यो श्रोण जाई । थिरा लोथ छाई[2] ।।३०।।

सुन्यो रौर सूबे । महां चित डूबे ।
कह्यो मोरचा को । सुन्यो शोर तांको ।।३१।।

बडो ग़ज़ब होवा । नहीं मूढ जोवा ।
बनै को उपावा । अंधेरा सु छावा ।।३२।।

नहीं राति जागे । तबै दाव लागे ।
परे सिंह जाई । लखे जाहु भाई ।।३३।।

दोहरा

इस प्रकार कटि मोरचा फते खालसा पाइ ।
तुरक मूढ मति होइ करि नाश भए दुख पाइ ।।३४।।

(रि० ६ : १६)

(युद्ध-भूमि का दृश्य)

ललितपद

बही रकत की सलिता जित कित लोथनि के अंबारा ।
कहूंक सिर किंदक सम रोढति कर पग डंडन मारा ।।२१।।

ग्रिद्ध ब्रिद्ध मख्यनि करि आमिख बैठी कितिक न डोलैं ।
अंतर सूरन बुटीआं उछलति यांते चींकति बोलैं ।।२२।।

---

१. बेखबर । २. पृथ्वी भर लोथें बन गईं ।

काक कंक की कूकै कूकहिं जंबुक बोलि सुनावैं।
ऐंचति लोथन ग्रामिख कार्टाहं रुधर पान पल[1] खावैं ।।२३।।

भूत पिशाच प्रेत डकरावति श्रोणत मास ग्रघाए।
खप्पर भरैं जोगनी त्रिपतैं गुर बिन कौन रजाए[2] ।।२४।।
(रि० ६ : ४०)

(गुरुजी की तोपों का वर्णन)

कवित्त

गुरू के प्रताप की दुलारन करन वारी,
किधौं गुरू मूरत की रच्छा रूप धारी है[3]।
किधौं बिजै ग्रापनो सरूप धारि ठांढी ढिग,
किधौं रूप कालका को दासन उधारी है।
सिंहनि सहाइ हेतु देति है दिखाई सोइ,
किधौं म्रितु दुरजन की दारुन सुधारी है[4]।
हिंदु को धरम धरा धारिबे को,
धीर धरि श्री गुबिंदसिंह तोप उपमा बिचारी है[5] ।।४६।।

गाढे गढ ढाहिबे को, दीह दल दाहिबे को,
खालसा उमाहिबे को दुरजन बिहालका[6]।
तुरकनि को तेज त्रिन संचै सम[7] बध्यो बहु,
तांके छार करिबे कहु मानहु जोति ज्वालका।
मेघन के बीच बसे गाजि गाजि गाज[8] जोइ,
दूजो देह धारे जनु ग्राई खलु घालका[9]।
दास प्रतिपालिका, सु खालिक की खालिका[10],
सरूप मनो काल का, प्रगट भई कालका ।।४७।।
(रि० ६ : १७)

---

१. मांस। २. त्रिपताए। ३. गुरु-मूरत की रक्षा ने ही रूप धार लिया है। ४. दुष्ट (शत्रुग्रों) की मृत्यु ही रूप धारण किये खड़ी है। ५. हिंदू धर्म को धरा पर रखने के लिए धैर्यवान गुरु गोबिंदसिंह की तोप की यह उपमा मैंने विचारी है। ६. बेहाल करने वाली, नाश करने वाली। ७. घास के ढेर की तरह। ८. बिजली। ९. मानो वही दूसरी देह धारण करके (शत्रुग्रों) दुष्टों का विनाश करने ग्राई है। १०. करतार की रची हुई।

(गुरु गोबिंदसिंह का युद्ध)

नराज

गुरू गुबिंदसिंह जी बिलंद हेल डारिग्रो।
समूह सिंह संग लै तुफंग को संभारिग्रो।
बिरुद्ध जुद्ध सुद्ध ते सु क्रुद्ध होइ ग्राइग्रो।
कठोर धारि चांप को तुरंग को धवाइग्रो ॥३५॥

समूह बान तानि तानि कान ते[1] प्रहारते।
दडादडी तुरंग बीर भूम बीच डारते।
बहै सबेग बायु ज्यों पुरातने तरोवरा[2]।
उखारि मूल गेरते भई संकीरएं धरा ॥३६॥

थिर्यो कि ग्राइ ग्रग्र जो सु प्रान हीन होवते।
भयान भूर भूमिका, भगैं भगैल जोवते[3]।
नहीं जु नैन गोचरा[4] बच्यो सुजिंद राखकै।
इते उते पलाइगे न सामुहा भिलाखकै[5] ॥३७॥

(रि० ६ : ११)

(तोप का चलना)

ललितपद

इतनी कहति हुते श्री सतिगुर छुटी तोप समुदाई।
गाज गाज[6] करि बार बार जनु गिरी सु गिर पर ग्राई ॥१८॥

ग्रंध धुंध इक बार भयो तबि उठ्यो धूंम नभ छायो।
खरे तुरंग मतंग न दीखति निकट सथान हिलायो ॥१९॥

प्रतिधुनि उठी सैल ग्ररडाए शबद सहैं नहिं श्रोना[7]।
कडकैं तोपां बल बरूद ते ग्रागै ग्रटकहि कौना ॥२०॥

---

१. जोर के साथ। २. पुराने वृक्ष। ३. भागने वाले (कायर) भागते दिखाई देते हैं। ४. जो नेत्रों के सामने नहीं ग्राया। ५. जो सामने होना नहीं चाहते। ६. बिजली की तरह गरज कर। ७. इतनी भयंकर ग्रावाज हुई कि कान उसे सुनकर सहन नहीं कर सके।

सगरे गोरे गिर के सिर ते ऊचे नभ को जाई।
थिर्यो दिवान सकल बिच श्री प्रभु किह् को छुहन न पाई ॥२१॥
(रि० ६ : १३)

(अन्य)

अमृतधुनि

थल थल दल खलभल पर्यो, लोथ उलत्थ पलत्थ।
जसुवारी को फिरति है, हाथी हत्थ प्रमत्थ।
हत्थ प्रमत्थथ कित्त न पत्थथ, थित जहिं जुत्थथ।
थल थल गुत्थथ थिरति न सत्थथ, थर थर गुत्थथ।
थंभति न कित्थथ थिर थिर चित्थथ, वपु उपलत्थथ।
थिसल चलत्थथ, थुर्य न मत्थथ, थकत परंत्थल* ॥१५॥
(रि० ४ : २७)

कवित्त

गिने कौन कहां लगि गुरु के हजूर सूर,
पूरन गरूर करि तूरन प्रहारते।
त्रास बिनां शेर जैसे बिचरैं मलेछ बीच,
तोमर भ्रमावैं, कै तुफंग कसि मारते।
केऊ चांप ऐंचि ऐंचि छोरैं सर मारै अरि,
तुरक हज़ारों गिरैं रिदै[1] रिस धारते।
रिपुहिं निहारते, पुकार ललकारते,
बंगारते[2] न हारते सु मारि मारि डारते ॥६॥
(रा० ६ : १३)

---

*पहाड़ी सेना में जगह-जगह घबराहट हो रही है, लोथों पर लोथें उल्टी पुल्टी जा रही हैं, (क्योंकि) जसवारियों का हाथी तबाही करता फिर रहा है, वह हाथी सूंड के साथ अच्छी तरह तबाही कर रहा है, किसी के हाथ नहीं आता, जहां देखे टिक कर खड़ा हो जाता है। जगह-जगह दल-मल रहा है; किसी जगह ठहरता नहीं, लोग (डर से थर-थर कांपते हुए) इधर उधर हुए जाते हैं, किसी से रोका नहीं जाता, अगर खड़ा होता है तो खड़ा होकर चीरता जाता है, और (योद्धाओं के) शरीरों को उल्टा पुल्टा कर गिरा देता है, अटपटी चाल चलता है, थोड़ा-थोड़ा झूमता है; जगह-जगह शव पड़े हैं, मानो थके हुए (विश्राम कर रहे हैं)।

१. हृदय में क्रोध को धारण करके। २. ललकारते हुए, ऊंचे-ऊंचे बोलना।

सवैया

उमडचो लशकर पिखि सरदारनि एको बार परे अरिराइ।
शलख तुफंगनि की बड छूटति उठ्यो धूम जनु घन गन छाइ।
ज्वाला बमणी ते छुटि गुलकां सम ओरनि की बड बरखाइ।
फोरे सूर सरीरनि उर, सिर, टूटी भुजा, लात, गन पाइ॥१५॥
(रा० ६ : १३)

(रक्त सनी खडग)

ललितपद

कराचोल श्रोणत सों लिपटे चमकति ह्वै है लालं।
लहिलहाति जनु जम की जीहा चरिबे पान गुलालं॥२३॥
रकत बह्यो पट रंग चढचो, सभि धरे लाल जनु बागे[1]।
मनहुं अधूम अगनि है दीखति गिरे लरति हुइ आगे॥२४॥
(रि० ४ : ४४)

१. वस्त्र।

शृंगार

(हरिपुर की स्त्रियों का रूप-चित्रण)

निसानी

सुंदर सरबंगन बिखै तरुनी गन हेरी[1]।
आंख कमल की पांखरी चलचाल[2] घनेरी।
बिधु बदनी सुक्रिशोदरा[3], सुठ श्याम सुकेसी।
गज गमनी सुर कोकला कट केहरी जैसी ।।२१।।

कंठ कपोती सुंदरी, सम ओठ प्रवाला।
जोगिन के धीरज हरैं ऐसी गन बाला।
आन देश अवनी बिखै तिस देश समाना।
अबला कितहूं होति नहिं अस रुचिर[4] महाना ।।२२।।
(रा० १ : ३१)

(जैमल की कन्या का सौन्दर्य वर्णन)

चौपई

इक जैमल तनुजा तन सुंदर। चातुरता चंचल गन मंदर।
कमल पत्र बिसतार बिलोचन। पिखति कटाछन धीरज मोचन ।।९।।
बेनी नागन सी सटकारी[5]। मध्यदेश सूखम कुच भारी।
गौर रंग चंपक जनु पाति। किधौं दिपति कंचन अविदात[6] ।।१०।।
भौर गुंजारति जिह पर वारति। सखी पास ते रहित बिडारति[7]।
चौदहिं बरखन की बर बाला। मनहुँ अधूम लाट है ज्वाला ।।११।।

---

१. सब अंगों में सुन्दर स्त्रियां देखीं। २. बहुत चंचल। ३. सूक्ष्म कमर वाली। ४. ऐसी सुन्दर। ५. पीछे लटकने वाली। ६. स्वच्छ सोना। ७. सखी (भौरों को) उड़ाती रहती हो।

जिसकी जाति पदमनी कहैं। भूखन भार देहि नहिं सहै।
सखियन बांहु गहे जबि चालति। कचन कुचन के भार बिहालति ॥१२॥

बीच पजामे उरू[1] जु मेले। गोल सछीलक[2] जनु जुग केले।
चारु चकित म्रिग सिसि द्रिग सोहति[3]। पलट मीन की जनु जबि जोहति[4]॥१३॥

इम गुन सुनि भरम्यो मन शाहू। अकबर शाहु तुरक नरनाहू।
पठ्यो वकील[5] तबहि तिस डेरे। कहि करि लालच देनि बडेरे ॥१६॥
(रा० २ : ४)

(श्री हरिगोबिन्द तथा कौला-प्रसंग)

पेच बधे जु अनूठो बन्यो। शमस नीक मुख ससि जस सन्यो।
बड बिसतिरति बिलोचन शोभा। अविलोकति किस नहिं मन लोभा ॥२०॥

कोर दार हीरे बर चीरे। जिगा बधी छबि ऊपर चीरे।
मुकता उज्जल गोल बिसाला। कुंडल मुख मंडल पर झाला ॥२१॥

कंचन कंकन जरे जवाहर। मुकता माल बिसाली ज़ाहर।
सूखम बसत्र सरीर सुहाए। खडग सिपर दोनहु अंग लाए ॥२२॥

क्या गुर शोभा करौं उचारी। अपर न पय्यति जिन अनुहारी।
जबर जवाहर ज़ाहर जरे। हय पर ज़ीन सजावनि करे ॥२३॥

डील बिलंद गुरू दुति संगि। भए अरोहनि तिसी तुरंग।
सिख सेवक सभि बरजि हटाए। एक नफर[6] ले संग सिधाए ॥२४॥

जहिं काज़ी को दीरघ मंदिर। सुंदर बिसद वहिर अरु अंदर।
करे झरोखे राखि दरीची[7]। बनी सु बैठक ऊची नीची ॥२५॥

बहु परदे जुति बसहिं ज़नाने। जाइ न जाने बाहर खाने।
इक काज़ी की सुता कुमारी। मनहुं मदन निज हाथ सुधारी ॥२६॥

किधौं चंद्रमा चीर निकारी। जनु रंभा महितल पग धारी।
अंग अंग जिस के तरुनाई। सहज सुभाइ झरोखे आई ॥२७॥

इत कूदति लघु छाल तुरंग। आइ सुहावति मनहुं अनंग।
सुन्यो शबद हय कूदनि केरो। हेरनि लगी बदन इत फेरो ॥२८॥

---

१. जांघें। २. छिले हुए। ३. नेत्र मृग के बच्चों के नेत्रों-से लगते हैं। ४. जब पलट कर देखती है तो नेत्र मछली जैसे लगते हैं। ५. दूत। ६. नौकर। ७. खिड़की।

देखति रूप अधिक अकुलाई। मनहु रंक के ढिग निधि आई।
बहुत छुधिति जैसे नर कोइ। मनहु अहार देति ढिग होइ ॥२९॥

महां तपत ते लागिसि प्यासा। पियनि चहति जल ह्वै करि पासा।
मनहुं प्रतीखत[1] हुती चकोरी। औचक[2] चंद्र चित्यो चित चोरी ॥३०॥

अविलोकति रहिगी इक टक ही। भई अचंचल मुख को तक ही।
द्रिग बिसतरति कमल जनु फूले। लाज समेत अपनपौ भूले ॥३१॥

प्रथम किवार ओट मंहि दुरी। बहुर बहिर भी सनमुख खरी।
मनहुं म्रिगी ह्वै मोहति रही। पाछे हटनि होति किम नहीं ॥३२॥

तिस को प्रेम हेरि करि घनो। खरी करी बध्यति किन मनो[3]।
आतुर को बिलोकि मन भीनौ। बाजी[4] को टिकाइ तबि लीनो ॥३३॥

किती बेर[5] बीती जबि खरे। इत उत कौलां नैन न करे।
तपत घाम ते बहु अकुलावै। ब्याकुल भयो छांव पुन पावै ॥३४॥

त्याग न सकहि रहहि थिर जैसे। गाढी हुइ ठांढी तहिं ऐसे।
रिदे बिचारति है इह कौन। मनहुं चंद आयो तजि भौन ॥३५॥

महां छैल छबि छक्यो छबीला। कहां बसहि ठानति निज लीला।
जिनहुं त्रियनि के हैं बड भाग। मिल्यो तिनहुं इह पुरख सुहाग ॥३६॥

जग महिं होनि तिसी कहु धंन। जिस को हसि करि मिलहिं प्रसंन।
मैं किम इन सों बोलनि करौं। नहिं चिनारि[6] मैं पूरब धरौं ॥३७॥

कौन भेत मुझ आनि बतावै। मिल बोले बिन मनु अकुलावै।
को उपाइ मैं करों कुभागनि। पिखि सरूप होई अनुरागनि ॥३८॥

पर बसि मन भा नहिं बसि रह्यो। सुंदर चंद दूसरो लह्यो।
इक टक देखति रिदै बिचारति। मिलन हेतु आतुरता धारति ॥३९॥

इतने महिं काज़ी चलि आयो। पिखहिं परसपर तबि द्रिशटायो।
महां क्रोध जाग्यो जर गयो। सदन प्रवेश शीघ्र ही भयो ॥४०॥

निज तनुजा को पिखि रिस भर्यो। चाबक पर्यो तुरत कर धर्यो।
मारति भयो त्रास नहिं ठाना। कहति क्रूर! खोइ कुल काना ॥४१॥

---

१. प्रतीक्षा। २. अचानक। ३. मानो किसी ने बांध कर खड़ी की हुई है। ४. घोड़ा।
५. देर, समय। ६. जान-पहचान।

हिंदुन के गुर को तूं हेरैं। जनमी कहां मंद तू मेरैं।
बहु चाबक मारे बल संगि। उतर्यो चरम लगे सभि अंगि ।।४२।।

हाइ हाइ करि रही बिचारी। सुनि दौरी तिसकी महितारी।
भिरक्यो काज़ी चाबक छीना। क्यों निज सुता हती दुख दीना ।।४३।।

मम ढिग ते अबि ही चलि आई। कहां भयो ठांढी इस थाईं।
सुता तरुण को मारनि करैं। सुनहिं अपर शंका सभि धरैं ।।४४।।

क्यों अपनी पति लाज गवावहिं। हसहिं लोक कर ताल बजावहिं।
रिस मैं कहति खरो गुरु हिंदू। नाम जांहि श्री हरिगोबिंदू ।।४५।।

तरै खरो तिस की दिशि देखै। तनुजा देहि कलंक बिशेखै।
नहिं समीप राखहिं रखवारी। पिखों फेर मैं देहौं मारी ।।४६।।

इम कहि काज़ी बहु दुख पाइसि। वहिर निकटि बैठ्यो पछुताइसि।
सतिगुर गए आपने डेरे। उतरि बिराजे प्रभू बडेरे ।।४७।।
(रा० ५ : १८)

दोहरा

तिस की महितारी तबै दुहिता लई उठाई।
हाइ हाइ सो करि रही म्रिदुल सेज पर पाइ ।।१।।

चौपई

चोटनि को कीनसि उपचारी। पिखि काज़ी को काढति गारी।
देती धीरज सहत दिलासा। कितिक काल थित तनुजा पासा ।।२।।

पुन दासी को निकट बिठायो। आप अपर कारज चित लायो।
कौलां तन मन ते दुख पाइ। हाइ हाइ करती बिललाइ ।।३।।

दासी ने तिस चित की जानी। गुपत बारता बूभनि ठानी।
कौन हुतो जिस देखति रही। पिखि काज़ी हटके द्रिग नही ।।४।।

तबि कौलां ने सकल बताई। तिस नर की सुधि मोहि न काई।
पिख्यो अचानक मन ठगि लयो। रही न सुधि जड़ सम तन भयो ।।५।।

काज़ी ने मारति लिय नामू। गुरु हिंदन को मुख अभिरामू।
श्री हरि गोबिंद महां बिच्चछन। महांराज के जिस महिं लच्छन ।।६।।

क्या उपमा करि तोहि सुनावों। जिस के सम को अपर न पावों।
काज़ी ने मारी, गुन भयो। नाम पता प्रिय को सुनि लयो ॥७॥

हे दासी तूं करि उपकार। थिरहिं कहां, खोजहु हित धारि।
बहु धन दैहों मानि इसान[1]। जे बचाइ राखैं मम जान ॥८॥

मोहि ब्रिथा किम जाइ सुनावहु। चहैं कि नहीं, भेद सभि पावहु।
पठि किताब परसंगु सु हेरे। परम पुरख बसि प्रेम घनेरे ॥१३॥
रंक राउ को जानहिं नांही। प्रीति करहि तिस राखहिं पाही।
मैं तिन की तन मन ते दासी। बिनां मोल सेवौं नित पासी ॥१४॥

कलमदान काज़ी को हेरा। उठि दासी ल्याई तिस बेरा।
पूरब लिखी जोरि कर बंदन। जसु तुमरो जग दोश निकंदनि ॥१८॥

दोहरा

देति महां जम शासना तुम देखे छुटि जाइ।
इस हित दरशन आप को करहिं आनि समुदाइ ॥१९॥

चौपई

कहैं सुजसु तुमरो इस रीति। सो मुझ को बरत्यो बिप्रीत।
संसै भयो कहति इह झूठे। किधौं करम हैं मोर अपूठे ॥२०॥

एक घरी मैं दरशन कीना। प्रेम कामना ते मन दीना।
मारि कहिर की मो पर होई। यांते मैं बिचार करि जोई ॥२१॥

जे तुमरो नित दरशन करैं। बचन अनंद सुनि कै मन धरैं।
तिनहुं सज़ाइ[2] निरंतर चहियति। रूप सुधा के तसकर लहियति[3] ॥२२॥

इत्यादिक लिखि कागद आछे। कह्यो जि 'मम तूं जीवनि बांछे'।
एक बार गुरु कर चकरावो। पुनि सुनाउ जिम उत्तर पावो ॥२४॥

दैंहों दरब बिभूषन नाना। रंगदार अंबर दुतिवाना।
नहिं बिसरों कबि तोर असाना। मोको करहिं प्रान को दाना ॥२५॥

संध्या भई तिमर कुछ छायो। दासी समा जानि को पायो।
बिसद बिसाल बसत्र बर लीना। तन सगरो आछादन कीना ॥२६॥

---

१. एहसान, उपकार। २. दण्ड। ३. उन्हें आप के रूप-अमृत के चोर समझना चाहिए।

डेरे निकट जाइ सिख हेरा। दिहु कागद गुर को इस बेरा।
लें तिस ने अरप्यो ततकाला। पढ्यो खोल करि अखिल हवाला[1] ॥२७॥

प्रेमातुर दीना बहु डीठि। लिख्यो तिसी कागद की पीठि।
जो जहाज़ चढि गए हमारे। दीन दुनी हम तिस रखवारे ॥२८॥

उत्तर सतिगुर ने लिखि दीना। सुनि हरखी कागद सो लीना।
कौलां के कर सो पकरायो। देनि रु लेनि प्रसंग बतायो ॥३०॥

सभि ते छप करि दीपक पास। खोलि बिलोक्यो होति हुलास।
उत्तर पठ्यो प्रेम ते गदगद। रिदे अनंदति फिरि फिरि बदबद[2] ॥३१॥

कलमदान ले होइ अकेली। लिख्यो बहुर उर दीह दुहेली।
सुनीअहि गुरू गरीब निवाजू। मैं तन मन ते चढी जहाजू ॥३२॥

आप सभारो गहीअहि बाहूं। करों सेव दासी पग पाहूं।
कै निज कर ते देहु धकेला। मरों तुरत पासी[3] गर मेला ॥३३॥

पित के घर मैं जियों न कैसे। महां रोग ते आतुर जैसे।
दुइ महिं एक बात हुइ मोही। कै मरिहौं कै देखों तोही ॥३४॥

घोरि[4] महां बिख तीखन पीवौं। तुम परहरहु[5] तनक नहिं जीवौं।
इम कहि दासी बहुर पठाई। गई गुरू के ढिग पहुंचाई ॥३५॥

खोलि पढ्यो निशचल तबि जानी। दासनि के प्रिय कीनि बखानी।
धीरज धरहु कामना तेरी। हम पूरनि करिहैं इस बेरी ॥३६॥

चढहिं सुधासर[6] को जिस काल। तोकहु ले गमनहिं तबि नाल[7]।
घने[8] दिवस नहिं लवपुरि रहैं। आज काल मैं त्यारी अहैं ॥३७॥

सुनि दासी उर हरखति होई। आनि बरी नहिं हेरति कोई।
क्रिपानिधान क्रिपा बहु कीनि। तुझ को अबि अपनी करि लीनि ॥३८॥

सरब प्रकार भरोसा दीनि। अपने बिखै प्रेम तुव चीन।
चलहिं सुधासर ले तबि साथ। अबि लवपुरि नहि बसि हैं नाथ ॥३९॥

सुनि कौलां सम कमल बिलोचन। करि चित की सभि सोच बिमोचन।
बारि बारि बूझति है दासी। सगरी बात करहु मुझ पासी ॥४०॥

---

१. सम्पूर्ण वृत्तान्त। २. बोल-बोल कर (पढ़-पढ़ कर)। ३. फांसी। ४. घोल कर। ५. छोड़ कर। ६. अमृतसर। ७. साथ। ८. अधिक।

मुझ पर क्रिपा करति कै नांही। रुख परख्यो कै नहिं हुइ पाही।
नहीं टार कीनसि कहु कैसे। सुनि दासी भाखति पुन तैसे ।।४१।।

अधिक छुधति सम क्यों डहकै हैं[1]। कितिक दिवस महिं ढिग हुइ जैहैं।
पूरब जनम हुती बड भागनि। महिद पीर की भी अनुरागनि ।।४२।।

सुनि अनंद उर लीनि दुराई। परी सेज पर पीय न खाई।
जनु नागनि मणि रिदे छपाई। महां क्रिपन को जिम निधि पाई ।।४३।।

रखि अंतर बहिर न बिदतावै। ऊपर ते निज पीर जनावै।
बार बार बोलति महितारी। करहि निहोरनि जिस बहु प्यारी ।।४४।।

नहिं मानति मुख कीनि मलीना। गुरू प्रेम चढि रंग नवीना।
निस महिं परी परम दुखिआरी। हाइ हाइ कबि करति उचारि ।।४५।।

बहिर पीर को करति जनावनि। गूढ पीर नहिं करहि सुनावनि।
तन छाद्यो ले बसत्र बिसाला। नहीं उघारति भी किस काला ।।४६।।

दिवस आगले काज़ी संगि। काज़नि लरी करे बदरंग[2]।
परी मरति अबि रहहु सुखारे। सभि शरीक[3] अति हरसहिं निहारे ।।४७।।

कहैं कहां होयहु इस पास। ऐसी मारि करी दे त्रास।
सुनि काज़ी तूशन हुइ रह्यो। नहिं दारा सो किम कछु कह्यो ।।४८।।
(रा० ५ : १६)

दोहरा

बिन गुरु देखे दुख लहै कौलां बहु बिललाइ।
रिदै बिलोकनि लालसा नहिं उपाइ को पाइ ।।१।।

चौपई

काज़ी अरु काज़नि मन जानैं। चाबक लगे पीर को मानैं।
रुचि सों खान पान नहिं कीनि। परी रही मुख पर पट लीनि ।।२।।

जबि संध्या होइ तम छायो। दासी को कहि कर समुझायो।
जाहु पीर ढिग कीजहि अरज़ी। गुर जी दरशन बरजी डरजी[4] ।।३।।

---

१. घबराती हो। २. लाल-पीली होकर। ३. सम्बन्धी। ४. डर के कारण दर्शनों से वर्जित है।

सुधि बुधि अपर रही नहिं कोई। केवल दरस परायण होई।
क्रिपा करहु बर बदन दिखावहु। मुझ मरती के प्रान बचावहु ॥४॥

दासी! दशा पिखति हैं जैसी। गुर ढिग करहु निवेदन तैसी।
सुनति दुखातुर दीरघ जानी। दुइ दिनि महि दुरबली महानी ॥५॥

खान पान की रुचि जिन त्यागी। ऐकहु बारि महां अनुरागी।
कहि दासी ने धीरज दीनि। क्यों तरफति ज्यों जल बिन मीन ॥६॥

करो शीघ्रता अतिशै नांही। बिरह सिंध ते पार पराहीं[1]।
तिमर भयो पिखि गमनी डेरे। हाथ जोरि करी खरी अगेरे ॥७॥

'सुनहु पीर जी' तुम सभि जानहु। भई बिकल बहु कहाँ बखानहुं।
दरशन को तरफति दिन रैनि। महां दीन मुझ सो कहि बैनि ॥८॥

गुरु ढिग जाहु देहु सुधि मेरी। बितहि न दिन संमत सम हेरी।
परी प्रयंक बहुत बिललावै। हाइ हाइ मुख सभनि सु नावै ॥९॥

जानैं सकल चोट तन लागी। लखहिं न पीर[2] छपी अनुरागी।
होइ आप की जथा रज़ाइ। तिस प्रकार मैं जाइ सुनाइ ॥१०॥

श्री हरिगोबिंद प्रेम महाना। कौलां के मन को मन जाना।
क्रिपा धारि करि बाक सुनाए। धरहु धीर अबि बिलम न काए ॥११॥

डेरा कूच करावहिं प्राती। तुझ ले संगि चढहि हम राती।
सभि निसि महिं जाग्रत ही रहीअहि। तुरंग हमारे को रव[3] लहीअहि ॥१२॥

ततछिन तरे उतर करि आवहु। किस ते नहिं त्रास उपजावहु।
कोइ न जानि सकहि ले चलैं। आगै जाइ सैन संगि मिलैं ॥१३॥

सुनि दासी हरखति हटि आई। सभि कौलां के निकट सुनाई।
रिदे अनंद बिलंद उपावा। जनम रंक जिम नव निधि पावा ॥१४॥

(रा० ५ : २१)

दोहरा

कौलां करति प्रतीखना लोचन रही लगाइ।
दासी संग सहाइता चाहति काज बनाइ ॥१॥

---

१. पार हो जाएगी। २. पीड़ा। ३. शब्द।

चौपई

जबि सतिगुरु लखि मंदर काज़ी। तरे दरीची के किय बाज़ी।
ततछिन कौलां लखि आगवनू। तूरन चहति तज्यो निज भवनू ॥२॥

सतिगुरु अजमत जुति रिपुदवनू। जानि रिदै डर करहि न कवनू[1]।
धरि कमंद तर को लरकाई[2]। कर दासी के द्रिढ गहिवाई[3] ॥३॥

तूरन तरे उतर करि आई। गुरु पग पंकज गहि सिर लाई।
रिदे अनंद बिलंद उमंगा। भयो रोम हरखन सभि अंगा ॥४॥

गदगद गिरा न कुछ कहि जाई। गही बांहु गुर बेल[4] चढ़ाई।
प्रेर्यो हय पुरि बाहिर आए। बड़े बेग बायू सम जाए ॥५॥
(रा० ५ : २२)

(कौला का पुत्र प्राप्ति के लिए मान करना एवं गुरुजी का वरदान)

दोहरा

केतिक दिन पशचाति ते कौलां सुनति अनंद।
चहति बिलोकनि गुरू सुत उर अभिलाख विलंद ॥१॥

चौपई

आइ अपने सदन दुखारी। बैठी सोचति दीन बिचारी।
जानि तुरकनि मोकहु त्यागा। करति कपट को नहिं अनुरागा ॥१८॥

सभि ते मुझ को जानि मलीनी। प्रीति रिदे की नहिं मम चीनी।
मन बांछति संगति वर पावै। जो कबहूं करि दरशन आवै ॥१९॥

मम सम प्रीत होइ किस माहूं। तिन बिन मन छिनि जाति न काहूं।
निस दिन मन महिं बास करति हैं। तिन महिं मन बिसराम धरति हैं ॥२०॥

धिक मोकहु नहिं कीमति जानी। कबहुं न जाचि लीनि मन भानी[5]।
आप प्रसन्न होहि नहिं दीनो। मंदभाग यांते निज चीनों ॥२२॥

कपट कर्यो मुझ सों गुरु पूरन। जिन को प्रेम होहि उर पूर न[6]।
इम बिचार करि रिसि को धारी। लोचन जल बूंदनि को डारो ॥२३॥

---

१. किसी का डर नहीं करती। २. लटकाई। ३. पकड़वाई। ४. घोड़े की पीठ पर। ५. मनोकामना। ६. जिसके मन में मेरे लिए पूरा प्रेम नहीं है।

जेवर जबर जवाहर लागे। अंगनि ते उतारि करि त्यागे।
अंभ्रण[1] परी, बिकीरन[2] सोहैं। जथा गगन महिं उडगन जोहैं ॥२४॥

रंगदार अंबर बर गेरे। मोटि मलिन पट ले तिसि बेरे।
खान पान को त्यागनि कीना। म्रिदुल प्रयंक छोरि तबि दीना ॥२५॥

कै बर सुत को लैहों पाइ। नांहि त जीवनि जाइ बिलाइ।
अवनि सयन करि नयन सनीर। संकट रिसि ते होति अधीर ॥२६॥

परी रही भा संध्या काल। अधिक निसा महिं भई बिहाल।
तरफति दुखित प्राति हुइ आई। सम संमत के रैनि बिताई ॥२८॥

दासी अनिक उठावति बोलति। क्या दुख है? कहि इति उति डोलति।
बूझि रही नहिं कछू बतावै। हरता पीर, पीर मम पावैं[3] ॥२९॥

पीरनि पीर सरब ही जानैं। इम कहि बहुर तूशनी ठानैं।
इति सतिगुरु निति नेम रखंते। जाम जामनी जबहि जगंते ॥३०॥

तिस दिन कौलां को दुख जाना। खैंचि प्रेम की भई महाना।
थिर्‌यो न जाइ न मन थिर होइ। प्रेमी को दुख सहैं न सोइ ॥३३॥

गुरु के ध्यान पराइन भई। गुर मूरति मन थिरता लई।
इम जोगी के ह्वै न समाधि। लई प्रेम नै दिढ करि बांधि ॥३४॥

प्रीति करे ब्याकुलता धारी। नहीं जाति प्रभु पासि सहारी।
केतिक रह्यो सुखमनी पाठ। उठे तुरति ही तजि सभि ठाठ ॥३५॥

भगति वतस जो बिरद उदारा। उर गाढो करि अंगीकारा।
अपर नेम प्रण त्यागे जाइं। प्रिय को हित नहिं तज्यो कदाइ ॥३६॥

गए बेग ते घर तिसि घरी। कौलां कौल[4] बिलोचन परी।
करी बिलोकनि बैठे तहां। पढ्यो पाठ जेतिक थो रहा ॥३७॥
(रा० ५ : ५७)

दोहरा

बरनी जाइ न कछु दशा धरनी लोटति दीह।
हरनी द्रिग तरनी परी गुरू लखी सप्रीह[5] ॥१॥

---

१. आंगन। २. बिखरे हुए ऐसे शोभित होते हैं। ३. पीड़ा को हरने वाले मेरी पीड़ा जानते हैं। ४. कमल बिलोचन वाली। ५. इच्छा सहित।

चौपई

जबि सतिगुरु लखि मंदर काज़ी। तरे दरीची के किय बाज़ी।
ततछिन कौलां लखि आगवनू। तूरन चहति तज्यो निज भवनू॥२॥

सतिगुरु अजमत जुति रिपुदवनू। जानि रिदै डर करहि न कवनू[1]।
धरि कमंद तर को लरकाई[2]। कर दासी के द्रिढ गहिवाई[3]॥३॥

तूरन तरे उतर करि आई। गुरु पग पंकज गहि सिर लाई।
रिदे अनंद बिलंद उमंगा। भयो रोम हरखन सभि अंगा॥४॥

गदगद गिरा न कुछ कहि जाई। गही बांहु गुर बेल[4] चढ़ाई।
प्रेर्यो हय पुरि बाहिर आए। बड़े बेग बायू सम जाए॥५॥
(रा० ५ : २२)

(कौला का पुत्र प्राप्ति के लिए मान करना एवं गुरुजी का वरदान)

दोहरा

केतिक दिन पशचाति ते कौलां सुनति अनंद।
चहति बिलोकनि गुरू सुत उर अभिलाख विलंद॥१॥

चौपई

आइ अपने सदन दुखारी। बैठी सोचति दीन बिचारी।
जानि तुरकनि मोकहु त्यागा। करति कपट को नहिं अनुरागा॥१८॥

सभि ते मुझ को जानि मलीनी। प्रीति रिदे की नहिं मम चीनी।
मन बांछति संगति वर पावै। जो कबहूं करि दरशन आवै॥१९॥

मम सम प्रीत होइ किस माहूं। तिन बिन मन छिनि जाति न काहूं।
निस दिन मन महिं बास करति हैं। तिन महिं मन बिसराम धरति हैं॥२०॥

धिक मोकहु नहिं कीमति जानी। कबहुं न जाचि लीनि मन भानी[5]।
आप प्रसन्न होहि नहिं दीनो। मंदभाग यांते निज चीनों॥२२॥

कपट कर्यो मुझ सों गुरु पूरन। जिन को प्रेम होहि उर पूर न[6]।
इम बिचार करि रिसि को धारी। लोचन जल बूंदनि को डारी॥२३॥

---

१. किसी का डर नहीं करती। २. लटकाई। ३. पकड़वाई। ४. घोड़े की पीठ पर। ५. मनोकामना। ६. जिसके मन में मेरे लिए पूरा प्रेम नहीं है।

जेवर जबर जवाहर लागे। अंगनि ते उतारि करि त्यागे।
अंभरण[1] परी, बिकीरन[2] सोहैं। जथा गगन महिं उडगन जोहैं ॥२४॥

रंगदार अंबर बर गेरे। मोटि मलिन पट ले तिसि बेरे।
खान पान को त्यागनि कीना। म्रिदुल प्रयंक छोरि तबि दीना ॥२५॥

कै बर सुत को लैहों पाइ। नांहि त जीवनि जाइ बिलाइ।
अवनि सयन करि नयन सनीर। संकट रिसि ते होति अधीर ॥२६॥

परी रही भा संध्या काल। अधिक निसा महिं भई बिहाल।
तरफति दुखित प्राति हुइ आई। सम संमत के रैनि बिताई ॥२८॥

दासी अनिक उठावति बोलति। क्या दुख है ? कहि इति उति डोलति।
बूझि रही नहिं कछू बतावै। हरता पीर, पीर मम पावैं[3] ॥२९॥

पीरनि पीर सरब ही जानैं। इम कहि बहुर तूशनी ठानैं।
इति सतिगुरु निति नेम रखंते। जाम जामनी जबहि जगंते ॥३०॥

तिस दिन कौलां को दुख जाना। खैंचि प्रेम की भई महाना।
थिर्‌यो न जाइ न मन थिर होइ। प्रेमी को दुख सहैं न सोइ ॥३३॥

गुरु के ध्यान पराइन भई। गुर मूरति मन थिरता लई।
इम जोगी के ह्वै न समाधि। लई प्रेम नै दिढ करि बांधि ॥३४॥

प्रीति करे ब्याकुलता धारी। नहीं जाति प्रभु पासि सहारी।
केतिक रह्यो सुखमनी पाठ। उठे तुरति ही तजि सभि ठाठ ॥३५॥

भगति वतस जो बिरद उदारा। उर गाढो करि अंगीकारा।
अपर नेम प्रण त्यागे जाइं। प्रिय को हित नहिं तज्यो कदाइ ॥३६॥

गए बेग ते घर तिसि घरी। कौलां कौल[4] बिलोचन परी।
करी बिलोकनि बैठे तहां। पठ्यो पाठ जेतिक थो रहा ॥३७॥

(रा० ५ : ५७)

दोहरा

बरनी जाइ न कछु दशा धरनी लोटति दीह।
हरनी द्रिग तरनी परी गुरू लखी सप्रीह[5] ॥१॥

---

१. आंगन। २. बिखरे हुए ऐसे शोभित होते हैं। ३. पीड़ा को हरने वाले मेरी पीड़ा जानते हैं। ४. कमल बिलोचन वाली। ५. इच्छा सहित।

चौपई

क्यों धर परी नीर भरि बरनी[1] । भई बिबरनी चंपक बरनी ।
किसि ने तोरि अनादर कीनो । कहु कारन, क्यों बेख मलीनो ।।२।।

बांछति कहति प्रथम हम पासि । सो करि देते कारज रासि ।
क्यों इतनो तन पाइ बिखादू । बिना आज ते निति अहिलादू ।।३।।

सुनि म्रिदु वाक उठी कर जोरि । करि निज मुख सतिगुरु की ओरि ।
तुम समरथ सभि रीति गुसाईं । कहि सभि जग अरु मैं लखि पाई ।।४।।

लाखहुं देशनि ते सिख आवैं । मन बांछति तुम ते बर पावैं ।
पूरब जनम भाग मम नीका । होनि हुतो निसतारो[2] जीका ।।५।।

जिसि ते अंचर गह्यो तुमारा । महां नरक ते मोहि उबारा ।
जनम तुरक मम अविगति जाती । सो तजि करि मैं तुम संगाती ।।६।।

जबि लौ जगत रहै इह बन्यो । तबि लौ रावर को जसु सुन्यो ।
मैं बिचारि नीके उर जोई । नहिं प्रलोक की चिंता कोई ।।७।।

इकि चिंता इसि जग की भारी । सो न मिटहि जे शरणि तुमारी ।
तौ निरभाग भई तिसि दिशि ते । मुहि नहिं देहिं लेहि जग जिसि ते ।।८।।

कह्यो गुरू क्या काज तुमारा । जिसि करि अस संकट तन धारा ।
कहु अबि हम सों, पूरन करौं । नाहक किमि सचितं दुख भरो ।।९।।

निज परि क्रिपा जानि सतिगुरु की । कहति भई निज चिंता उर की ।
जिम रावर को जस जग सारे । बिदति भविख्यति रहै उदारे ।।१०।।

तिमि निज नाम उजागर काखौं । पुत्र आपि ते हुइ अभिलाखौं ।
रहहि सांझि जग महिं तबि मेरी । जानहिं नर संतति जबि हेरी[3] ।।११।।

इसि दुख करि दुखीआ मन मोरा । हरहु भरोसा है इकि तोरा ।
श्री हरिगोविंद सुनति बखाना । कहां मनोरथ तैं उर ठाना ।।१२।।

नाशवंत जग महिं चहि नामू । क्यों न संभारति आगलि धामू[4] ।
सुमतिवंत बड सो हैं प्रानी । जगति वाशना जिनहुं मिटानी ।।१३।।

क्या सुत बित ते सरहि अगारी । मरे न आवहिं कबहुं निहारी ।
हंता ममता मिथ्या धारति । जगत पदारथ हित भव हारति ।।१४।।

---

१. बरोनियां । २. मुक्ति । ३. (जग) देखेगा । ४.परलोक ।

कहां पुत्र ते कारज सरहि। त्यागि चलहि एकलि जबि मरहिं।
हम संगति को लाभ इही है। जगति वाशना होति नहीं है ॥१५॥

क्या तुछ वसतू पर ललचाई। इतो खेद मन धर्यो जनाई।
हम सो प्रेम इतो तुम कर्यो। अबि लौ नहीं मोह परहर्यो ॥१६॥

उठहु शनान करहु हरिखाइ। पहिरहु बसत्र सु भोजन खाइ।
तेरो पुत्र होहि जग ऐसे। नाम लेहि तुव समिहूं जैसे ॥२४॥

नाम तोहि परि ताल लगावौं। होहि कौलसर बहु बिदितावौं।
करहिं शनान नाम तुहि लैहैं। सर जबि गिनहिं तहां गिन लैहैं ॥२५॥

सदा अटल होवहि नहिं जाइ। सुनति उठी कौलां हर खाइ।
तुम मेरे हित के हो करिता। अद्भुत लखियति है तुव चरिता ॥२६॥

यांते मैं न करौं हठ कोई। तुम को आछी कीजहि सोई।
इमि कहि हरखति कीनि शनाने। सतिगुर आए अपनि सथाने ॥२७॥

(रा० ५ : ५८)

(कौला की वियोगावस्था)

चौपई

उत कौलां जबि गुरू पठाई। तबि ते ब्याधि देहि उपजाई।
दिन प्रति बाधे[1] भई बिमारी। गुर को प्रेम रिदे नित भारी ॥२२॥

सिमरति दिन महिं भोजन त्यागा। निसा नींद नहिं मन अनुरागा।
परी रहै छादन मुख करै। दीरघ स्वास ब्रिहा ते भरै ॥२३॥

गुर मूरति महिं मन लय लीन। रिदे बिसूरति बहु दुख भीन।
पर्यो जंग भा बिघन बिसाला। दरशन को तरफति बिहाला ॥२४॥

क्रिपा धारि कबि देहिं दिखाई। बिछुरन ते प्रान न छूटि जाईं।
भयो रोग तन वधति बिलंदा। बहुर ब्रिहा श्री हरिगोविंदा ॥२५॥

सूखम अंगी भई लचारी। देहु दरस प्रभु मरिबे बारी।
घट घट के तुम अंतरजामी। जानहु मोहि रिदे की स्वामी ॥२६॥

मोहि भरोसा रावर केरा। बनहु सहाइ अंत की बेरा।
मुझ जीवति को दरस दिखावहु। अधिक त्रिखति को सुधा पिआवहु ॥२८॥

---

१. अधिक।

गन तुरकनि रण दीरघ होई। लखि न जाइ सुधि पठी न कोई।
प्रिय दासन के प्रेमी प्यारे। आवहु दिहु दरशन इस बारे ॥२९॥

इत्यादिक सिमरति दिन रैन। निस दिन चल्यो जाति जल नैन।
इम कौलां की गति गुरु जानि। समां समीप तजनि को प्रान ॥३०॥

दरशन देउं जीवती जाइ। मोहि प्रेम ते अति अकुलाइ।
हय को प्रेरति तूरन चाले। पैंदेखान आदि भट नाले ॥३१॥

इक घटिका लग आवति रहे। सादर माधुर बाकनि कहे।
जहिं कौलां उर दुखी बिचारी। सिमरति निस दिन प्रीती धारी ॥३६॥

तहां प्रवेश तुरत ही होए। कौलां कौल[1] नेत्र करि जोए।
उदति उठनि को[2] उठ्यो न जाई। बोल्यो चहि, न बोल मुख आई ॥३७॥

दुरबल तन झुर झंझर होवा[3]। पीरो रंग बदन को जोवा।
तत छिन ठिग ह्वै गुरू हटाई। बैठे तिस ठिग धीर बंधाई ॥३८॥

कितिक देरि महिं हाथ निकारे। चरन कमल परसति हित धारे।
बही बिलोचन ते जल धारा। धारा धीरज बाक उचारा ॥३९॥

सभि जानति मम चित की जेती। कहा कहों मैं तुमरे सेती[4]।
जानि दीन की दशा क्रिपाला। आइ दरस दीनसि इस काला ॥४०॥

कौन प्रभू तुम बिन है मेरा। सुख दुख बिखै अलंब बडेरा।
सिमरति निस दिन नाम तुमारा। ब्याकुल ब्रिह ने कीनि उदारा ॥४१॥

अबि मैं निकटि निहारों मरना। दीनि दरस, कीनसि ब्रिहु हरना।
अबि नहिं चित मरों इस काला। पुरी कामना आनि क्रिपाला ॥४२॥

सुनि श्री हरिगोविंद बखाना। समां मरन को तुव नियराना।
सिमरन कर्यो बहुत ही मेरा। आनि मिल्यो तोको बिन देरा ॥४३॥

तोहि प्रेम ने टिकनि न दए। यांते सकल काज तजि अए।
चार घटी जबि दिन रहि काली। तबि तन तुव प्राननि ते खाली ॥४४॥

तबि लगी सिमरहु श्री करतारा। भव सागर ते भयो उधारा।
प्रथम जनम की तूं बडि भागनि। हमरे बिखै[5] भए अनुरागनि ॥४५॥

---

१. कमल। २. उठना चाहती है। ३. कंकाल-सा हो गया है। ४. आप के साथ (आपका)। ५. प्रति।

बहुर न होइ जगत महिं फेरा। भयो उधार दुखन ते तेरा।
कछु नहिं चित धरहु उर महीआ। धन्न जनम उत्तम पद लहीआ ॥४६॥

दोइ घटी लगि बैठि रहे। इत्यादिक सुनि अरु बहु कहे।
धीरज दीनि चरन छुटकावति। नहिं छोरति पुन पुन उर लावति ॥४७॥

हे सतिगुर तुमरे पग प्यारे। नहिं त्यागनि चित चहिति हमारे।
बारि बारि मुख पर को फेरति। त्रिपत न होति रूप गुरु हेरति ॥४८॥

आस्वासनि दीरघ तबि कीनो[१]। अंत समां जबि मेरो चीनो।
सनमुख मम बैठहु तबि आइ। तुम देखति ही प्रान सिधाईं ॥४९॥

इह बिननी मेरी सुनि लीजै। तुम क्रिपाल बड करुना कीजै।
सुनि गुर कह्यो आइं तुव पास। रहु अनंद महिं चित बिनासि ॥५०॥
(रा० ६ : २२)

* * *

(श्री गूजरी जी की विरहावस्था)

(गुरुजी के प्रवास के समय)

चौपई

सुनि गुजरी निज पति की बानी। करति बिचारनि नीक बखानी[२]।
तऊ सनेह द्रिगनि जल छावा। कहिबे हेतु बोल नहिं आवा ॥४२॥

कंत सरीर बिलोकति रही। रुक्यो कंठ बोलति कछु नहीं।
सहिज सुभाइ गुरू चलि आए। वहिर बैठि दीवान लगाए ॥४३॥
(रा० १२ : २५)

(श्रीमती साहिब देवी जी की विरहावस्था)

साहिब देवी सदा सचिंत। सौत सुंदरी निकट बसंति।
गुरू शरीर को चितवन करती। निस दिन ध्यान रिदे पति धरती ॥३८॥

---

१. गुरुजी ने उसे बड़ा दिलासा दिया। २. ठीक ही कहा है।

दुरबल तन जिस को हुइ गयो। शोक पराइन चित नित थयो।
पीत बदन आंसू द्रिग गेरति। नहीं समीप कंत को हेरति ।।३९।।

शसत्र दरस कै भोजन खावै। अलप अहार कछू नहिं भावै।
इम अपनी बय सकल बिताई। प्रिय पति महि चित ब्रिति लगाई ।।४०।।
(ए० २ : १५)

वात्सल्य रस

(श्री हरिगोविन्द का जन्मोत्सव)

दोहरा

आदितवार सु दिन महां थिति इकादशी जानि।
सुकल पख्य आखाढ को प्रगटे गुरू महांन ।।२५।।

सवैया

चारू प्रकाश अवास[1] भयो पिखि धाइन[2] बेबसि ह्वै बलिहारू।
हारू उद्‌यो मन को जनु चंद बिलंद सरूप शुभै सम मारू[3]।
मारू रिपून को[4], सेवक तारक, मोहनी मूरति बुद्धि उदारू[5]।
दारू सुदोश हुतासन भा[6] बल प्राक्रम जा बिथरै दिस चारू[7] ।।२६।।

दीपक मंद बिलंद प्रकाश तै[8] धाइ भई बिसमे हरखावति।
बाल अनेक भए मम हाथ, नहीं इसके सम को दुति पावति।
सुंदर सूरति शोभ ते पूरति श्री मुख मंद मनो मुसकावति।
आप को पीर न, मात को पीर, सधीर प्रसंनता भूर उपावति ।।२७।।

कवित्त

बीजरी प्रकाशै जिम, तेज को उजासै तिम,
लोचन को भासै तबि गंग को सुनायो है।
जनम्यो सपूत सुनि धाइन ते पूत मना,
कलमखधूत[9] के रिदा सु हरिखायो है।

---

१. घर। २. धाय। ३. कामदेव। ४. शत्रुओं का संहार करने वाला। ५. श्रेष्ठ बुद्धि वाला। ६. दोष रूपी लकड़ियों के लिए अग्नि रूप। ७. चारों दिशाओं में फैलेगा। ८. उनके बड़े प्रकाश से दीपक मंद पड़ गए। ९. पावन।

त्रिंद ताप तापते सु प्रेम के प्रताप ते,
सदीव नाम जापते मनों सु प्रभू पायो है।
रंक नित ऐन ते कलपतरु लैनि ते ज्यों,
कौन भनै बैन ते जितिक मोद छायो है ॥२८॥

चाहै चिरकाल की[१] जु कामना बिसाल की,
सरीकनि के साल[२] की बिनासी चित मन की।
कमल समान भी प्रफुल्लिति महान तबि,
बानी सुखदानी सुनि जैसे मोर घन की।

जेवर जराव भीन धाइ कै सु हाथ दीनि,
आनंद उदधि मीन रीति सखी जन की।
चीरन को देति है दरब कोई लेति है,
सु दासी दौर दौर करैं, कहैं ज्यों बचन की ॥२६॥

दोहरा

अधिक महिद उतसाह को गंगा कीन अनंद।
घर अंतरि सभि इसी बिधि बखशी बखश बिलंद[३] ॥३०॥

सदन बिखै मेव्यो[४] नहीं पूरन ह्वै ततकाल।
निकस्यो बाहर उछर करि उतसव सुखद विसाल ॥३१॥

(रा० ३ : ४)

सवैया

बंदन वार हरित दल फूलन अनिक बरन की रचि करि सोइ।
श्री गुर-घर दर पर बहु बंधी लघु दुंदभि मधुरी धुनि होइ।
अबला ललित कलित बर बसत्रनि जेबर ज़ेब[५] अजाइब[६] जोइ।
देति बधाई आपस महिं मिलि बोलहिं हरष भरी सभि कोई ॥११॥

म्रिग द्रिग स्रिग ग्रीवा बर धारी बिधु बदनी करि करि सिंगार।
कोकिल कंठी गांवहिं गीतनि देति परसपर हसि हसि गार।
देव बधूटी कपट बेस धरि मधुर मधुर सुर मंगल चार।
भई भीर को सकिय पछान न सुंदर मंदिर जुति बिसतार ॥१२॥

---

१. चिरकालीन इच्छा। २. ईर्ष्या। ३. दान, पुरस्कार देना। ४. घर में नहीं समा पाया। ५. शोभा। ६. विचित्र।

गगन गोप हुइ सुर बर आए गुर मंदर को चरचहिं चारु।
मंजुल फूलनि, अंजुल भरि भरि, चंदन केसरि घसि घसि डारि।
अनिक सुगंधिनि सींचहि रुचि करि, रचि रचि रुचिर कुसम बिसतार।
धूप धुखावति, बंदन धारति, करति सतुति को बदन उचारि ॥१३॥
(रा० ३ : ५)

रामदास पुरि की सभि नारी मिलि बालक अवलोकनि चाहि।
तिस घर के दर पर हुइ ठांढी नमो कीनि उर बहु उतसाहि।
साहिबज़ादे को शुभ दरशन दिखरावहु, कहिं प्रेम उमाहि।
धाइ लयो सिस दोनहु कर पर देखि देखि करि बलि बलि जाहिं ॥२७॥

(बाबा बूढा दर्शनार्थ आया)

हाथन पर थिति करि सुन्दर सिस घर के दर लौ ल्याई धाइ।
देखति उठ्यो त्याग ब्रिध आसन दीरघ दरशन दिखि हरखाइ।
लाल म्रिदुल पद मनहुं कोकनद[1] उरध उठावति जनु दिखराइ।
अंग बिलंद सकल शुभ लच्छन मच्छ अकार रेख कर पाइ ॥३३॥

रेख छत्र की दाहन कर महिं चमरु रेख शोभति है बाम।
नख गन रकत सुमिलि सभि अंगुरी, व्रतलाकार[2] बदन है बाम[3]।
रुचिर चिकर मेचक लघु चिक्वन[4] बड़े बिलोचन बरनी[5] बाम[6]।
बालक वपू बिराजति श्री प्रभु बरनति बानी ब्रह्मा बाम[7] ॥३४॥

दोहरा

बंदन करि दरसे गुरू ब्रिध के बध्यो अनंद।
सभिनि सुनावति नाम कहि शुभ श्री हरिगोबिंद ॥३५॥
(रा० ३ : ५)

दोहरा

निकट निकट जे ग्राम हैं सभिनि सुनी सुधि कान।
मंगत[8] गन संगत तबहि देति बधाई आनि ॥१॥

---

१. कमल। २. गोल आकार का। ३. सुन्दर। ४. छोटे छोट घुंघराले बाल। ५. वरौनियां ६. टेढ़ी वक्र। ७. सरस्वती, ब्रह्मा, शिव। ८. भिखारी।

सवैया

नाचहिं हीज[1] गाइ सुख राचहिं, जाचहिं धन माचहिं निज खेल।
ढोलक, टलका, घुंघरू ताली ताल मिलाइ, भवाली मेलि।
हाथनि भाव उसारति शारति[2] वारति वथु डारति बहु बेल[3]।
बैठति कबहुं अमैठति अंगन[4] भौह अमैठति पैठति पेल[5] ॥२॥

होति प्रसन्न हेरि गुर अरजन मन बांछति धन पाइ सु जाइं।
इत्यादिक उतसव अति बरधति सेवक सिक्ख रहे हरखाइ।
जिति किति पूरन मोद महां चित गाइ शबद पद गुरू मनाइ।
बहु नर नारि शिंगार धारि करि मिले बडाली महिं समुदाइ ॥३॥
(रा० ३ : ६)

(गुरु अरजन का पुत्र स्नेह एवं अन्य उत्सव)

अधिक प्रसन्न होति सुत हेरति बलिहारी हुइ करति दुलार।
सूंघति मसतक परम प्रेम ते ब्रिध को लखहिं महां उपकार।
कीनी छठी को उतसव भारी सभि को दीनि कराह अहार।
बाजे दर पर बाजति हैं बहु सिख संगति सुख करहिं उदार ॥१८॥

दस दिन बीते पुन उतसव भा मंगल करहिं अनेक प्रकार।
कुल की सगल रीति शुभ कीनसि जथा ब्रिधन के अंगीकार।
लघु दुंदभि की होति मधुर धुनि सुनि श्रोननि ते अनंद उदार।
बजहिं नफीरनि, गाइं सबद बिच खरे लोक उचरें जैकार ॥१६॥

बधति सरीर दूज ते जस ससि तिम तिम सुंदरता अधिकाइ।
एक मास बीत्यो जबि ऐसे करति दुलार मात बल जाइ।
रात दिवस सुत को मुख देखहि नहिं लोचन क्यों हूं त्रिपताइ।
बरबस निंद्रा अधिक वधहि जबि सुपतहि, छिप्र जाग को पाइ ॥२१॥

जनु पनंग मन मनि सों लाग्यो अहि निस राखन महिं हितकार।
निंद्रा ते जबि उघरहिं लोचन तनुज बदन पर द्रिशटि पसार।
पालति, लालति, घालति घाले, डालति नयन श्यामता चारु।
झगली झीन महीन सूत की बरन बरन की पाइ सुधारि ॥२२॥

१. नपुंसक (ज़नखे)। २. इशारे करना, संकेत करना। ३. बेलें करना, धन न्योछावर करना। ४. अंग अकड़ाना। ५. धक्के मार कर उसका स्थान ले लेते हैं।

कंचन के कंकन करवाइस जुग जुग हीरे जरे जराइ।
छुद्र घंटका बाजन वारी कारीगर ने घरी सुहाइ।
पावन पद पंकज महिं नूपर रुणकति रुचिरि जि उरध उचाई।
छाप छलाइनि गर के भूषन शोभति सभि हि शुभ पहिराइ ।।२३।।

श्याम बिंदु सुंदर बिच भौहन श्याम केस ऐसे छबि पाइ।
अलको बालक अलगन तजि करि धस्यो पंक अम्रित के आइ।
डीठ न लगहि डरति उर जननी वारती राई लौन मंगाइ।
तिनका तोरि तोरि करि गेरति रच्छक श्री नानकले नाइ ।।२४।।

जेवर जरे जवाहर ज़ाहर ज़ेब अजाइब जबर जरंति।
सुवरन को सु वरन तन दुति मिलि समता ते भेब न लखियंति।
करकस होति सपरस जानीयत कै हीरन की दमक दिखंति।
तिन की उपमा कहौं कौन की मन भ्रम हार्यो लघु लगंत ।।२५।।

दोहरा

इस प्रकार ब्रिधति गुरू सुंदर सरब सरीर।
अंग बिलंद बिलोकीयति हरगुबिंद मति धीर ।।२६।।

(रा० ३ : ६)

(प्रथिए की पत्नी की ईर्ष्या एवं दुष्कर्म)

दलक्यो रिद दासी ते सुनि करि मनहुं सरप ने डसी दुखंति।
पीरी परी धीर उर हरि करि हुइ भैभीत शरीक बधंति।
बह्यो जाति चित चिंता सलिता खान पान कुछ तनक करंति।
दुरबलता अंगनि भइ सगरे उशन सास बहु बार भरंति ।।७।।

(रा० ३ : ६)

(विष देने वाली धाय का वध)

दोहरा

प्रिथीए की दासी फिरी खोजति दुरमति नारि।
इक ने कहि धीरज दई, तोहि करौं मैं कार ।।१।।

सवैया

रामदास पुरि बसहि कुचलरणी धाइन की क्रित ते गुज़रान[१] ।
दासी मसलत[२] अघ की करि कै करमो[३] निकट सुमेलि आनि ।
सादर सदन बिठाइ समीपी पूरब भाख्यो कशट महान ।
अनुज लीनि गुरता बिप्रीती जेठो बैठो रह्यो सुजान ।।२।।

बहु उपचारन ते निपज्यो सुत तिनहुं कीनि उतसव हरखाइ ।
कहै कि गादी को इह मालक पाछे गुरता ले शुभ पाइ ।
पूरब आस हुती हंमरे मन श्री अरजन जबि तन बिनसाइ ।
संतति नहीं, बनहिं हम ही गुर चारहुं दिश के पूज कहांइ ।।३।।

जबि को नंदन तिन के जनम्यो तबि ते हम हुइ गए निरास ।
अबि उपाइ अस करि चित चितवनि जिस ते बालक होइ बिनास ।
पुन तिन के जनमे न आतमज[४] हमरे काज होइं सभि रास ।
दरब आदि सुंदर सभि वसतू चहुं दिश ते चलि आइ अवास ।।४।।

तबि तेरी बहु करहिं जीवका भोजन बसन सकल परवार ।
निज घर ते हम देहिं तोहि कहु अरु तेरो जानहिं उपकार ।
मिहरबान[५] के पिता पास ते आदर मैं करिवाउं उदार ।
इह कारज निज चातुरता ते करहिं अबहिं उपजहि सुख सार ।।५।।

इक शत लेहु रजतपन[६] अबिहूं, करहु काज को बिलम बिसारि ।
बालक म्रितु हमरो हित लखि चित पुन नहिं कमी, भरहिं भंडार ।
इम कहि बसत्र आपनो लेकरि दीनसि तिस के ऊपर डार ।
अति सनेह की बात बखानति कहि कहि कबहूं भरि द्रिग बारि ।।६।।

धाइ क्रूर करमा अति पापनि सुनि करि हरखी धीरज दीनि[७] ।
दुखी न होहु, करौं मैं तौ हित, रचौं कपट को लेय न चीन ।
तुमरे सुख ते है सुख मोकउ खान पान की सभि सुधि लीनि ।
सो उठि गए कहां तिन साथहि, लेनि देनि कुछ नाहिं न कीनि ।।७।।

चित बांछति इह कारज मोकउ करिहौं मैं अबि बिलम बिसारि ।
चिंता रंचकहूं नहिं कीजहि निशचै लखहु सुधारी कार ।

१. निर्वाह । २. परामर्श, सलाह । ३. प्रिथीए की पत्नी का नाम । ४. पुत्र । ५. प्रिथीए का पुत्र । ६. रुपये । ७. कोई जान नहीं सकेगा ।

मेरो द्रोह प्रथम ही तिन सों अपर धाइ को लीनि हकार।
नहीं अवाहन मो कौ कीनसि नहिं कुछ दीनसि, बहु बुरिआर ॥८॥

लगहि सूल मुझ तिन के मंगल जिस हति होइ महां सुख मोहि।
प्रिथीए की बामा सभि सुनि कै कहै कि साध साध बहु तोहि।
भयो भरोस लखी बुधि दीरघ, तुझ ही ते कारज सिध होइ।
इस प्रकार निशचे करि दोनहु दुरबुद्धा गन पाप अरोहि[1] ॥९॥

ले कुछ दरब सदन महिं आई रंगदार अंबर तन धारि।
रुचिर बिभूखन पहिरे रुचि करि मुख पखार द्रिग अंजन डारि।
ज़हिर[2] अज़ाहर[3] कर ले रगर्यो निज असतन जुग लेप सुधारि।
शुशक कीनि पुन अंगोआ पहिरी पंथ बडाली के पग धारि ॥१०॥

दुराचारनी मंगल समये आई प्रवेशी गुरू निकेत।
अधिक भीर नारिनि की जहिं कहिं जथा जोग आदर कहु देति।
कितिक बाल को दरशन करती कितिक सराहति प्रीत समेत।
केतिक लेति उछंग दुलारति, केतिक बिगसति दंतनि सेत* ॥१३॥

दोहरा

बसत्र बिभूखन देखि शुभ आदर साथ बिठाइ।
इसत्रिनि के समुदाइ मैं पुत्रनि बात चलाइ ॥१४॥

सवैया

सभिनि बिखै गंगा म्रिदु बच कहि दो इक दिन ते अनमन नंद।
असतन लेति न रुचि करि मुख महिं को दुख सुधि नहिं मोहि बिलंद[4]।
जितिक ब्रिद्ध उपचारनि भाखति गुरती आदि देहि सुख कंद।
घाति पाइ करि दुशटा बोली क्रिशन पूतना केरि मनिंद ॥१५॥

मोहि बिखै गुन दियो प्रभू ने बहु बालक ते मैं पतिआइ[5]।
पान करहि जो असतन मेरे तिस सिस के दुख निकटि न आइ।
हरहि अरुच[6] को तत छिन छुधतहि आरबला सु अधिक बिरधाइ।
रहै निरोवा सुख सों बय महिं नहिं औशधि की चाहि रहाइ ॥१६॥

१. पाप जिन के सिर चढ़े हैं (अति पापी)। २. विष। ३. गुप्त। ४. बहुत। ५. आजमाया है। ६. अरुचि, भूख के प्रति।

* पा०—दंतनिसेत।

तिस ते सुनि सभि त्रियनि सराही, बसन बिभूखन सुंदर हेरि।
बिन औषधि रुज की इह हरता धन्य तोहि गुन लह्यो बडेर।
मरज़ी सभि नारिनि की लखि करि मात गंग बिसमाइ घनेर।
दियो पुत्र तिस गोद प्रमोदति दुशट जीअ तिन को समशेर[१] ॥१६॥

श्री गुरु हरिगुबिंद चित जानी क्रूर जु करमा आवे नारि।
दिन चारिक ते अनमन होए जिस ते मात चिंत ले धारि।
धाइ उछंग देहिगी रुचि करि यांते पूरब बिधी सुधारि।
दुशटन के नाशन को मम तन सिस सरूप ते करी सु कारि ॥२०॥

धाइ उछंग गए हुइ चंचल इत उत मुख करि अंग चलंति।
कछु रोदन करि बहुर टिके तहिं लोरी देति मधुर छलवंति।
अंगीआ ते असतन करि बाहर एक हाथ सों समुख करंत।
दूसर कर पर सिस को सिर धरि ऊपर डार्यो बसत्र दुरंत ॥२१॥

कवित्त

तत छिन अंतर बसन असतन देति,
लेति न तनक गहे होति इत ऊतना[२]।
गाढो जबि कोनि तौ पयोधर को लीनि मुख,
हाथ को पसारि गही छोर तब गूतना[३]।

दूजे हाथ साथ गह्यो दूजो कुच द्रिढ करि,
खोटी क्रित हेतु आई लागे लोभ भूतना।
जांको मन पूत ना लख्यो गुरू सपूतना[४],
जिसी के तीर पूत ना[५], संहारी सम पूतना[६] ॥२२॥

गाढ़े अंग पीर करि गाढी उर पीर करि,
प्रान ते सरीर करि भिन्न ऐंच लीनीओ।
जैसे पोल तील ते किलाल[७] को सु फूक नालि[८],
खैंचि लेति बालक सुभाइक ही कीनिओ।

'हाइ हाइ' बोलती बिहाल ह्वै बिसाल,
'बाल' छोरो अबि मोहिं को प्रताप चित चीनिओ।

---

१. दुष्ट जीव, जिन के लिए वे (गुरु हरिगोविंद) सिंह समान हैं। २. इधर-उधर। ३. वेणी।
४. सुपुत्र। ५. पवित्र नहीं। ६. पूतना। ७. जैसे पोली तीली से जल। ८. फूक के साथ।

लोचन मैं नीर भरी, धीर हरि चीर तजी,
परी सभी तीर[1] धर प्राण करि हीनिग्रो ॥२३॥

कूकती पुकार बिसंभार ह्वै पसार अंग,
परी म्रितु भई द्रिग निकरे परति जनु।
मुख ते झगूर जाति पीरी पर गई गात,
भयो उतपात हेरि नारी बिसमाई मन।

कहां होइ गयो बैठी सभिनि मैं लियो सिसू,
त्रास उपजयो तजी दर जहां पर्यो तन।
गंगा भयभीत भई पुत्र को गहन धाई,
हाथनी उचावै प्रिया क्रिपन को मानो धन ॥२४॥

हाथ गही बेनी बल साथ नहिं छोरैं,
तांहि मात छुटकावै कहां ऐतनो सु होइ जोर[2]।
दासी को पुकारें रिस भरी क्यों न आवें पासि,
कंपति सरीर त्रास धारे उतपात घोर।

मिली गन आइ नीठ नीठ करि छोरी तबि,
कंठ सों लगायो नंद पर्यो है बिलंद शोर।
परि जिस ठौर अवलोकति न तांहि ओर,
डरी उर होर धाई थान निज छोरि छोरि ॥२५॥

मरि दुराचारनी ते कुछक प्रकाश भयो,
बीजरी की रीति थरकाई है अजर बीच।
सभी के बिलोचन गए हैं मुंद तेही छिन,
बोलति न बैन कोई हेरि कै करम बीच।

हाथ जुग पाव को पसार कै परि है धर,
दास गन दासी मिलि देखी सु ग्रसी है मीच।
जीव गयो ऊपर अपर देहि धारि करि,
मूरछति कोई लखि तांके मुख[3] बार सीच ॥२६॥

---

१. निकट। २. बल। ३. मुख में जल डालते हैं

दोहरा

इस प्रकार जबि मरि गई अपर देहि धरि सोइ ।
छपि अकाश मैं भेद निज भनति सुनति सभि कोइ ।।।२७।।

(रा० ३ : ७)

दुरी गगन महिं बचन कहि डरहु न मो ते कोइ ।
सभी प्रसंग सुनि लीजिए भयो कहाँ मैं सोइ ।।१।।

सवैया

पूरब जनम मोहि गंधरवी सकल शकति जुति मैं मन मान ।
गावन विद्या बिखे निपुन बहु सुंदर अति सरूप दुतिवान ।
सुरग सदा बिचरति सुख पावति इक दिन सुरनि सभा के थान ।
करति गान बहु तान मिलावति सुनति कान सो हुई बिरमान[1] ।।२।।

तबि सुरगुरु आयो किस कारन हेरति उठे सभा सुर ब्रिंद ।
सादर नमो कीनि बड जान्यो ब्रह्म विद्या महि निपुन बिलंद ।
बैठ्यो आनि सभिनि कहु देखति राग रंग महिं भए अनंद ।
मम दिशि लखि करि जानि मानि बड इह दुशटाचारिणि मतिमंद ।।३।।

गावनि अरु सरूप बड मेरो इहु गुन जानि धरति हंकार ।
सुरनि सभा के उचित न दुशटा नहि मन जान्यो मोहि उदार ।
अपर सरब ही मानहिं दीरघ इंद्र आदि जेतिक बलि भार ।
दंड जोग है देउं स्राप इस गरब बिनाशहि इसी प्रकार ।।४।।

इम बिचार करि स्राप दीनि तबि म्रितु मंडल महिं जनम सु धारि ।
जाइ करम धाइन के करिकै हेतु जीवका करहु अहार ।
पाप कमावहु जीवनि दुख करि[2] धरहु देहि जे महिद गवार ।
मद्र देश महिं बिचरहु जित कित भोगहु दुख ह्वै करि बुरिआर ।।५।।

मैं कर जोरे सुर गुरु आगे कबि मेरो पुन होइ उधार ।
गरब कीनि तिस को फल पायो तुम क्रिपाल हो सदा उदार ।

---

१. मोहित । २. जीवों को दुख देकर ।

इसत्री मति पीछे सुधि आवति निज सरूप गुन के हंकार ।
साधु सदा छिमा को धारति अपकारी पर भी उपकार ।।६।।

सुर गुरु भन्यो होहिं गुरु अरजन श्री नानक के बैठहिं थान ।
तिन को पुत्र जनम जबि धारहि तिस के साथ मेलि निजठान ।
सो तेरो तबि करहि धारनि निजबल ते हानहिं गो प्रान ।
बहुर सरीर परापति हुइ गो गंधरबी को रूप महान ।।७।।

भयो पतन सुरगुरु के बच सुनि भा अग्यान जनम को पाइ ।
चिरंकाल सी बिचरति इत उत रामदास पुरि बासी आइ ।
प्रिथीए की दासी मुझ मिलि करि करमो ढिग पहुंचाई जाइ ।
तिसने दीनि रजतपण इक शत इम सिख्या दे इहां पठाइ ।।८।।

श्री अरजन नंदन को हति करि इह मो पर कीजहि उपकार ।
लोभ लहिर ने प्रेरन कीनसि मैं आई सु मनोरथ धारि ।
कपट बेस धरि बालक नाशनि, ज़हिर सथन मैं लेपन धार ।
प्रभु अवतार पुत्र है तेरो, पकरि पयोधर को मुझ मारि ।।९।।
(रा० ३ : ८)

सवैया

गंग अनंद सों नंदन को प्रतिपारति होइ सुचेत सदा ।
मंदर अंदर सुंदर पालना लालति लाल झुलाइ तदा ।
नारिनि ब्रिंद मैं ना कबि ल्यावति देखति डीठ लगै न कदा ।
टामन को करि जाइ नहीं रख वार रहो गुर रूप सदा ।।२१।।

तांते[1] करे जल मज्जन को मुख चारु पखारति लालति है ।
पोंछति सूखम चीर गहे पट सुंदर फेर उढालति है ।
बाघ नखा मढि कंचन ते मखतूल[2] गरे महिं डालति है ।
यों दिन केतिक बीत गए सुत प्रेम करे प्रति पालति है ।।२२।।

श्री हरिगोबिंद सुंदर रूप अनूपम बैठने लागि तबै ।
सोच बिमोचति लोचन ते अविलोकति तेज समेत जबै ।
लेति उछंग[3] पिता गुर पूरन संगति पंगति देखि सबै ।
ज्यों अज नंदन कै रघुनंदन[4] बालक बैस महिं बैठि फबैं[5] ।

१. गरम करके । २. रेशम । ३. गोद । ४. जैसे दशरथ की (गोद में) रामचन्द्र । ५. शोभित होते हैं ।

अंङण मैं रिझमाण भए पुन देखि भले किलकावति[1] हैं।
जे घर बीच गलीचन पै इत आवति फेरि सु जावति हैं।
बैठति हैं बिच संगति के गन दास तबैं बतरावति हैं।
भावति हैं, मुसकावति हैं, चपलावति हैं सु हसावति हैं ।।२४।।

जुग दंत सुभंति महां दुतिवंत हैं ओशट लाल बिसाल सुहाए।
मुकता बिंब संपट बिद्रम के बिधि सुंदर ते जनु बीच टिकाए।
मुसकावति ते दिखरावति हैं जनु अम्रित बीच भिगोए बनाए।
कवि और बनाइ कहै उपमा जनु कीरति के जुग बीज दिखाइ ।।२५।।

अंङण बीच फिरैं गुडली बहु भांतिनि ते करि बालक लीला।
खैंचति पावन पावन पंकज नूपर को रुणकाइ छबीला।
द्वै करबंद करै अभिबंदन दोख निकंदन रूप गहीला।
पाइ सु चारु पदारथ सेवक दे गुरदेव अतेव सुसीला ।।२६।।

मानुख रूप धर्यो जग मैं जिन भूम को भार उतारन को।
आयुध धारि महां बल सों तुरकान को तेज निवारनि को।
सेवक संतन को सुख दे उर ग्यान की सीख सिखारनि को।
बालक बय अबि क्रीडति हैं, करि क्रूर जरां सु उखारन को ।।२७।।
(रा० ३ : ८)

(शिशु क्रीडा)

श्री चरणांबुज ते चलिबे पग नूपर भू पर दौर बजावैं।
कंचन की बर किंकनि है कटि हीरे जराउ जरे चमकावैं।
पीत गरे झगुली बहु झीन महां दुति ते तन चारु दिपावै।
हाथ में कंकन छाप छलायनि सीस विभूखन शोभ बढावै ।।२५।।

बालक और मिले तिस ठौर मैं दौरति हैं अगुवा पिछवाई।
खेलति हैं बहु मेलति रौर गुरु हरिगोबिंद जी हरखाई।
होइ इकैठति बैठति है कबि अंग अमैठति देति पलाई।
सुंदर मंदर अंदर ह्वै कबि बाहर रोकति हैं भज जाई ।।२६।।

---

१. किलकारियां मारते हैं।

ग्राम वडाली के बालक जे बड भाग भरे इम खेलति हैं।
श्री हरिगोविंद संग मिले बहु स्वाद के भोजन मेलति हैं।
द्योस सबै नहिं पास तजैं मिलि आपस मैं बल रेलति हैं।
आप दिखाइ करे कुशती गहि हाथनि साथ धकेलति हैं ।।२७।।

दोहरा

इस प्रकार क्रीडति प्रभू खेलति खेल बिसाल।
मिलहिं जाल बालक ललित निस महिं निज निज साल ।।२८।।
(रा० ३ : ६)

लोकनि अनेक की करति श्रेय। सतिनाम देति किस ग्यान देय।
श्री हरिगुबिंद आनंद कदं। खेलति ब्रिधंति जिम दूज चंद ।।१८।।

म्रिदु बचन तोतले मुख कहंति। सुनि मधुर श्रोन को सुखदवंत।
गंगा अनंद करती दुलार। गर संग लाइ सूंघति लिलार ।।१९।।

सुनि बाक तोतरे त्रिपति ह्वै न। पुनि पुनि बुलाइ सुंदर सु बैन।
मुखचंद देखि करि नहिं अघाइ। पित निकट गए चित आकुलाइ ।।२०।।
(रा० ३ : १२)

(गुरु गोबिन्दसिंह अवतार)

सवैया

गन मंगल के गुर मंगल रूप महां उतसाहनि के उतसाहू।
सभि तेजनि के अति तेज दिपैं सभि ओजन ओज गुरूरनि गाहू।
शुभ आदि म्रिजाद टिकावनि को बिगसावनि संतनि को रिपु दाहू।
तुरकानि तरू जर नाशनि को अवतार उदार लयो जग मांहू ।।१।।

सरदूल कि तूल अभूल भए प्रतिकूल नदी गिर राजनि को[1]।
हिंदवाइन तीरथ पावन को थिरतावन को अघ मांजन[2] को।
सरबोतम खालसा पंथ सतेज अमेज ह्वै आप ही साजन को।
कवि सिंह कहै अवितार भयो हम जैसे गरीब निवाजन को ।।२।।

---

१. पहाड़ी राजाओं रूपी नदी के प्रवाह में सिंह के समान प्रतिकूल चलना अर्थात् नदी के प्रवाह को चीरना। २. नाश करने के लिए।

सभि निंदक मोद कमोदनि को बन दंभ उलूक दुरे समुदाए।
भगती अति आतप को बिसतारनि तारन से गरबी न दिसाए।
पसर्यो अंधकार अधरम महां दिढ एक ही बार सु दीनि पलाए।
सम सूरज के अवितार भयो हम से जन पंकज को बिकसाए ॥३॥

(जन्मोत्सव)

चौपई

भई प्राति सभि बजी बधाई। मिलि संगति इकठी हुइ आई।
भांति भांति के कौतक करिहीं। श्री सतिगुर के शबद उचरिहीं ॥८॥

बजहिं म्रिदंग रबाब बिसाला। करहिं कीरतन शबद उजाला।
पंचांम्रित बनवावहिं रास[1]। गुरु दर पर करि करि अरदास ॥९॥

वंडहिं अचहिं 'धंन गुरु' कहैं। बड़े भाग अपने जन लहैं।
भाट कलावल ढाडी आवहिं। भनहिं बधाई वांछति पावहिं ॥१०॥

बेख कलीवन देव बधूटी। धरि आवहिं जनु जग दुति लूटी।
ढोलक, टलका, घुंघरू ताली। गाइं बिलावल लेति भवाली ॥११॥

सभि बाजे अरु हाथनि ताल। गंन पाइन के घुंघरू नाल।
अंग चलावहिं ताल मिलाइं। गावहिं नाचहिं राचहिं चाइ ॥१२॥

रंग रंग के फूल बिसाला। गूंदि गूंदि करि दीरघ माला।
सुनि सुनि आवहिं मालाकार[2]। बंदहिं सतिगुरु के दरबार ॥१७॥

(रा० १२ : १२)

(भीखणशाह का दर्शनार्थ आना)

सूधी कर पग की अंगुरीन। म्रिदुल कोकनद पंखरी चीन।
दिपहिं पुनरभू[3] माणिक जैसे। पदमालय[4] जटती हुइ वैसे ॥३८॥

(रा० १२ : १३)

हेतु परखिबे ह्वै करि आगा। अति समीप ह्वै बे कहु लागा।
प्रभु बिराजति मातल अंका। सुंदर दरशन मदन मयंका ॥१९॥

---

१. बहुत। २. माली। ३. नख। ४. लक्ष्मी।

श्याम बिंदु जननी शुभ लाइव। डीठ न लगै रिदा अकुलाइव।
मनहुं सु लच्छन चंद सुहावा। दास चकोरन गन हरखावा ॥२०॥

बिकस्यो मनहुं अलप अरबिंद। बैठ्यो शोभति बतस [1]मलिंद।
सुधा कुंड मुख मंडल मनो। बिकसति कबि कबि बीची सनो ॥२१॥

ज्यों ज्यों शाह भीख मुख बोलहि। पिखति हसति त्यों त्यों तनु डोलहि।
हाथनि चरन उछारति डारति। कवि जिन पर उतपल दुति वारति[2] ॥२२॥

हाटक कटक[3] जटे विच हीरे। लागी अंगुरी लगों जंजीरे।
जटी मुंदरी सुंदर संगि। झगुली झीन पीत शुभ रंग ॥२३॥

लोचन पुतरी इत उत फेरति। करति क्रितारथ संगति हेरति।
आयुत[4] भाल केस बर छोटे। सिर पर बसत्र दमकते गोटे ॥२४॥

संगति चहुं दिशि जोरति हाथ। दरसति खरे अलप गुरनाथ।
शाहि भीख घटका जबि दोनो। करी समीप होइ करि नमो ॥२५॥

(रा० १२ : १६)

(बालक्रीड़ा एवं रूप वर्णन)

सवैया

श्री गुर सुंदर सूरत सोहति मूरति माधुरी पूरति सारी[5]।
रेशम डोर वधी पलना संग दास झलावति ऐंचि अगारी।
मंदहि मंद अनंद उमंगति अंग उतंग करैं दुति भारी।
मानहु संघर के करिबे हित सूचत हैं उतसाहु बिथारी ॥२॥

द्वैपद सुंदर ज्यों अरबिंद सु दासनि ब्रिंद को आनंद दानी।
कोमल लाल अकार लघू अंगुरी इकसार सुभैं दुति सानी[6]।
चिकवन चारु सु रंगि सु गोल दिपैं नख जान कही कवि बानी।
फूल बधूप कि ऊपर ज्यों अति उज्जल हीरनि पंगति ठानी[7] ॥३॥

कूरम पीठ मनिंद दुऊ पद बीच ते ऊरध कोमल ऐडी।
किंचत आक्रित है गुलफान के मासल जांघ सजैं कद जेडी[8]।

---

१. भौंरे का बच्चा। २. कमल की शोभा न्योछावर करता है। ३. सवर्ण के कड़े। ४. चौड़ा। ५. सम्पूर्ण आकृति माधुर्य से पूर्ण है। ६. शोभा युक्त। ७. गुल दुपहरी के फूलों पर हीरों की पंक्ति लगाई हो। ८. कद के अनुसार।

ऊपर को उछरंति सु नूपर यौं रुणकंति भए छबि मेडी[1] ।
मानहु महातम को उचरैं धरि ध्यान हरैं बिपता बड केडी ॥४॥

झीन झगा पहिरैं तन मैं गर बाघनखा[2] मढि कंचन ते ।
कंध उतंग बिलंद भुजानि बिराजति हाटक कंकन ते ।
चारु बिलोचन साथ बिलोकति भूप करे जिन रंकनि ते ।
सीस पै केस सचिकवन श्याम मुलाइम जे मखतूलन ते ॥५॥

श्री गुजरी बड भाग भरी तट[3] बैठि बिलोकति नंदन को ।
बोलति है बतरावन को सुत लालति है अभिनंदन को ।
मात दिशा पिखि कै मुसकावति राखहिं धरम जु हिंदुनि को ।
अंक बिठाइ दुलारति है कबि सुंदर श्री जगबंदन को ॥६॥

मोद उदै थित गोद मैं बैठति फेर प्रयंक पै बैठनि लागे ।
हाथनि को धरि कै बल पाइं लगे सरकान कछू कबि आगे ।
दंद उगे जुग सुंदर सोहति ओठनि साथ महां दुति जागे ।
मानो प्रवाल के संपट मैं इह हीरस रेख पयूख मैं पागे ॥८॥

किलकंति हसंति बिलोकति हैं चलि रिंझण अंभण मैं फिर आवैं ।
गुलकारि गुलाब गलीचन पै पद ऐंचति नूपर को रुणकावैं ।
अति चंचलता जुग लोचनि बीच प्रताप भर्यो बिधि यौं दरसावैं ।
जनु उज्जल पात्र बिलौर बिखै बहु निरमल रंग पर्यो झलकावैं ॥६॥

केस अशेश सचिकवन मेचक कुंचत कोमल सुंदर सारे ।
गुंदन कीनि सुधारि भले मखतूल[4] मिले जनु पंनग बारे ।
कंचन चारु जराव जर्यो मुकतावल हीरे अनेक प्रकारे ।
शोभति हैं सिर फूल मनो रवि की रसमा परवारिति तारे ॥११॥

कंध उतंग बिलंद भुजा दिढ कंकन कंचन के खचि हीरे ।
किंकनि बाजति है चलते उतलावति रिंझण हैं कबि धीरे ।
बैठति हैं सभि की दिशि हेरति प्रेरति दासनि को हित छीरे ।
शारत साथ बतावति हैं करिवावति सो बिधि आपने तीरे ॥१२॥

प्रेम करै नित छेम चहै सुत पालति लालति है बहु बारी ।
है गुन मंदर सुंदर श्री मुख धोवति आपने लै कर बारी[5] ।

---

१. शोभा युक्त । २. सिंह नख । ३. निकट । ४. रेशम । ५. जल ।

अंग शनान कराइ बिधान सों सूंघति भाल ज्यों आनंद बारी[1] ।
अंबर को पहिराइ बिभूषन लौन सु राई लै ऊपर बारी[2] ॥१४॥

दधि ओदन को अचवाइ भले अनमोदन[3] नंदन मात करे ।
बहु चंचलता जुति आवति जाति इते उत होवति आनि थिरे ।
किलकंति, हंसति, हसावति औरनि भावति ही दुख दोख हरे ।
शुभ शोभ धरे परयंक चरें कबि फेर फिरें निज खेल ढरे ॥१५॥

इस रीति बितत भए दिन केतिक पाइन मैं तबि जोर भर्यो ।
हुइ आप खरे अवलंब बिना चरणांबुज चाइ अगारी धर्यो ।
इम जानि तिखान इनाम के हेतु गडीरण सुंदर एक घर्यो ।
अरप्यो करि बंदन ठानि मनोरथ पूरन सो ततकाल कर्यो ॥१६॥

हाथ गडीरन पै धरि कै पद मंद ही मंद उठावनि लागे ।
सुंदर श्री मुख ते बिकसावति शोभति दंत अमी जनु पागे ।
चंचल चारु बिलोचन ते चितवंति चहूं दिशि राग बिरागे[4] ।
बालिक बै बपु क्रीडति है इम अंझण मैं बिहरैं चलि आगे ॥१७॥

कोमल सुरंग पग चीकने रुचिर नख,
गोल हैं अकार इकसार सु प्रकाशते ।
इंदरा[5] के मंदर पै सुंदर सुधार मानो,
हीरन की पंकती खची है दुति रासते[6] ।
क्रांति रूप लच्छमी सुलच्छन को बास नित,
सिक्खन के मन मधु ब्रिंद जहां बासते ।
देख पाप नासते लुभावति हुलासते,
सु ग्यान लेनि वासते न छोरैं पास दासते ॥१८॥

दोऊ पद ऊपर बिराजै चारु नूपर अनूप,
छबि रूप की निरूपनि करै सु कौन ।
गमने शबद करै कट छुद्रघंटका है ज़ाहर,
जवाहर ते जोति जगमगै जौन ।
भीनो गर पीरो चीर दीपति शरीर,
शुभ कंकन जराऊ लघु राजति हैं हाथ दौन ।
आइ भौन तौन समैं कामना को मौन्न करे,
नमो औन ठानति ही गौन ते हैं पाप तौन ॥१९॥

१, बाड़ी, बगीची, वाटिका । २. वारना । ३. लाड़ प्यार करना । ४. राग एवं वैराग्य से पूर्ण । ५. लक्ष्मी । ६. अत्यन्त दुतिवान ।

बचन अमोघ ज्यों सरोघ[1] रामचंद हाथ,
तजे ब्रह्म असत्र को सुधारै निज काज को।
तैसे ब्रर स्राप को उचारें तातकाल होति,
जिस पै प्रसंन देति सकल समाज को।
काहूं पर क्रोध करि नासते बिभूत[2] घर,
फैल्यो जसु पूत[3] पुरि हेरि हेरि साज को।
राखें हिंद लाज को उठावें खल राज को,
फिरावें सीस ताज को, निवारें सभि पाज को ॥२१॥

सवैया

खेलिबे कारन सुंदर खेलने ल्याइ खरीद सु मोल बडेरे।
जो धनवाननि की जुवती पहिरे नव भूखन चीर अछेरे।
आवति हैं बड चाव भरी उचवाइ उपाइनि ब्रिंद अगेरे।
मोदक आदिक मोद सों लैं चहुं कोद ते होति बिनोद घनेरे ॥२३॥

कवित्त

कोऊ सिख आपने पै चाहति प्रसन्न गुर,
देहि धन लेहि मोल पंछी जाति जाति के।
सारका सु कोकला उदार म्रिदु भाशणी,
अनेक कीर पारावत रंग भांति भांति के।
तीतर चकोर चारु दासतां हज़ार लाल,
पिंजरे मझार पाइ धरे पांति पांत के।
गुन को सुनावें दिखरावै सो लरावें बहु,
बिजै हार पावें नख चोंच घात घात के ॥२६॥
(रा० १२ : १७)

(बाल क्रीडा)

दोहरा

इस प्रकार श्री सतिगुरू बालिक लीला कीनि।
शाहुनि के सुत अनिक ही मिलि खेलहिं सुख लीन ॥१॥

१· बाण। २· घर की विभूति। ३· पवित्र।

बालिक तन श्री सतिगुरू बालिक ब्रिंद क्रिपाल।
जाइ प्रवेशे बाग मैं बिगसति मोद बिसाल ॥८॥

कवित्त

और नाना भांति साथ क्रीडा कीन प्रभू नाथ,
बालिक पलावते पलाइ चलैं पाइ ते।
खेलैं हुलसाइ कहूं बैठे जल थाइं कहूं,
चलति फुहारे कहूं सोहैं समुदाइ ते।
पान[1] पग पंकज ते पानी रोक राखै कहूं,
केतिक तरोवरु अरुढैं उतलाइ ते।
सोहै बन नंदन मनिंद सुर ब्रिंद सिस,
इंद्र बाल बैस बिखै बिचरैं सुभाइ ते ॥१३॥

सवैया

बीथका आवति देखति मानव सीस निवाइ निहोरति हैं।
सुंदरता जनु पान करे अनमेख बिलोचन जोरति हैं।
डीठ परै जहिं लौ गुरु रूप नहीं तबि लौ मुख मोरति हैं।
पूरनमा जनु चंद अमंद चकोर मनिंद सु लोरति हैं ॥१६॥

धाम गए अभिराम गुरू सुत देखनि को उतकंठति माई।
धेनु महां लघु ज्यों बछ को बिछुरे न थिरे अति ह्वै अकुलाई।
द्वार बिलोचन संमुख ते मुख नंदन देखति ही हरखाई।
धीर ते बैठ्यो गयो न तहां उठि शीघ्र उछंग[2] मैं लेनि को आई ॥१७॥

गोद लियो उर मोद भर्यो चहुं कोद बिनोदति बाल महां।
'मात जी ! माथ टिके पग पै' इक बार ही बाक समूह कहा।
आशिख दे सुख साथ भरी सुखमा गल[3] फूल सु माल रहा।
सूंघति भाल बिसाल मनोहर जोगी जिसै बिच ध्यान लहा ॥१८॥
(रा० १२ : १८)

---

१. हाथ। २. गोद। ३. गले में फूलों की माला सुशोभित है।

(नौका विहार)

सवैया

सलिता गन को दरिआउ महां गुर आगम को लखि होति उछाला।
तरनी पर जाइ बिराज गए इत ते उत हेरति साथ क्रिपाला[1]।
जल चाहति है छुहिबे पग पंकज पै असमंजस ऊच बिसाला।
उछरंति कछू न परंतु लगे सभि पापनि हंत महंत उजाला[2] ॥५॥

मातुल गोद मैं मोद भरे जल कोद बिलोक करी चतुराई।
द्वै चरणांबुज को तबिहूं तरनी[3] तट जंघ तरे लरकाई।
मूरत धारि पखारति है, मुद धारति है, लहि कै जलराई[4]।
पाप अनेकनि के हरता इह मंगल के करता समुदाई ॥६॥

दोहरा

अपर नहीं अविलोकते इक श्री गुर दरसाइ।
पद अरविंद पखारि कै जल मैं गयो समाइ ॥७॥

सवैया

दीनि मलाह को दान महां कहि बाक तिसे तरनी चलवाई।
नीर गंभीर मैं जाइ फिरी तबि बेग के साथ ही शीघ्र धवाई।
ले कबि जाति परे नवका, कबि ल्यावति बेग ते वार लगाई।
फांदति हैं कबि फेर चढैं सिस दौरति हैं किलकैं बिगसाई ॥८॥
(रा० १२ : १६)

खेलति हैं जल को छिरकावति छींटनि ते छुकरानि लरावैं।
एक पलाइ चलै इक सामुहि एक भिरै अखीआंनि मुंदावैं।
जोर ते फैंकति हैं कर सों इक हाथनि सों करि ओट बचावैं।
प्रेरति हैं बहु हेरति हैं मुख टेरति हैं उमगैं बिगसावैं ॥७॥

देति दिलेर दुहूं दिशि दौरति बोरति बारि ते बारिक सारे।
मेचक केस म्रिदू बिथरे मुख पै उपमा कवि यौं मन धारे।
पंकज पैं गन पंनग छौननि हैं लपटे हित अंम्रित कारे।
होइ हला जल डारति हैं तबि हाथनि के करिकै पिचकारे ॥८॥

---

१. क्रिपाल मामा। २. पापों का विनाश करने वाले (चरणों को)। ३. नाव। ४. वरुण।

कौतक भांति अनेकनि के करि ब्रिंद अनंद भरे लरका।
मंजुल अंजुल को जल सों भरि उज्जल जाल सुरंसरि का।
मज्जन कीनि लिए पट ऊपर फेर चले मग जो घर का।
बोलति बाल बिलोकति डोलति बीच सरूप शुभै हरि का ॥१३॥
(रा० १२ : २०)

मात सों बात कहैं जुति चाउ अरूढि भए नवका पर जाई।
केवट नीर गंभीर बिखै पहुंचाइ महां बल धारि धवाई।
दूर गयो पुन ल्यावति भा बड बेग धरे इह भांति भ्रमाई।
मंदिर तीर महीरुह थीरु खरी नर भीर मनो सु फिराई ॥१४॥

म्रिदु बोलति, डोलति कुंडल श्रोन कपोलन झाल परै इस भांती।
जनु पूरन शारद चंद बिखै बर मीन फिरै सुखमा बिगसाती।
बिगसै सुनि बाति रिदै हरखाति बिलोकति मात महां उमगाती।
जनु साधन साधति को दुखदे तिह सिद्ध मिली हुइ सीतल छाती ॥१५॥
(रा० १२ : १९)

(बुढ़िया को खिझाने का प्रसंग)

भांति अनेकनि खेलनि खेलति बोलति डोलति मंदिर मांही।
एक ब्रिधा घर पास परोसन जाइ खिझावति हैं घर तांही।
आंख बचाइ उचाइ लिजावति कातनी तूल रु सूत जि पाही।
सो अविलोक सकोप उठै गहि छूछक[1] हाथ परै पिछवाही ॥१७॥

आइ समीप पलाइ चलैं तबि ज्यों मिलिकै नहिं छूवन पावैं।
दूर न जाति नजीक रहैं इम जानति मैं गहि लेऊं पलावैं।
नूपर किंकनी कंकन कंचन भूषन ऐ सभि नाद उठावैं।
धाइ इतै उत जाइं जितै कित तांहि गतागति धारि भ्रमावैं ॥१८॥

'जाहिं कहां' गहि कै तुझ को तुव मात के पास मैं देउं गहाई।
छूछक दै अपने कर की हतवाउं भले सभि बात सुनाई।
रे सुन गोबिंद ! जाहु अबै टरि मोहि को श्रम करैं अकुलाई।
हाथ ते डारि उताइल देवहु नांहि त मैं कहिहौं घर जाई ॥१९॥

---

१. छड़ी।

तांहि खिझाइ भझाइ श्रमावहिं फेर बखेरति सूत रु पूणी।
बीनति सो तबि जाइ मिलैं जहिं बालकि ब्रिंदन खेल सलूणी[१]।
तूल रु तार जथा बिगरे तिम हाथ धरे हूइ कोप ते ऊणी।
श्री गुजरी ढिग तीर दिखावति बात बनाइ सुनावति दूणी।।२०।।

लेहु बिलोक सु नंदन की करतूत करी घर धूंम उतारे।
बैठनि देति न कातन देति सु लेति उठाइ बिनां ही निहारे।
फैंकति दूर बिखेरति है तजि दौरति है कुकरी[२] बिसतारे।
हाथ न आवति मोहि भ्रमावति मैं श्रम पाइ करी है पुकारे।।२१।।

श्री गुजरी सुनि पुत्र की बारता चंचलता जिन में अधिकाई।
जाइ अकावति संझ सवेर ब्रिथा बिन जोर बड़ी अकुलाई।
ठानि क्रिपा धन दीनि कछू सभि चीर सरीर के दीनि बनाई।
मो सुत जो अपराध करै मन मैं नहिं आनहुं कोप सु माई।।२२।।

मैं न करों रिस को कबि तां पर मो ग्रहि खेलति रोज सिधावै।
बालिक संग लिजाइ प्रवेशहि ले वसतू निज हाथ बगावै[३]।
गैल परों तबि भाज चलै, जबि भौंन करों बहु भांति खिझावै।
अंतर मैं जबि बाहर भाजति बाहर मैं तबि अंतर धावै।।२३।।

देखि बिलोचनि होति हरो मन तो सुत जीवहु लाख बरीसा।
आइ बसे जबि के इस थान भयो सुख मो कहु ओट गिरीसा।
छादन भोजन पावति हौं हरखावति देति बिसाल असीसा।
मो उर को प्रिय लागति है मणि ज्यों अवलोक अशोक अहीशा[४]।।२४।।

कोठन पै घर भूम बिखै बहु धूम करी चलि आज मैं आई।
तो सुत होइ सुचेत गयो इस हेतु जनावनि को बिरमाई।
नाहिं त आवति जाति हमेश ही मैं बिगसौं पिखि क्रीडन ताई।
आप बसो सुख सों सुत जीवहु थीवहु कामन ज्यों मन भाई।।२५।।

श्री गुजरी को प्रसंन कियो इम सो गमनी अपने घर को।
पौर मैं आवति भेट भई पुनि लागि डरावनि श्री गुर को।
तो जननी ढिग मैं बरनी जिम धूम करी तजि कै डर को।
छूछक मारहिगी अबि जाहु तूं फेर नहीं कबिहूं करिको।।२६।।

---

१. संदर। २ मूढे।३. फैंक देता है। ४. शेषनाग।

देखि ब्रिधा भजि दूर भए निज धाम मैं जाइ प्रवेश कियो।
मात ने गोद लियो भरि मोद सरीर लगी रजु[1] रंग भयो।
पौंछति आपने लै कर चीर जिसी कहु दीरघ भाग थियो।
नंदन श्री सुखकंद बिलोकि बिलंद सनेह अछेह[2] हयो ।।२७।।
(रा० १२ : २६)

---

१. धूलि । २. एक रस ।

करुण रस

(हरिपुर के राजकुमार की मृत्यु का दृश्य)

निसानी

नर नै भन्यो ब्रितांत तबि जो नगर नरेशा।
एक पुत्र तिस को हुतो तन चारु विशेशा।
तरुन होनि लाग्यो हुतो पिखि जीवति राजा।
पटरानी को परम प्रिय म्रितु भयो सु आजा ।।२५।।

यांते सभि व्याकुल भए न्रिप पाग उतारी।
पीटति सिर सुध नहिं रही मूरछना धारी।
तिमि राणी आतुर बड़ी भा रिदे कलेशू।
प्रजा कुतो हरखहि रिदै दुख लह्यो अशेशू[1] ।।२६।।

न्रिप सुखि ते परजा सुखी दुखि ते दुख पावै।
इम व्याकुल नर हुइ रहे रव रुदन उठावैं।
सुनि के चित महिं चितवतो इहु अज़मत थाईं[2]।
न्रिप सुत एक जिवाइबे सभि लागहिं पाई ।।२७।।

सेवक होवहिं भाव धरि सभि सेव कमावैं।
तिस ते नीकी अपर बिधि को हाथ न आवै।
उर प्रसंन हुइ करि गयो न्रिप द्वार अगारे।
कूंजन सम रानी जहां कुरलाति पुकारे ।।२८।।

केस उखारति सीस के नहिं बसन संभारै।
करतल सो पीटति बदन सिर जंघन मारै।

---

१. सभी ने। २. करामात का अवसर है।

अति ब्रिलाप संकट लह्यो लोचन जल गेरैं।
जहिं कहिं हाहाकार भा ऊची धुनि टेरैं ॥२९॥

त्रिपति महां व्याकुल पर्यो मंत्री बिलखावै।
आपस महिं को धीर देइ इक सम दुख पावैं।
अवनी तल महिं लिटति को सिमरहिं गुन केते।
सूरत[1] सुंदर राजसुत सभि को सुख देते ॥३०॥
(रा० १ : ३१)

(प्रिथए की मृत्यु पर शोक)

निसानी

रहे बुलावति दास गन निकसे तन प्राना।
चितवति गुरु संगि बैर को परलोक पयाना।
रुदति सकल बैठे निकट सो रात बिताई।
भई प्रभाति उठाइ कै वड चिखा बनाई ॥३८॥

ऊपर धरि करि छारि करि होए समुदाए।
असथि बीन दिन तीन मैं हटि पाछि सिधाए।
इक सिख कोठे को गयो पूरब सुधि दैवे।
सुनि मरनो सुत भारजा बड कूक करैबे ॥३९॥

हाइ हाइ करि रुदत है नहिं सध्यो सरीका।
हे पति! पूरब ही मर्यो इह कियो न नीका।
मिहरवान सुत की खबर कबि लै हैं आई।
बदन मरति हम नहिं पिख्यो बिधि कहां बनाई ॥४०॥

रही हटाइ न हट्यो तबि अपशगुन[2] बिसाले।
किम फल सो देवैं नहीं दुख कीनि कराले ॥४१॥
(रा० ४ : २६)

---

१. रूप। २. दुर्भाग्य।

(श्री अरजन देव की मृत्यु के समाचार पर शोक)

चौपई

द्रिग आगे अस कौतुक होवा। हम सिख नाम सरब ही जोवा।
मरने आगे महद कु भागे। रिदा न बिदर्यो दुख नहिं लागे ।।२१।।

हरि गुविंद सुनि दुखद महाना। बानी बान लगी जनु काना।
बेध्यो रिदा पुकारति ऊचै। तजि एकलि परलोक पहूचे ।।२२।।

सगरी संगत केरि अलंब। करहिं प्रतीखन दास कदंब।
अलप आरबल गुरु जबि रोए। करी पुकार ऊच सभि कोए ।।२३।।

बैठी हुती गंग चित शांती। सुनति कूक दलकी[1] तबि छाती।
सुधि को दासी तुरति पठाई। 'गुरु प्रलोक भा' आनि सुनाई ।।२४।।

मनहु अचानक बज्र प्रहारा। कंचन बेलि गिरी इक बारा।
'हाइ हाइ' कहि कहि मुरझाई। रुदति ब्रिंद दासीनि उठाई ।।२५।।

केस उखारति बाहु उसारति। आरति शोक बिसाल पुकारति।
सगर नगर महिं सुन्यो प्रसंग। दौरति आवति रुदिति उतंग ।।२६।।

मिले समूह आइ नर नारी। रोदति ऊचे करति पुकारी।
विरलापहिं तजि अश्रुनि आपहिं। परतापहिं गुन सिमर कलापहिं ।।२७।।

पुत्र बाल बय त्याग गुसांईं। सिर पर शत्रु दुशट समुदाई।
तुम बिन को दिवान अबि लावहिं। किस ते सिख मन बांछति पावहिं ।।२८।।

करहि कौन दासनि कल्यान। चहुं दिशि के पग पूजति आनि।
को सुधि लै है पहुंचि हमारी। राज तुरक को बहु बुरिआरी ।।२९।।

जिनहुं चह्यो करिबे अन्याइ। पर्यो अंधेर न सूझहि काइ।
उचितानुचित बिचार न काई। गहे बली निबलन को खाई ।।३०।।

कित गमने हमरे रखवारे। ऊची बाहु उसार पुकारे।
नगर नारि होई समुदाइ। रुदति शबद को बिदत उठाइ ।।३१।।

सीस केस बिथरे सभि केरे। सिमरि प्रेम गुरु दुखति घनेरे।
महां शकति जुति चाहति जेती। अछत सही बिपद किम ऐती ।।३२।।

---

१. धड़की।

जरी अजर उर धीरज धारी। हुइ अस छिमा न आन मझारी।
इत्यादिक गुन रुदति भनंती। पीटति हाथनि सीस हनंती ॥३३॥

इम अंतर बडि माच्यो रौरा। सुनति दूर ते आइ सु दौरा।
रुदति अधिक श्री हरि गोविंद। सिख संगति चहुं दिशि महिं ब्रिंद ॥३४॥

सकल होइ करि गुरु सिमरंते। आप बिमोचति लोचन अंते।
वध्यो शोक सभि महिं तबि ऐसे। बास इहां करुना रस जैसे ॥३५॥

हाइ पिता गुन निधि सुख दानी। कौन दुलार करहि बहु आनी।
सुखि बैठनि पित अंक बडेरे। करि सनेह सिर हाथ सु फेरे ॥३६॥

सो अबि कहां न प्रापति मोही। अंति समे नहिं दरशन होही।

(रा० ४ : ३९)

(शाहब जादा की मृत्यु के समाचार पर शोक)

मैं निरभाग बतावन आयो। नहिं गुर पुत्रनि संग सिधायो।
घर को दरब सरब मैं देति। ज्यों क्यों करि बचाइ सो लेति ॥३८॥

क्या मैं करउं बतावन कोई। नहिं सिक्खी मम साबत होई।
सुन्यो बाक खर बान समान। लग्यो कान बिंध रिदा निशान ॥२९॥

ऊपर तर के जुटि गए रदनं। भयो दरद ते ज़रद[1] सु वदनं[2]।
खुशक होइ मुखि लाग सु लाटी। जनु कदली तरु की जड काटी ॥३०॥

तरफराति मुरछा को पाई। गिरी बिसुध ह्वै सुधि नहिं काई।
तबि टोडरमल दुखि अतियंता। करि बैठी गुर मात तुरंता ॥३१॥

बायु बसत्र ते करी झुलावन। तबि कीनी तन की सधि पावन।
चेतनता जुति पुन चित आए। कहां पौत्र? नहिं द्रिशटी आए ॥३२॥

पुत्र जुझारसिंह लिहु नाले। मुझ ते पूरब तुम कित चाले।
कहा इकाकी मैं रहि करि हौं। इस प्रकार मैं तूरन मरि हौं ॥३३॥

जे तूं है गुर सिक्ख अछेरा। करि उपचार मरण को मेरा।
जुग पौत्रनि संग जिस ते मिलौं। अपने साथ लिए करि चलौं ॥३४॥

---

१. पीला। २. मुख।

इम कहिते दुख लखि करि भारा। बुरज साथ बल ते सिर मारा।
सहि न सक्यो टोडरमल हेरि। गहि करि बैठ्यो माता फेर ॥३५॥

मसतक भगन रुधर बहु बह्यो। ब्याकुल ते ब्याकुल ह्वै गयो[1]।
मोहि छाप महिं हीरे कणी। जे मैं देउं अवग्या घणी ॥३६॥
(रि० ६ : ५२)

१. उन्हें व्याकुल देखकर स्वयं भी व्याकुल हो गया।

प्रकृति चित्रण

(हेमकूट वर्णन)

चौपई

मुनी बेश धरि श्री प्रभु आपहिं। अनिक प्रकार तपनि को तापहिं।
हेमकुंट परबत बिसतारा। झरने झरहिं अनेक प्रकारा ॥२॥

निस बासुर जिन महिं धुनि भारी। सुंदर बिमल प्रवाहति बारी।
कहूं बेग सों चलहि सज़ोर। कहूं भ्रमरका परहिं बिलोर ॥३॥

फटक़ समान स्वच्छ जल सुंदर। नारे बहैं मीन गन अंदर।
कहूं फेन[1] उज्जल बिधि रूरं। कित सुनीयति धुनि दूरहदूरं ॥४॥

अनिक धातु ते चित्रति गिरवर। पीत, रकत, अंजन के समसर।
दुरबा सम बैडूरज[2] जहिवां। अनिक भांति की औषधि तहिवां ॥५॥

सुंदर थल जहिं अनिक प्रकारा। तुंग सथंडल[3] पांति उदारा।
चारों ओर नीर तहिं फिरही। हरिआवल सभि थल मन हरिही ॥६॥

फूलन बारी[4] चहुं दिशि मांहि। रंग रंग के बिगसे तांहि।
महां सुगंधति भौर गुंजारति। सीतल मंद बहति बर मारुत ॥७॥

पिखति बिलोचन आनंद दानी। रचना मनुहर गंधनि सानी[5]।
म्रिदुल दलनि के परे बिछौने। रकत बरन के दीखति लौने[6] ॥८॥

फल मधुरे बहु स्वाद बिसाले। अलबालति तरु[7] थल जल चाले।
खग म्रिग सेवति जिस को नीता। सरब जंतु ते भै सभि बीता[8] ॥९॥

करहिं परसपर अनंद घनेरा। बैर बिसार्यो आपस केरा।
ब्रिच्छन के संबूह[9] बहु खरे। खर स्वाद फल दल कल[10] हरे ॥१०॥

---

१. झाग। २. मणियाँ। ३. ऊंचे थड़े-टीले। ४. फुलवाड़ी। ५. युक्त। ६. सुंदर। ७. वृक्षों के आस-पास—चारों ओर। ८. निर्भय। ९. समूह। १०. पत्ते।

साल सरल, बदरी, कचनार। नालकेर ब्रिंदल[१] क्रितमाल[२]।
मालिक पिच[३] फूल रहा रसाल। शालमली पुंनाग बिसाल ॥११॥

सिंदुक[४] तिंदुक मधुर[५] तमाल। कदर[६] खदर[७] बट नकुतैमाल[८]।
कुलक[९] तिलक चलदल[१०]सु कदंब। बात पोत[११] सिंसपा[१२] कदंब ॥१२॥······

सवैया

कोरनि[१३] के मुख चै[१४] मुकलै बिकसे रंग फूल निकोरन के।
कोरनि के धरता बहु राजति बाजति पात पतोरनि[१५] के।
तोरनि के नहिं दाइ बडे फल बूट बिसाल बिजोरनि के।
जोरन के सिखरे जनु गुंदति बायु के बेग अकोरन के ॥१६॥

बारी[१६] बडी तरु झूल रहे अनकूल बहै नित मूलन बारी।
बारीन पाइ बिहंगम बोलति नंदन की सुखमा सभि बारी।
बारी अधूम मनो अगनी अस लाल महां फल फूलन बारी।
बारीज रंग अनेकन के गन भौर गुंजार तिने पर बारी ॥२०॥

चित्रपदा

मोर बिहंग, मराल विसाल कबूतर कोकिल कीर अघोर।
धोरन ते घन बोलि उठैं पिखि चात्रिक खंजन की सुनि शोर।
सो रहिं सेवति कानन को नित बैर बिसारि नहीं कर जोर।
जोर सदंपति ह्वै करि कूंजति बैठति पंख सुधारति मोरि ॥२१॥

केहरि भालक डोलति हैं गज बोलति हैं करनी अवलोकि।
बाघ बकारि फनीन फुंकारि मनीन सुधारि बसैं करि ओक।
कोल ससे नकुले तरकैं गन जंबुक सारक सारस कोक।
क्रौंच सु आरनचूड पुकारति कोक सु बत्तक ब्रिदं अशोक ॥२३॥

सवैया

अनिक रीति के मुनि तप तापति इक फल खांइ खाहिं इक पात।
जलहारी त्रिणहारी केतिक निराहार केतिक नहिं खाति।

---

१. जलबैंत। २. अमलतास। ३. नीम के नाम। ४. संभालू। ५. महूवा। ६. स्फेद खैर। ७. खैर। ८. करंज। ९. कुचला। १०. पीपल। ११. हरिंडा-पलाश। १२. सीसम, शिरीस। १३. करोड़ अथवा कलियां। १४. समूह। १५. पवन के चलने से। १६. उपवन, फुलवाड़ी।

शुशक पत्र भख्यति नितप्रति इक पंचागनि ते तापति गात ।
कितक सथंडल साई तापति बरखा सीत सहैं सभि भांति ।।२५।।
(रा० ११ : ४६)

(उपवन वर्णन)

कवित्त

केइ धनवान के सपूत आइ खेलैं तबि, बैस मैं बडेरे कछु भाव बहु धारिइं ।
भनैं हाथ जोरि जोरि लोरिकै निहोर करि, निकटि हमारो बाग तरू बिसतारइं ।
नाना रंग फूल हैं सु आलवाल मूल हैं, सिकंध झुक झूल है फले सु फलु भारईं ।
अलप बिसाल, पीत, सबज़ सु लाल दल, मानो घन घटा घने संघनेक सारई ।।२।।

सरू एकसार खरे हरे हरे पात जरे, देखे मन हरे जहां शोभा रेल झेल है ।
सेवती को सेवति सु माली माल मालती को, चंपक ते चौंप होति राजैं गन ऐल हैं।
सुंदर गुलाब हैं अजाब सींचे आब हैं, उदै सु आफताब हैं खिलति चटकेल हैं ।
रायबेल फैल है सुरस नालकेल है, चंबेली नागबेल है गुरूजी तहां खेल हैं ।।४।।

दोहरा

बालिक तन श्री सतिगुरू बालिक ब्रिंद क्रिपाल।
जाइ प्रवेशे बाग मैं बिगसति मोद बिसाल ।।८।।

कवित्त

चारू तरु फूल रहे छाया अनकूल रहे, मूल द्रिढ झूल रहे, नीके आलबाल रहे[1] ।
दीपति कदंब रहे बेल के अलंब रहे, मिले नित अंब रहे, रस मैं रसाल रहे ।
चंपक चमक रहे, गंध मै गमक रहे डार ते लमक[2] रहे छबि को उछाल रहे ।
चारों ओर झाल रहे धार फूल माल रहे, दल चल चाल[3] रहे तुंग ह्वै बिसाल रहे ।।६।।

मानो काम बागवान गुरू सनमान हेतु दल फल फूल ते बसंत बगरायो है ।
सुंदर बिहंग रंग रंग के उतंग बैठि भौरि सम भौर भूर भोर ते भ्रमायो है ।
कूजति अनेक जनु पूजति सुवाक कहि, धूजति हैं पंखनि अनंद उमगायो है ।
मोरन को शोर ज़ोर कीरनि[4] की भीर गन पोतक कपोत सारकान ते सुहायो है ।।१०।।
(रा० १२ : १८)

---

१. लिपटे हुए हैं—वेष्टित है। २. लटकना। ३. पत्ते हिल रहे हैं। ४. तोते।

(यमुना के तट पर पांऊटे का वर्णन—नदी, वन वर्णन)

गिरवर तरे तरे तरोवर तरा तर, बाट अरु पीपर बरनबर जाल हैं।
हरड बहेडे खरे आंवरे उचेरे पीन स्यंमल बडेरे पै घनेरे क्रितमाल हैं।
कदर खदर गन कदली, कटर, जंबू, सिंसपा, कदंब सो मधूक कचनाल हैं।
उगे सु ऐकनाल हैं उदालक रसाल हैं सरल दीह साल हैं कनेरे फूल माल हैं ।।३।।

फले फल फूलनि सों, झुके झुप[1] झूलनि सों गाढे तीन मूलनि सों खरे एकसार हैं।
पातन निपात हैं, अनेक पात जात हैं दिपत बहु भांति हैं सु आरू ते अनार हैं।
बात पोत[2] तिंदक, सपतदल, सिंधक हैं, इंगुदी, उदालक, तिलक, देवदार हैं।
बधे समूह डार हैं अधिक बिसतार हैं बहे सु बहु बारि है, बिसाल गुलजार है ।।४।।

सवैया

कोरन के मुख चै मुकलै बिकसे रंग फूलन कोरन के।
कोरन के धरता तरु राजति बाजति पाति पतेरन के।
तोरन के नहिं दाइ बडे फल बूट बिसाल बिजोरन के।
जोरन के सिखरे जनु गुंदति बायु के बेग अकोरन के ।।५।।

चित्रपदा

मोर बिसाल अनेक बिहंग कबूतर कोकिल कीर अघोर।
घोरनि ते घन बोल उठहिं पिक चात्रिक औचक वानन शोर।
सो रहि सेवति कानन को नित दंपति को मिलि कै बर[3] जोर[4]।
जोर करे रव कूंजति हैं, रुचि पूजति बैठति हैं पर मोरि[5] ।।६।।

दाइक जे सुख, सुंदर हैं मुख, हीन रहैं दुख ते हरखाइ।
खाइ सदामन भावति जे फल भौर गुंजारति हैं अकुलाइ।
लाइक जे मन प्रेम धरे, मन पीन भए तन जे बिरधाइ।
धाइ कहां म्रिग माल फिरै ग्रिझ, रोझ[6] झंखारन[7] के समुदाइ ।।७।।

केहरि भालक डोलति हैं गज बोलति हैं करनी अविलोक।
इंगद दीरघ सूकर धारति ब्रिंद ससे सु बसे करि ओक[8]।
श्रिग उतंग झंखारन के पलपीन[9] फिरें कितहूं नहिं रोक।
तीतर आरनचूड[10] बटेरन जाइ सकैं न जहां बहु लोक ।।८।।

---

१. समूह। २. पलाश। ३. सुंदर। ४. जोड़ी। ५. पंख मोड़ कर बैठना। ६. नील गाए। ७. बारह सिंगा। ८. घर बना कर रहते हैं। ९. मोटे मांस वाले। १०. मुरगे।

कवित्त

लैके संग नाहरणेश गुरू जगतेश हूं को,
खेलिबे अखेर के बहाने बन गाहई।
फिरै दूर दूर लौ हजूर सों बखानै बाक,
हेरो प्रभु पूरन जहां के चित चाहिई।
होई सभि रीति सुख कोइ रुत मैं न दुख,
दीजै फुरमाइ मुख इहां निरबाहई।
तहां घालि डेरा करो अनंद बसेरा नित,
नगर बडेरा बनै आप जो उमाहई[1] ॥९॥

ऊच नीच थान फिरे गुरू भगवान बहु,
मन मैं बिलंद ही पसंद को न आवई।
बिचरति गए रम[2] जमुना प्रवाह जहां,
हेरि हरखाने नीर अधिक सुहावई।
दीरघ जू दून तांकी दुति कौ चऊन करै,
लोकन ते शून बन जहां द्रिशटावई।
सभि जी के हार है कि सबज़ी बहार है,
सु मंजुस बिहार है अनंद उपजावई ॥१०॥

सुता सपतासु की, नसय्या पाप रासि की,
दिवय्या मोख दास की लखैं जु नेम जमना।
एक बारि बारि छुए पावनता पावन कै,
पान ते शनान ते दुखति तिन जम ना।
श्याम जल जलज बिलोचनि की श्याम पति,
चंचल, अछल जिन छल्यो काल जमना।
जांके आन सम ना विघन गन शमना,
सदीव सिंध गमना सुहाइ शुभ जमना ॥११॥

केती दूर तीर तीर फिरे बर बीर धीर,
हेरति गंभीर नीर सीर शुभ चालते।
कहूं बेग ज़ोर ते मरोरते सु भौरी परै,
कहूं फेन फोरते कहूंक सो उठालते[3]।

---

१. जो आप चाहेंगे। २. सुंदर। ३. कहीं झाग बनाते हैं कहीं मिटाते हैं।

कतहूं उतंग श्याम रंग के तरंग ब्रिंद,
कतहूं मतंग[1] अंग संगनि उछालते।
पाथर पखालते कहूंक तट डालते,
कितेक जल हालते झखादि जंतु जाल ते ॥१२॥

जमना प्रवाह इक दूसरे उतंग तट,
तीसरे तरुनि ठट, सैलन की सैल है।
सबज़ी सुहाइ बिन पंक है सु थाइ,
शुभ दूरण बिसतार सो उदार चलै गैल है।
मेदनी प्रकाश[2] सुनि हाथ जोरि बाक भनि,
मन की पछानो तुम देख्यो थल छैल[3] है।
ईहां लगि हद्द हम करी रिपु संग बद,
केती बार जिदैं करि जंग भयो ऐल[4] है ॥१५॥
(रि० १ : ४६)

(वसन्त ऋतु का वर्णन)

चौपई

इस प्रकार कुछ समो बिताइव। जग महिं मग सिक्खी प्रगटाइव।
गई बितीत सिसुर रुति सारी। सभि थल भा बसंत गुलज़ारी ॥२५॥

चढचो चेत सभि को सुख देति। नहिं अति सीत न उशन तपेति।
बिकसे कुसम अनेकनि रंग। अति शोभा सुंदर सरबंग ॥२६॥

पात निपात पलास प्रकाशे। जित कित अरुण बरण ही भासे।
चहुं दिश बन की दिखीअति भूमि। जनु गन अगनी लाट अधूम ॥२७॥

उपवन महिं गुलाब चटकीले। बिकसति बूटन साथ छबीले।
कौन कौन तरु फूलनि केरी। कहीअहि जात रुचिरता हेरी ॥२८॥

शोभा बन उपबन की बाढी। मनहु दिखावनि निज ते काढी।
ब्रिंद बिहंगन बोलबि जनीयति। कानन रहि कानन महिं सुनीयति ॥२९॥

---

१. हाथी। २. राजा का नाम। ३. सुंदर। ४. युद्ध का शोर हुआ है।

रुति बसंत जग बिदत छबीला। शांति ब्रित्ति सतिगुर की लीला।
आवति गोइंदवाल जदाई। बिपन बिलोकति सुंदरताई ॥३०॥
(रा० १ : २६)

(पावस ऋतु)

सतिगुर तहां बिराजति रहे। रुति बरखा के आनंद लहे।
बिदते जलधर गगन मझारी। ज्यों तन धरहिं संत उपकारी ॥१५॥

कल्लर खेत सकल थल बरखैं। देखि देखि करि जन गन हरखैं।
जिम गुरु गिरा सुनहि सभि कोई। प्रेम बीज कहूं उतपति होई ॥१६॥

मधुर मधुर धुनि सुनि सुनि मोर। ठौर ठौर बोलति करि शोर।
जथा कीरतन सुनि जग्यासी। बसहि रिदे पुन गाइ प्रकाशी ॥१७॥

दादर टेरति हैं चहूं ओर। जिम सिख पढहिं गिरा गुर जोर।
बहु जल पाइ मुदति भे मीन। जथा सिक्ख गुरु प्रेम प्रबीन ॥१८॥

जर्यो जवासा जर्यो न जल को। सुनि निंदक जसु गुरू बिमल को।
हरिआवलि सगरे जग होई। गुरु सिक्खी जिम सभि थल जोइ ॥१९॥

सरिता को प्रवाह बहु बाढा। जुग कंडनि[1] ते जल कहु काढा।
जिम भगतनि कै प्रेम प्रवाहू। रस को लैबे वधहि उमाहू ॥२०॥

पावस पाइ बीज बहु उपजैं। जिम सिक्खी ते गुन गन निपजैं।
सतिगुर सलिता के तटि जाइ। बैठि बिलोकहिं जल समुदाइ ॥२१॥

बडे बेग ते बगहि[2] प्रवाहू। काशट बहे जाइ गन मांहू।
नीर नवीन मलीन सु पीन। तरु जुति तट को ढाहनि कीनि ॥२२॥

सहत अनेक बिकार अशेखू। हतहि ग्यान जिम राग रु द्वेखू।
कबि कबि लागहि तहां दिवान। करहिं रबाबी शबद सु गानि ॥२३॥
(रा० ६ : ४५)

पावस रितु जग महिं प्रगटाई। चहुं दिशि सघन घटा घिर आई।
बरण बरण के जलधर बरखहिं। मिटी तपत जंतू जन हरखहिं ॥४२॥

---

१. किनारों से। २. बहना

कतहूं उतंग श्याम रंग के तरंग ब्रिंद,
कतहूं मतंग[1] अंग संगनि उछालते ।
पाथर पखालते कहूंक तट डालते,
कितेक जल हालते झखादि जंतु जाल ते ।।१२।।

जमना प्रवाह इक दूसरे उतंग तट,
तीसरे तरुनि ठट, सैलन की सैल है ।
सबज़ी सुहाइ बिन पंक है सु थाइ,
शुभ दूरण बिसतार सो उदार चलै गैल है ।
मेदनी प्रकाश[2] सुनि हाथ जोरि बाक भनि,
मन की पछानो तुम देख्यो थल छैल[3] है ।
ईहां लगि हद्द हम करी रिपु संग बद,
केती बार जिदें करि जंग भयो ऐल[4] है ।।१५।।
(रि० १ : ४६)

(वसन्त ऋतु का वर्णन)

चौपई

इस प्रकार कुछ समो बिताइव । जग महिं मग सिक्खी प्रगटाइव ।
गई बितीत सिसुर रुति सारी । सभि थल भा बसंत गुलज़ारी ।।२५।।

चढचो चेत सभि को सुख देति । नहिं अति सीत न उशन तपेति ।
बिकसे कुसम अनेकनि रंग । अति शोभा सुंदर सरबंग ।।२६।।

पात निपात पलास प्रकाशे । जित कित अरुण बरण ही भासे ।
चहुं दिश बन को दिखीअति भूमि । जनु गन अगनी लाट अधूम ।।२७।।

उपवन महिं गुलाब चटकीले । बिकसति बूटन साथ छबीले ।
कौन कौन तरु फूलनि केरी । कहीअहि जात रुचिरता हेरी ।।२८।।

शोभा बन उपबन की बाढी । मनहु दिखावनि निज ते काढी ।
ब्रिंद बिहंगन बोलबि जनीयति । कानन रहि कानन महिं सुनीयति ।।२९।।

---

१. हाथी । २. राजा का नाम । ३. सुंदर । ४. युद्ध का शोर हुआ है ।

रुति बसंत जग बिदत छबीला। शांति ब्रित्ति सतिगुर की लीला।
आवति गोइंदवाल जदाई। बिपन बिलोकति सुंदरताई ॥३०॥
(रा० १ : २६)

(पावस ऋतु)

सतिगुर तहां बिराजति रहे। रुति बरखा के आनंद लहे।
बिदते जलधर गगन मझारी। ज्यों तन धरहि संत उपकारी ॥१५॥

कल्लर खेत सकल थल बरखैं। देखि देखि करि जन गन हरखैं।
जिम गुरु गिरा सुनहि सभि कोई। प्रेम बीज कहूं उतपति होई ॥१६॥

मधुर मधुर धुनि सुनि सुनि मोर। ठौर ठौर बोलति करि शोर।
जथा कीरतन सुनि जग्यासी। बसहि रिदे पुन गाइ प्रकाशी ॥१७॥

दादर टेरति हैं चहूं ओर। जिम सिख पढहि गिरा गुर जोर।
बहु जल पाइ मुदति भे मीन। जथा सिक्ख गुरु प्रेम प्रबीन ॥१८॥

जर्यो जवासा जर्यो न जल को। सुनि निंदक जसु गुरू बिमल को।
हरिआवलि सगरे जग होई। गुरु सिक्खी जिम सभि थल जोइ ॥१९॥

सरिता को प्रवाह बहु बाढा। जुग कंडनि[1] ते जल कहु काढा।
जिम भगतनि कै प्रेम प्रवाहू। रस को लैबे वधहि उमाहू ॥२०॥

पावस पाइ बीज बहु उपजैं। जिम सिक्खी ते गुन गन निपजैं।
सतिगुर सलिता के तटि जाइ। बैठि बिलोकहि जल समुदाइ ॥२१॥

बडे बेग ते बगहि[2] प्रवाहू। काशट बहे जाइ गन मांहू।
नीर नवीन मलीन सु पीन। तरु जुति तट को ढाहनि कीनि ॥२२॥

सहत अनेक बिकार अशेखू। हतहि ग्यान जिम राग रु द्वेखू।
कबि कबि लागहि तहां दिवान। करहि रबाबी शबद सु गानि ॥२३॥
(रा० ६ : ४५)

पावस रितु जग महिं प्रगटाई। चहुं दिशि सघन घटा घिर आई।
बरण बरण के जलधर बरखहिं। मिटी तपत जंतू जन हरखहिं ॥४२॥

---

१. किनारों से। २. बहना

नीर नवीन नदी महिं चलै। कूलनि को ढाहति जनु निगलै[1]।
त्रिण काशट संचय बहु बहैं। जल जंतू उछलति सुख लहैं ॥४३॥

घन घोरन ते मोरन शोर। सुनीअति कीरतपुरि चहुं ओर।
बिना धूल ते सैल बिसाले। खरे तरोवर फलति रसाले ॥४४॥

भांति भांति की शोभा होति। सतिगुरु हेरति अनंद उदोत।
हरिआवल होई सभि रवनी[2]। इंदु बधू जुति देखति अवनी ॥४५॥

सावण अरु भाद्रों जुग मास। कीरतपुरि मैं करहिं बिलास।
शबद कीरतन होइ सदाई। सुनि सुनि सिक्खनि गुरमति भाई ॥४६॥
(रा० ८ : ३५)

तिह छिन चली पौण पुरवाई। निकसे घन जिम गज समुदाई।
घुमडी घट घरीक महिं घनी[3]। घोर घोर घन चपला सनी ॥२४॥

बड़ी बड़ी बूंदैं बहु परी। बरसन लग्यो अधिक भी झरी।
जित कित नीर प्रवाह चलंता। ऊचे थल ते नंम्रि ढरंता[4] ॥२५॥

धाइ धाइ नर धामन बरे। बारी बहै बिलोकन करें।
धन्न गुरू गुर धन्न बखानहिं। महां मूढ जो इनहुं न मानहिं ॥२६॥

दल मनिंद घन घने दिसावहिं। इक आवति बरखति इक जावहिं ॥३०॥
(ऐ० १ : २७)

(प्रभात वर्णन)

जबै समा अरणोदै होयो। चंद प्रकाश मंद को जोयो।
पूरब दिश मुख लाल दिखायो। जनु तुरकनि को चहति खपायो ॥११॥

तिमर तोम[5] पतरो हुइ गयो। कुछक प्रकाश अकाशहि भयो।
गमनति देखति पहुंचे तहिवां। सुपति जगतपति प्रभु थिर जहिवां ॥१२॥
(रि० ६ : ४४)

---

१. जैसे निगल रहा हो। २. संदर। ३. क्षण भर में घनी घटा उमड़ी। ४. ऊंचे स्थल से नीचे की ओर जाता है। ५. समूह।

वस्तु वर्णन

(श्री हरिगोविंद के विवाह का वर्णन)

(सगाई)

चंद्र सुता सबंध प्रतीखति कबि आवै दिजवर इस थाइं।
तिस दिन पर बलिहार सखी री जबि मेरो सुत तिलक कढाइ।
उतसव रचैं अनेक बिधनि के ढोलक बजहि नागरी गाइं।
जग गुरु बखशिश दीननि करि हैं मचहि कुलाहल नर समुदाइ ॥२४॥
(रा० ३ : ४ : ३)

दोहरा

गमनी सुधि गंगा निकट लागी सो अबि आइ।
श्री जग गुरु सों बूझि के उतसव कीनि सुहाइ ॥१॥

चौपई

नारी सुहागणि ब्रिंद हकारी। बसन बिभूखन सुंदर धारी।
मंगल मूल धरायो ढोलि। बाजनि लग्यो गाइ सुठि बोलि ॥२॥

लघु निशान अरु बजी नफीरैं। पहिरैं चीर नवीन सरीरैं।
कोकिल कंठी मिलि मिलि टोली। उमग अनंद बधाई बोली ॥३॥

मानि सौ गुनी सीस चढावति। गंगा अनंद कह्यो नहिं जावति।
बादित बजति हरख भरपूरा। जहिं कहिं उतसव होवति रूरा ॥४॥

सूखम बसन कुसुंभी[१] बरन। पहिरनि करे रुचिर आभरन।
मधुर बचन ते चंपक बरनी। गारी देति मिली गन तरुनी ॥५॥

पूरन भवन भयो मुद ठानति। सभिहिनि को गंगा सनमानति।
म्रिदुल गिरा ते निकटि बिठावति। उमग उमग सगरी त्रिय गावति ॥६॥

---

१. केसरिया।

बादति केरि बजावन हारे। अपर किते जो जाचिक द्वारे।
डूम भाट जुति देखि सरब को। लेति बधाई देति दरब को ।।११।।

दीपमाल तिस काल बिसाला। होति भई सभि थान उजाला।
सुधा सरोवर श्री हरिमंदर। पुरि अरु बिपनी[1] के थल सुंदर ।।१२।।

जनु उतसव धरि करि निज रूप। रामदास पुरि आइ अनूप।
मंगल रीति जितिक जग अहै। सभि ही करी जथा ब्रिध कहै ।।१३।।

सिख संगति सुनि सुनि समुदाइ। लगी सभा सभि रही सुहाइ।
नौबति बाजति अनंद उपावति। मंगल शबद कलावति[2] गावति ।।२८।।

बजहि नफीरी नाद उठावैं। ठांढे भाट कबित्त सुनावैं।
श्री अरजन बिच सभा बिराजे। जिम उडगनि महिं निसपति साजे ।।२९।।

नार नागरी कोकिल बैनी। गावहिं गीति प्रफुल्लिति नैनी।
इक बैठि ढिग ढोल बजावैं। मंगल गीत बनाइ सुनावैं ।।३३।।

इकि नाचति हैं पाइ भवाली। बिहसि बजावति हैं इक ताली।
रुण रुणाट भूखनि झुनकारैं। भरी हरख निज अंग उसारैं ।।३४।।

अस उतसव होवति समुदाए। दिज नाउ तिस थल चलि आए।
देखि सभा को हरख धरंते। आशिखबाद बिलंद भनंते ।।३७।।

श्री सतिगुरु अरजन जी देखि। बैठारे सनमान विशेखि।
पूर्यो चौंक गणक ने तबै। गणपति ग्रह थापनि करि सबै ।।३८।।

चंदन की चौंकी मंगवाइ। सभि महिं गुरु ढिगि दई डसाइ।
लौकिक वैदक रीति बडेरो। दिजि कहि करिवाइसि तिस बेरी ।।३९।।

(रा० ४ : ४)

दोहरा

गंगा रिदे अनंद करि नंदन हरि गोविंद।
बसन बिभूखन मोल बहु पहिरावति सुखकंद ।।१।।

सवैया

सूखम बसत्र गरे मैं जामा जिसके बीच दिपति तन चारु।
चीरा रकत सुहावति सिर परि ज़रीदारु है शोभ अपार।

१. बाज़ार। २. भाट।

पर्यो सिकंधनि पर दुकूल शुभ दमकति गोटा जुति बिसतारु।
हीरे चीरे कोरदार बर जरे जवाहरि जिगा मझार।।२।।

कुंडल डोल कपोलनि ऊपरि मुकता गोलि जि मोलि बिसाल।
तिम मोतनि की माल गरे महिं उज्जल दमकति है दुति जाल।
कंचन के अंगद अरु कंकन जेब जबर ते जटति उजाल।
छाप छलायनि ते छबि छाकति सरब सराहति हेरति बाल।।३।।

निज कर ते ले जननी अंजन आंजे कमल पत्र सम नैन।
राई लवन वारती ऊपर डरति रिदे किस डीठ लगै न।
पिखत अनंद बिलंद रिदै लहि इमि सु जाइ त्रिय जुत बिच ऐन।
करे संग दासनि ले गमने जहां सभा सतिगुरु सुख दैन।।४।।

श्री अरजन बिन उठे सरब ही हेरि प्रताप न बैठ्यो जाइ।
हाथ जोरि करि बंदन ठानहि चहुं दिशि ते देखति हरखाइं।
पित को नमो कीनि भे ठांढे दिजबर ने कहि लए बिठाइ।
चौंकी पर शोभति इम लखियति सुर समुदाइ सहत सुरराइ।।५।।

पांधे तबि अभिखेक[1] करायहु पूरब गनपति को करि मानि।
अपर ग्रहनि को करि अभिसेचनि[2] भरी भीर मानव गन आनि।
सतिगुरु मुख दिशि नयन लगाए दरशन करति हरख उर ठानि।
को बैठे को खरे तहां मिलि नर भे अनगन थोरिय थान।।७।।

(रा० ४ : ५)

(इसी बीच दिल्ली से कुछ सिख आते हैं और गुरु जी को चंदू की सगाई न लेने का
अनुरोध करते हैं—उनके अनुरोध से यह सगाई लौटा दी जाती है,
और उसी समय दूसरी सगाई ले ली जाती है। उत्सव
जो कुछ देर को रुक गया था फिर से
मनाया जाने लगा)

चौपई

इह नाता लीजै हित साथ। दिहु टीका हरिगोविंद माथ।
चहिय समिग्री जो समुदाई। तुरत नराइण दास मंगाई।।१९।।

पाई हरिगुविंद की झोरी। भई सभिनि के खुशी न थोरी।
कर्यो निकासनि मसतक टीका। अच्छत सहत बिराजति नीका।।२०।।

१. तिलक। २. पूजन।

दोहरा

केसर तिलक सु देवगुरु तिस के मंडल आइ ।
अच्छत जनु ससि कला गन त्रास राहु ते पाइ ॥२१॥

चौपई

श्री अरजन सभि लाग दिवाए । दान मान देकरि हरखाए ।
अनंद उदधि जनु वध्यो अनंत । सिख संगति नर भे जल तु ॥३९॥
उद्यो अनंद चंद कै अबै । कुमद चकोर भए नर सभै ।
चंदू के लागी जे दोइ । चकवा सम दुख प्रापति सोइ ॥४०॥
(रा० ४ : ६)

(विवाह की तयारी)

दोहरा

बासुर कितिक बिताइ करि श्री गुर अरजन नाथ ।
चितवति नंदन ब्याह को बडि उतसव के साथ ॥१॥

निसानी

ब्रिंद मसंद हकारि गुरु आइसु फुरमाई,
त्यार समिग्री करहु सुभ चहिय जु समुदाई ।
चंदोए बहु मोल के झालर झमकंती,
खीनखाफ लागहि ज़री सुंदर दुतिवंती ॥२७॥

रेशम की डोरैं लगी बहु बरन बनावौ,
मखमल के सभि फरश को गन दरब लगावौ ।
करौ कनात बनात की तंबू जु बिसाला,
चांदी की चोबैं रुचिर कीजै दरहाला ॥२८॥

स्यंदन सकटनि त्यार हुइ जो चहिय करावो,
आतशबाजी होहि बहु तिन दरब दिवावो ।
जीन तुरंगनि के नवें लीजहि बडि मोले,
अलंकार घरिवाइ करि साजहु सभि टोले ॥२९॥

लघु नौबत आइसु दई दिन रैन बजावो,
तूती अपर नफीरीआं निज संगि मिलावो ।

डफ बाजति जुत बंसरी बड धौंस गहीरे,
पटह् पणव की धुनि उठहि् सुनि होवहि् भीरं ।।३०।।

बजहि् ढोल अरु बंसरी दिन प्रति गुरुद्वारे,
महां कुलाहल होति है सुनि हरखति भारे ।
अनिक कराहे धरि दए पकवान पकावैं,
भांति भांति की स्वादि महिं मेवे सु मिलावैं ।।३१।।

मोदक, खुरमे, अरु बरे दधि लवनि रलाए,
चिरवे बड़े जलेब जुति इत्यादिक बनाए ।
मेल लग्यो आवनि तबै हरखति नर नारी,
पहरि बिभूखन बसन शुभ बडि शोभा धारी ।।३२।।

गोइंदवाल ते मोहिरी इसत्री गन ल्यायो,
रिदे अनंद अनंद[1] मिलि संसराम सु आयो ।
सुंदर[2] जुति गमने सकल स्यंदन चढि चाले,
कितिक अरूढे सकट[3] पर शिंगार बिसाले ।।३३।।

सभि कुटंब को संग लै दातू भा त्यारी,
चढि चढि अपने जानु[4] परि गमने हित धारी ।
दोनहुं थल ते चालि करि गुर नगरी आए,
कूप शनाने प्रथम पुन अम्रितसर न्हाए ।।३५।।

अनगन नर की भीर भी उतसव हुइ भारी,
भोजन बनिहै त्यार बहु जिन स्वाद उदारी ।
दिनप्रति अधिक अनंद भा को कहै बनाई,
हरिगुविंद जी तबि अए निज ग्रीव निवाई ।।३६।।

तुरत अंक ले मोहरी निज गरे लगायो,
करि दुलार सिर सूंघ कै देखति हरखायो ।
मिलि अनंद संसराम जुति दातू भरि अंका,
करहिं सराहनि रूप को बोलहिं सहि[5] शंका ।।४०।।
(रा० ४ : ६)

---

१. बाबा आनंद जी। २. बाबा सुंदर जी। ३. बैल गाड़ी। ४. यान, सवारी। ५. नजर न लग जाए इस लिए डर-डर कर प्रशंसा करते हैं।

(बरात की चढ़ाई)

पाधड़ी

श्री हरिगुविंद चौकी बिठाइ। त्रिय मिलि सुहागनि गीति गाइ।
मरदन करंत बटणा सु अंग। सभि बिखै अधिक आनंद गंग ॥१६॥

बलिहार होति पिखि सुत सरूप। दिन प्रति उदोति सुंदर अनूप।
कर बंधि कंगणा सगुन संगि। पट पीत पहिर करि सरब अंगु ॥१७॥

कुल रीति करी जेतिक बताइ। दिन चढनि बरात समीप आइ।
श्री अरजन त्यारी सभि कराइ। जनु करहिं शीघ्रता लें बनाइ ॥१८॥

दोहरा

जेवर जरे जराइ जे जबर जवाहर जोति।
जांबूनद[1] दमकति महिद पहिरे शोभ उदोति ॥१९॥

पाधड़ी

श्री हरिगुविंद तन करि शिंगार। सभि बसत्र विभूखन चारु डारि।
सिर पेच[2] सीस पर अति सुहाइ। जिस परि जिगा सु हीरे जराइ ॥२०॥

कलगी उतंग जिह जगति जोति। मुख मंडल शुभति अनंद होति।
कुंडल सु डोलि गोलैं कपोल। शोभति अमोल जबि होति लोल[3] ॥२१॥

मुकता सु माल गर मैं बिसाल। भुज दंडनि अंगद दुति उजाल।
हाटक[4] जडाव कर कटक[5] पाइ। छबि छाप छलायनि स्वच्छ छाइ ॥२२॥

कर बंध्यो कंगणा सोभ देति। पट पीत पहिर दुति परम लेति।
झुलियंति छतर फिर फिर फिराइ। ढुरियंति चौर चारू सुहाइ ॥२३॥

तबि गई गंग ले गुरु सथान। इसत्री समूह मिलि करति गान।
तबि हने डंक धौंसा धुंकार। डफ पणव पटह धुनि भी उदार ॥२४॥

तुररी नफीर छैणे बजंति। गन ढोल बंसरी धुनि उठंति।
गन थार भरे मोदक बिलंद। थिर पौर दरशनी हाथ बंदि ॥२५॥

सतिगुरु मनाइ ले तनुज संगि। हित ब्राति चढावनि गमनी गंग।
पुरि वहिर जाइ गन संग नारि। बादत[6] बजंत धुनि एक सार ॥२६॥

---

१. स्वर्ण। २. चीरा। ३. जब हिलते हैं। ४. स्वर्ण। ५. कड़े। ६. वाद्य।

वाहन अनेक निकसंति चारु। स्यंदन सुरंग जर सो उछार।
किसहूं तुरंग किस ब्रिखभ जोरि। जिन केर पुशट तन महिद जोरि ।।३०।।

घंटे ठणंक घुंघर झणंक। प्रेरक सबिद्य[1] तोरति[2] निशंक।
बहु बहिल बेग ते चलि बिलंद। सुंदर शिंगार पिखि दे अनंद ।।३१।।

निकसे कितेक चढि करि तुरंग। जो चलति चाल बड बेग संगि।
बहु हेम रजति जुत सजति जीन। पट अलंकार पहिरे नवीन ।।३२।।

ले ब्रिध संगि गुरदास आनि। अरु महांदेव बड भ्रात जानि।
स्यंदन चढाइ सनमान कीनि। पुन दातू मुहरी बोलि लीनि ।।३४।।

मोरनि मनिंद घोरनि चलाइ। जुत बसन बिभूखन दुति बढाइ।
अरु और नाम गिनीअहिं कितेक। चाले बराति साऊ[3] अनेक ।।३८।।

श्री अरजन सिवका पर अरूढि। जिह जरी लागि दुति है अगूढि।
बिच मुकर[4] जरे मलहीन चारु। लटकंति जरी गुंफनि सु लारु[5] ।।३९।।

श्री हरिगुविंद पट पीत शोभ। चढि हैं कुदाइ कवि चित्त लोभ।
जनु संझ समै घन अलप होइ। बर बरहिं नचावति चलति सोइ ।।४०।।

इक दिशा बजति[6] बाजे उदार। इक दिशा गीत गन गाइं नारि।
छणकार रथनि उत अधिक होइ। इक दिशा कुदावति हयनि कोइ ।।४१।।

बड शबद चक्करनि भरी भीर। नर ब्रिंद कुलाहल अधिक भीर।
हुइ हयनि हिरेखा धुनि उठंति। शुतरंनि उपर सुथरी बजंति ।।४२।।

कुछ कही बात नहिं सुनिय जाइ। इम पणव पटह ढोलादि वाइ।
गुर पुरी छोटि उतसव बिसाल। जनु बिच न मेय बाहर उछालि ।।४३।।

गमने सु पंथ दिन रहति जाम। जुग कोस जाइ ठान्यो बिस्राम।
चलि प्रथम सिवर किय थोरि दूरि। उतरी बरात शोभंति रूर ।।४४।।

(रा० ४ : १०)

(बरात का ठकाऊ)

पाधड़ी

करि खान पान मिशटान आदि। नर भए सुपति परि साहिलाद।
उठिके प्रभाति सभि हरख धारि। पहिरे सु बिभूखन बसन चारु ।।३४।।

---

१. बाहक विद्या के जानने वाले—उस विद्या का प्रयोग करके। २. चलाते हैं। ३. सज्जन पुरुष। ४. शीशा। ५. पंक्ति। ६. बजते हैं।

वाहनि सजाइ निज निज बडेर। 'हुइ है ढुकाउ' मुख कहति टेरि।
सभि चढे बजति बाजे उदार। तुररी नफीर धौंसा धुंकार ॥३५॥

डफ, पणव, पटह, मुरली बजंति। बड शुतरनि परी सुथरी चलंति।
स्यंदनि धवाइ घोरनि कुदाइ। बहिलनि चलाइ घुंघरू बजाइ ॥३६॥

इम मच्यो कुलाहल धुनि बिलंद। गमनैं सु पंथ धरि धरि अनंद।
तबि गए सरब पहुंचे सु जाइ। अध कोस ग्राम डल्ला रहाइ ॥३७॥

तहिं उतर परे सभि जानु[1] छोर। सुधि गई तबहि डल्ले सु ओरि।
सुनि श्रुति नराइण दास सोइ। सभि करी त्यारि हित पठनि जोइ ॥३८॥

दुहिं दिशिनि मेल इस रीति कीनि। जनु घोखि घोखि घन मिलति पीन।
वाहनि भजाइ वाहन[2] उठाइ। मिलि आप मांहि आनंद उपाइ ॥४१॥

जनु नदी हरख की उमडि दोइ। हुइ संगम अंग उमंग जोइ।
गन वसतु अग्र गुरु के टिकाइ। सभि परे पाइं चित चाइ चाइ ॥४२॥

तबि चले ग्राम के समुख होइ। नर मिले हज़ारों दिसनि दोइ।
गन बजति बाज भई धूम धाम। बड उठी धूलि लिय छाद ग्राम ॥४६॥

धन को ब्रखाइ घन मनहुं चारु। बड भयो शोर इक बारि भारि।
चढि कै उतंग नर नारि हेरि। कहि बच 'बरात आई' बडेरि ॥४७॥

शुभ थान दीनि डेरो लगाइ। करि रंक त्रिपत, धन को ब्रखाइ।
तंबू शम्यान दीने सु तानि। बडि जै उतंग बहु शोभवान ॥४८॥

(रा० ४ : ११)

(बारात)

दोहरा

श्री अरजन के साथ तबि मिलनि हेतु हितु धारि।
त्यार नराइणदास भा गन वसतुनि संभारि ॥१॥

चौपई

जरे ज़ीन बाजी चपलावति। गरे विभूखन शोभा बढावति।
बसत्र रेशमी छादनि कीने। गहे लगाम न थिरता लीने ॥२॥

---

१. वाहन। २. भुजाएं।

ले बहु मोले ललित दुकूल। श्री सतिगुरु के हुइ अनुकूल।
ऊपर धरि करि गन दीनारू। ले करि संग नरनि परवारू ॥३॥

इम मिलिनी करि घरों सिधारा। श्री गुरु जनवासे पग धारा।
लावां लेनि समै तबि आयहु। धेनु धूलि पावनि दरसायहु ॥११॥

महिंद कुलाहल सभि महिं होवा। त्रिय गन चाहति दूलहु जोवा।
सुनि बादित की धुनि इक बारी। बिभ्रम भयो सभिनि मन नारी ॥१७॥

तजी कार घर की उठ धाई। छुद्र घंटिका ले गरि पाई।
अंजन अंज कपोलनि लायो। कंठहार कट सों लपटायो ॥१८॥

करति शीघ्रता चढी अटारी। खरी सु दूलहु बदन निहारी।
बादित धुनि बड छुटी हवाई। चढी गगन पुन हटि करि आई ॥१९॥

जनु तारे टूटति चमकंते। भयो प्रकाश अकाश दिखंते।
छुटति बरूद भरे गज़ घोरे। इत उत जरति बेग ते दौरे ॥२०॥

आइ नराइणदास अगारे। लेति प्रवेश्यो अंतरि द्वारे।
जहिं बेदी सुंदर रचि राखी। गन बंधुप थित देखनि कांखी ॥२६॥

बिप्र उचार करनि तबि लागे। पूजति नवग्रैह गणपति आगे।
बीच हुतासन कीनि प्रकाशनि। पावति सरपी करति उपासनि ॥२८॥

तबि दुलहन ढिग आनि बिठाई। जथा जोग सभि बिधि करवाई।
बरबर संग फेरि करि फेरे। पाणग्रहण कीनसि तिस बेरे ॥२९॥

मिलि सुरबधू करे छल बेसा। आनि प्रवेशी रूप सु बेसा।
रलि नारिनि मैं गीतिनि गावैं। सतिगुरु मंगल अधिक वधावैं ॥३०॥

साखोचार उचारनि कीनिसि। सुन्यो सभिनि पुनि धन गन दीनसि।
इम लावां ले करि जसु साजा। बीच बेदिका उठ्यो समाजा ॥३४॥

आइ थिरे जनवास मझारे। हित अहार गुरु बहुर हकारे।
सकल बराति जाति हरखंती। आतशबाजी ब्रिंद छुटंती ॥३६॥

गारि गेरि गीतनि को गावैं। सुंदर रीतनि सभिनि सुनावैं।
बैठि झरोखनि कहि कहि नामू। मिली मनोहर त्रिय अभिरामू ॥४०॥

सुनति मुदति गुरु सहत समाजा। समैं उछाह बिसाल बिराजा।
सुनि सुनि पिखि पिखि दुह दिश हरखहिं। मनहुं अनंद उनव करि बरखहिं।।४१।।
(रा० ४: १२)

(बारात का वापिस आना)

दोहरा

श्री हरिगोविंद चंद के ब्रिंद नागरी नारि।
बिच बरात ते ले गए करि जबि लीनि अहार।।१।।

सवैया

देखि सरूप विशेख ही दूलो आनंद ते बतरावति हैं।
दीरघ अंग, प्रलंब भुजा, अरबिंद बिलोचन भावति हैं।
केचित जानि गुरु सुत हैं गुरु हेरति सीस झुकावति हैं।
हास बिलास करैं मिलिकै इक प्रेम धरे बलि जावति हैं।।२।।

बासुर तीन रहे थिर कीनि गुरु सु प्रबीनि महां जसु छायो।
फेर नराइणदास कह्यो, सभि दाइज को निकसाइ धरायो।
बोलि पठे तबि हेत बिदा, सुनि बादित ब्रिंद बिसाल बजायो।
मंद ही मंद गए गुरु मंदर सुंदर साज समाज सुहायो।।६।।

तेवर जेवर हैं जिम जोति जवाहर की झमकावैं।
भूखन संग तुरंगम भूखति चंचल अंगनि ते चपलावैं।
बासन ब्रिंद बिसाल धरे जुति दासनि के कहि भाट सुनावै।
द्वै करि जोरि नराइणदास भनै बिनती गिनती न सुहावै।।७।।

और कछू न बन्यो मुझ ते इक दासी दई हित सेव तुमारी।
आप को नाम अनाथ को नाथ है राखि लई पति आनि हमारी।
दोनहु लोक सहाइ करो सु करोरनि की करते रखवारी।
मैं पकर्यो इक दामन आप को आयो शरंन लखे उपकारी।।८।।

श्री गुरु श्रोन सुनी बिनती भनि धीरज दीनि प्रबीन महां।
'साधु ही साध अहै' तुझ को बहु दीनिसि दीनि ही बाक कहां[1]।।१०।।

---

१. इतना कुछ देने पर भी फिर दीनता के वचन कह रहे हो।

श्री हरिगोविंद संग दमोदरी दाइज बीच धर्यो समुदाई।
पान ले पान मैं कीनि सभी बिधि,[1] डोरा मंगाइ लियो तिस थाईं।
दीनी बिठाइ सुता तिस मैं घर ते निकसे त्रिय बाहिर आई।
रोदति है गर संग लगावति मात मिलै बडि नेहु जनाई ॥१०॥

देरि लगै फिर फेर मिले हटि जाहु नराइणदास कह्यो।
होइ बिदा गमने जबिही बरखा धन को बहु दीन लह्यो।
श्री हरिगोविंदु दूलहु ते दुलही चलि आगे सु अश्रु बह्यो।
ऊपर को बरु डारति हैं बित दारिद रंकन ब्रिंद दह्यो ॥११॥

यौं मिलिकै बिछुरे दिसि दोइ गए निज धाम बडो मुद पाए।
ग्राम के लोक कहैं सभिही बहु ब्याह पिखे हमने बडि थाए।
हुयो न ऐसो अनंद बिलंद जथा इस मैं गन मंगल छाए।
श्री गुरु केर प्रताप बख्यात है ग्राम बिखै सगरे हरखाए ॥१६॥

ब्रिंद बरात लिये हरिगोविंद डेरे को अग्र करे मग चाले।
लंघि गए सुलतान पुरे को बादि बजावति जाति बिसाले।
भानु ढरे सलिता उलंघे सभि पार परे थिति गोइंदवाले।
केवट को धन दीनि महां हरखाइ रह्यो पिखि रूप क्रिपाले ॥१७॥......

दुंदभि दीरघ धौंस बजी सजि वाहन त्यारि भए सभि चाले।
केतिक स्यंदन जाति पलावति, केतिक बाजी[2] कुदाइ बिसाले।
केतिक बैलन की बहिलैं बहु दौरति हैं तन प्राक्रम वाले।
घुंघर की छनकार महां धुनि बादत की मिलि कै तिस नाले ॥२७॥

हास बिलास प्रकाशति हैं मिलि आपस महिं मन मोद उपाए।
मारग दूरि उलंघ गए नहिं जान पर्यो पुरि के नियराए[3]।
डोरे को आगे करे गमने हरि गोविंद दूलहु शोभ वधाए।
आइ सुधासर तीर गए तबि बादित की धुनि ऊच उठाए ॥२८॥

---

१. श्री हरिगोबिन्द तथा वधू दोनों का हाथ एक दूसरे से मिला कर दहेज के समय की सभी रीति सम्पन्न की। २. घोड़े। ३. निकट आए।

कवित्त

सुनी धुनि गंग, भई आनंद के संग,
उठी रिदे ते उमंग साज मंगल बिसाल को।
ब्रिंद कीनि अंगना[1] सु अंगनि[2] मैं अंग शुभ,
अंगनि[3] मैं मेवैं नहिं देखि मोद जाल[4] को।
दातू दारा, मोहन औ मोहरी की दारा संग,
और गिनौं कौन कौन मिली गन बाल को।
देति है वधाई लेति सौ गुनी चढाई सीस,
सभि उमहाई देखिबे को वधू लाल को ॥३०॥

डारैं धन वारि वारि श्री गुरू उदार चित,
मिले नर नारि मोद धारि पुरि बरे हैं।
सुजस पसारि करि जोरी गई द्वार निज,
गंग ने निहारि सुत रीति गन करे हैं।
सहत सनूखा लीनि जोखता[5] को पुंज संगि,
बंदना के हेतु हरि मंदिर को मुरे हैं।
त्याग असवारी लए मोदक को थार भरि,
सगरी पधारी गीत गाइ प्रीति धरे हैं ॥३१॥

देवकी मंनिद श्याम घन सतिभामा जुति,
मानो कुल बड़ो पूज जाति निज द्वारि है।
मंद मंद गमनति गए निज मंदिर को,
सुंदर फरश जहां आसन उदार है।
सहत सनूखा सुत हेरति हरख चित,
गंगा को अनंद किम करै को उचार है।
जथा जोग सगरी बिठाई सनमान करि,
हुती कुल रीति सभि कीनी निरधार है ॥३४॥

(रा० ४ : १४)

पिखिनि सनूखा मुख को लागी। रिदा अनंद भयो बडि भागी।
पाइ ओलि[6] महिं धन की थाती। अविलोकति भई सीतल छाती ॥२॥

---

१. स्त्रियां। २. आंगन। ३. अंगों में नहीं समाता। ४. आनन्द का समूह। ५. स्त्रियां।
६. झोली।

पुन उठि उठि करि सगरी दारा। जथा उचित झोरी धन डारा।
पिखति वधू को मुख हरखाई। करहिं सराहनि सुंदरताई ॥३॥
(रा० ४ : १५)

आखेट वर्णन

चौपई

पैंदा बिधीआ आदि जि सूर। त्यारिं तुरत लखि चढे हजूर।
हय को हेरि जु होयहु त्यार। सतिगुर भए तुरत असवार ॥१५॥

संग सुभट इक सौ चढि चाले। आगे करि सिख गमने नाले।
जहिं देख्यो सो थान दिखावा। जाइ प्रवेशे बन के थावा ॥१६॥

कानन गाढो बहुत बिलोका। जहां गमन हय को मग रोका।
तिह सिख ने सो थान बतायो। केहरि तहां नदर नहिं आयो ॥१७॥

गुरु लागे तहिं करनि अखेरे। सूकर ससे म्रिगनि घनेरे।
सभि सों कह्यो खोजीयहि शेर। इति उति फिरि करि लीजहि हेरि ॥१८॥

आमिख खाइ त्रिपति हुइ पर्यो। नहिं गमन्यो कित उदर जि भर्यो।
सुपति होहि किस झारि मझार। करहु तुफंगनि को कडकार ॥१९॥

इति उति ते गन तुपक चलाई। जाग्यो शेर लीनि अंगुराई।
महां केहरी भीखन भारा। बडी बेल लांगुल बड धारा ॥२०॥

मुख पसार करि तबि जंभायो। गरज्यो भूर सभिनि सुनि पायो।
बिखम सथान झार के तरे। तहां बिलोक्यो भट सुधि करे ॥२१॥

सुनि गुरु बली तहां चलि गए। केहरि भीखन देखति भए।
बिखम थान सो खर्यो निहार्यो। हय ते उतरनि रिदै बिचार्यो ॥२२॥

नहीं तुफंग संग इस मारैं। खडग सिपर गहि समुख संहारैं।
नहीं तुरंग चलावनि थान। कंटक जुति तरु खरे महान ॥२३॥

दीरघ दाडैं दारुन तुंड। पग के नख तीखे सु प्रचंड।
भीखन सटा उठाए तौर। देति त्रास जनु भख्यति दौरि ॥२४॥

बडे पखारि गात पर परे। मानहु गिर पर अहि समसरे[1]।
श्रोणित रंगी आंख मनो हैं। उदर बिसद जिह म्रिदुल घनो है ॥२५॥

---

१. सिंह के शरीर पर ऐसी धारियां पड़ी हुई हैं मानो पर्वत पर सर्प पड़े हों।

गुरु उतरि आगै हुइ खरे। सिपर बाम कर दिढि तबि धरे।
ललकार्यो गीदी क्यों खर्यो। कहि इम पाइ रोपिबो कर्यो ।।२६।।

सुनति निकटि पिखि बडि भभकार्यो। खरे जु भट हय गन डर धार्यो।
भाजे आपि आपि को गए। मुत्र पुरीखि[1] तजति को भए ।।२७।।

एकहि बारि फांधि करि आयो। तुंड प्रचंड पसारति धायो।
दूरि दूर थिरि पिखहिं तमाशा। केचित बाजि होति हैं पासा ।।२८।।

निज बल अखिल करे मुख बाए[2]। चरन सनख जुग उरध उठाए।
ऊपरि पर्यो आनि करि ऐसे। तरै दबाइ उठहि नहिं जैसे ।।२९।।

सिर उपरि जबि आवनि लागा। आड सिपर को रोकसि आगा।
रह्यो ओज करि, अग्र न आवा। ढाल झंझोरनि बदन चलावा ।।३०।।

तिह छिन गुरु शमशेर निकासी। तीखन भीखन चलि चपला सी।
रुप्यो पाइ दिढ थंभ समाना। नहीं थान ते चले सुजाना ।।३१।।

कोप गुरू के मुख पर छायो। भ्रिकुटी नचति लाल हुइ आयो।
फरकति अपर अरुन द्रिग भए। सिपर धकेला पूरब दए ।।३२।।

जुग पग मुख ढाले पर तीनि[3]। हटि पीछे तन ऊचो कीनि।
दाहन कर को बल करि सारा। खडग पुलादी गुरू प्रहारा ।।३३।।

कट ते कटि करि दोधर पर्यो। कराचोल[4] धरनी महिं बर्यो।
गेरि शेर शमशेर[5] निकारी। रिस ते बहु बल संग प्रहारी ।।३४।।

पिखि सिक्खनि मन मानि अचंभा। कट्यो विटप जिम काटिय रंभा[6]।
गुर कर ते मरि सुरग पधारा। हय पर आप भए असुवारा ।।३५।।
(रा० ६ : २३)

(पटना नगर का वर्णन)

सवैया

पटना पुरि बास बिसाल बसै, सभि भांति बिलासति हैं नर नारी।
धनवान महान अनेक ही मानव, कंचन भूखन हीरनि धारी।

---

१. टट्टी। २. मुंह खोल कर। ३. तीनों। ४. खडग। ५. खडग। ६. केला।

मुकता गन हार सु कुंडल चारु, उदार बडे भुज अंगद वारी।
तन अंबर रीति अनेकनि के, जिम अंबर मैं उडहैं दुति भारी ।।२३।।

वाहन हैं, गज, पालकी, सुंदर मंदर अंदर बाहर सेता।
धाम धुजा अभिराम बनी, जनु पंख लगाइ चहैं उड जेता।
पौर बड़े जुग कौर सजे, सभि ठौर सजैं धुनि आनंद देता।
देख्यो सु जाइ किते दिन मैं, बड दूर लगौं बसिओ पुरि एता ।।२४।।

बाग बिसाल खरे फल लागि, दिवार बने बहु रंगनि के।
ताल, तमाल, उदालक[1] दाडम श्रीफल शोभति रंगन के।
जामन के कदलीन के बगीचनि सींचति नीर अपंकन[2] के।
बेल तंबूलन की अमरूद सु पात अनेक ही ढंगनि के ।।२५।।

बारी फिरै बर बूटन मैं सबज़ी सबि जी हरखंति निहारी।
हारी धनेसर की नलनी छबि यौ नलनी बिकसै सुखकारी।
कारी सु कोकलका कुहकावति, मोरनि शोर सु भौर गुंजारी।
जारी बसंत जहां बहु होवति यौं चहुं ओर खिरी फुलवारी ।।२६।।

दोहरा

नदी बहत्तर जहिं मिलि बही सरब इक थाइं।
जल की लीला अनिक बिधि करहिं नारि नर चाइ ।।२७।।

महां नगर बरनो कहां तिह को सरब समाज।
तेग बहादुर गुर तहां टिके गरीब निवाज ।।२८।।
(रा० ११ : ५८)

(गुरु जी की सभा का वर्णन)

चौपई

लग्यो दिवान बिराजहिं बीच। दरसहिं मिले ऊच अरु नीच।
को टेकति है माथ अगारी। को बिनती कर जोरि उचारी ।।२९।।

को बैठे सिमरहि सतिनामू। गाइं रबाबी धुनि अभिरामू।
को इक चित ह्वै शबद सुनति है। को मन बिखै बिचार गुनति है ।।३०।।

१. नसूड़ा। २. कीच रहित

जथा शंभु मुनि गन के मांही। पावन सभा शुभति है तांही।
पिखि प्रताप नहिं रिदै सहारा। भयो क्रोध ते छोभति भारा ।।३१।।
(रा० १ : ३४)

(गुरु हरिगोविन्द का पौरुष-पूर्ण चरित्र)

सुंदर चमर ढुरावति पाछे। गह्यो हाथ भाने कहु आछे।
मंद मंद मुसकावति आए। कमल बिलोचन को बिकसाए ।।२२।।

सवा गिलशत सभिनि ते ऊंचे। बोलति दिपति दसन दुति सूचे।
भुजदंडनि जनु सुंड प्रचंडे। जिन ते खंड खंड रिपु दंडे ।।२३।।

मुकता माल बिसाल सुहाई। बीच बैडूरज बहु छबि पाई।
आयुध बिना आइ थिर भए। चहुं दिशि ते नंम्री थिर थिए ।।२४।।
(रा० ८ : ५२)

होली वर्णन

(श्री हरिगोविंद का होली खेलना)

चौपई

इत्यादिक बहु आपस मांही। सिक्ख मसंद कहैं धिक तांही।
इम दिन दोनहु बहुर बिताए। खेलति होरी मिलि दुलसाए ।।१७।।

गावैं शबद मोद चहुं कोद। बरसति रंग गुलाल पयोद।
फाग द्योस को कीनसि त्यारी। निकसन कीनि वहिर गुर भारी ।।१८।।

पोशिश बिसद महिद बपु पाई। निकसे चाचर हेतु गुसाईं।
कंचन दंड धरे जिन हाथ। दिस दाएं आगे कुछ नाथ ।।२१।।

सुनि सुनि सुधि सिख ब्रिंद मसंद। आए धरे अकोर बिलंद।
अनिक संगतां देशनि देश। बहु मोलि ले वसतु अशेश ।।२५।।

अरन बरण अरु पीत बिसाले। केतिक पिचकारी जुति चाले।
अलता ब्रिंद गुलाल अंबीर। ले करि पहुंचति भे सिख तीर ।।२६।।

प्रथमै चरन सरोजन बंदहिं। आगे धरहिं अकोर बिलंदहिं।
उडति गुलाल घटा जनु होई। रंग, बूंद बरखति है सोई ॥२७॥

जनु संध्या मिलिबे कहु आई। हरि गोबिंद मुख चंद सुहाई।
मिल्यो गुलाब गुलाल उडंता। खेलति होरी श्री जंग कंता ॥२८॥

छुटति अंबरीन मूठ बडेरी। दुहिं दिशि ह्वै करि हेलो गेरी।
होली खेल छुटति पिचकारी। भरि भरि मूठ सामुहे डारी ॥२९॥

ब्रिंद मसंद संगता संग। खेलति फाग डारि बहु रंग।
देखति सभि मन मुदति बिसाला। पर्यो बदन पर जम्यो गुलाला ॥३०॥

सभि के बरण लाल हुइ गए। चित्रति बसत्र बचित्रति भए।
इम सतिगुर बहु करे बिलासा। सिक्ख मसंद मिले गन दासा ॥३१॥

रिदे मुदिति सभि के हुइ रहे। कुशल प्रशन सभिहिनि सों कहे।
ब्रिंद मसंद जि सिख परधाने। कर जोरति निज श्रेय बखाने ॥३२॥

महां दिवान लग्यो दुति पावति। शबद रबाबी सुंदर गावति।
गुर सिक्खन को मेल सुहेला। दुहि लोकन को जहिं मुद मेला ॥३३॥

(रा० ८ : ५२)

(गुरु गोविन्दसिंह का होली खेलना)

दोहरा

गई सीत रुत जगत ते आयो फागन मास।
होति हरख नारी नरनि करते हास बिलास ॥१॥

सवैया

देखि अजाइब को रुत फागन साहिब आइसु आप उचारी।
कोशप[1] को बुलवाइ हदूर कह्यो सभि कीजए फाग की त्यारी।
और कह्यो सभि सिक्खन संग जथा शकती करि सौजनि सारी[2]।
लाल गुलाल बिसाल अंबीरनि, रंग निकार अनेक प्रकारी ॥२॥

रंग पतंग सुरंग कियो बहु, किंसक फूलनि पीत निकारा।
डारि महां खुशबोइ[3] मझार, परै जबि चीर, उठै महिकारा।

१. कोषाध्यक्ष। २. सारी सामग्री। ३. सुगंधित पदार्थ।

सिक्ख्यनि कीनि महां धन दे करि आपने आपने थान सुधारा ।
आप गुरू अबिके अनुरागति खेलहिंगे सुभ फाग उदारा ।।३।।

ताल, रबाब, पखावज के बहु बादति बाजति हैं धुनि भारी ।
गावति रागनि रागनी को जन आइ खरे निज मूरत धारी ।
ज्यों सुरलोक बिखै सुर मोदति आपस मैं मिलि कै हितकारी ।
त्यों सिख संगति पंकति को करि, हेरि गुरु हरखैं उर भारी ।।५।।

बाजति हैं सिघ पौर के ठौरनि नौबत औन अनंद उपावैं ।
झंडे उचेरे खरे बहु झूलति, धौंसे धुंकारति नाद उठावैं ।
होति उछाह जहाँ कहिं डोलति बोलति हैं जै कार सुनावैं ।
मेल सकेल भयो रंग मेलति भीर धकेलति पेलति जावैं ।।६।।

फेटन को भरिकै सभि आप अबीर गुलाल को डारति हैं।
हाथनि मैं पिचकारी भरे बहु ऊपर गेर न्हलावति[1] हैं।
पीत भए बहु अंबर लाल बिसाल सु बेग ते चालति हैं।
एक निहारति[2] है इक भालति[3] एक संभाल उतालति हैं ।।७।।

कवित्त

श्री गुबिंदसिंह करि होरी को बिलंद,
साज हाथ पिचकारी सभिहूंन भरि लीनिओ ।
भले भले सिख आइ धारति भगति भाइ,
प्रिथम गुरू के पाइ बंदना को कीनिओ ।
उड्यो एक बार ही गुलाल लाल घटा मानो,
रंगनि की बूंद बरखति इम चीनिओ ।
रंग दारु अंबर कै रंगदार अंबर कै,
मूठ भरि भारैं, रंग डारति नवीनिओ ।।८।।

सवैया

ब्रिंदु गुलाल अंबीर उडै, गहि केसर की गिरवैं पिचकारी ।
संगति श्री गुर पै अलता कर को भरि डारति पूरब वारी ।
आपस मैं पुन गेरति हैं पट लाल भए सभि के इकसारी ।
धन्न गुरू सिख कीनि निहाल, क्रिपाल बिसाल, सुनाइ उचारी ।।९।।

---

१. मानो स्नान करवा देते हैं। २. देखते हैं। ३. खोजते हैं। ४. धक्के देते हुए।

कबित्त

बादर गुलाल के करति जाति चले गुर,
संगति मैं धूंम पई फाग बड़े खेलते।
घेरि घेरि बदन पै गेरि गेरि फेर फेर,
हेरि हेरि हरखति नेरे हुई मेलते।
उठै महिकार गंध पाई पौन मंद मंद,
सीतल बहित सिख अंगन मैं झेलते।
निकसे अानंदपुर मानति अनंद ब्रिंद,
तीर सतुद्रव के गए हैं रेल पेलते ।।१०।।

कीने सिख संगति दुपास खरे आपस मैं,
डारि डारि मूठ पिचकारी सों भिरति हैं।
बदन शमश अरु केसनि पै गयो जम,
रंग की फुहार फेर ऊपर ढरति हैं।
होति न चिनारी, इक सारी सभि होइ गए,
रौर को मचावैं दौर, ठौर न टरति हैं।
बिसद बरन के बसन सो अरंन[1] भए,
मानो जंग जीत कै बिलासनि करति हैं ।।११।।

सवैया

श्री कलगीधर संगति मैं सुर ब्रिंद ज्यों इंद्र बिराजति हैं।
जादव मैं जिम श्री घनश्याम महान ही कौतक साजति हैं।
कै रघुबीर नरेशनि मैं मिलि मोद महां उपराजति हैं।
कै भगति सुर संपदा के जुति श्री ब्रह्म ग्यान सों छाजति हैं ।।१२।।

कवित्त

नेरे भए नंदलाल लाल ले गुलाल तबि,
भाल पै क्रिपाल ने बिसाल मेल दीनियो।
एक संग रंगु भए, सभि के सुरंग अंग,
अंबर धरे जु निचुरति अति चीनिओ।

---

१. श्वेत कपड़े लाल हो गए हैं।

अवनो अकाश लालमई सभि भासु रही,
मानो अनुराग निज रूप धरि लीनिओ।
संगति के बीच निज क्रिपा जल सींचि सींचि,
सिक्खी फुलवारी मैं बिलास बडो कीनिओ ।।१४।।

चौपई

हटि पुरि आइ सभा सभि थिरी। सतिगुर द्रिशटि सकल पर करी।
इतने महिं सुथरा चलि आयो। नख सिख कारस देह लगायो ।।१८।।

होति देग तहिं कारसु लई। इक सम कारी कायां कई।
बहु सुरमां मुख सिर पर लायो। आइ भिआनक भेख दिखायो ।।१९।।

श्री सतिगुर सभि संगति हेरि। फिर्यो चुगिरदे इक दुइ फेर[1]।
श्री कलगीधर देखि हसे हैं। बिदति दसन भे बिसद लसे हैं ।।२०।।

बिकसति अपने निकट बुलायो। बूझ्यो बेख कहां करि आयो।
हाथ जोरि अरदास बखानो। सतिगुर संगति शुभति महानी ।।२१।।

जिह सम जग महिं अपर न कोई। दिपति महां दुति के जुति होई।
डीठ पहारीअनि की है बुरी। जिस लगि जाइ मनहुं खर छुरी ।।२२।।

यांते मैं बिचार करि आयो। नख शिख कारो बेख बनायो।
तिन की नज़र लगहि अबि नाहीं। कारो बदन होइ तिन जाहीं ।।२३।।

सुनि करि हसे क्रिपा ते जोवा। मम संगति को रख्यक होवा।
अधिक खुशी सुथरे पर करी। इह मम सिक्ख्य भली उरधरी ।।२७।।
(रि० ३ : २७)

---

१. चारों ओर चक्कर लगाना।

कुछ सूक्तियां

बडिअनि की रिस अगनी समसर बिनै नीर ते होवति शांति।
अवर उपाव नहीं कुछ बनिहै करहिं जि बल छल ध्रित पर जाति।
(रा० १ : ३२ : २२)

गुन बिहान पूजा कहां, बिद्या बिन माना।
जीत कहां बिन सूरता मन थित बिन ध्याना।
बिन संतोख उर सुख कहां, तप बिनां न राजू।
ग्यान कहां बिन सतिगुरू शोभा बिन लाजू।
बिन जहाज तरिबो कहां सागर असगाहू।
भगति कहां बिन प्रेम के पग पंकज माहू।
कविता बिन कीरति कहां, जसु बिना न दाना।
मुकति कहां बिन प्रभू के सुर बिना न गाना॥६॥
(रा० ३ : ३८)

गुण महिं बडो बडो सो जानो लघु गुण महिं तिह लघु ही हेरी।
गज दीरघ लघु शेर हेरीयति, म्रिगपति नाम अधिक गुण जानि।
(रा० ३ : २७)

एक ग्राम हित देश दुखावै। तउ तिह त्यागनि ही बनि आवै।
इक कुल हेत ग्राम दुख पाइ। तौ तिस कुल को त्याग कराइ॥५॥
इक के त्यागे कुल बच रहै। करहि तजनि यौं बुधिजन कहैं।
(रा० १ : २२)

दाव घाव जे जानहि नांही। तिन की फतह न ह्वै रण मांही।
रिपु को बल दल दुरग सु कोश। सखा सहाइक जाहिं भरोस ।।३७।।

लखिबे उचित अहैं इह सारे। बहुर आपने हेरि बिचारे।
अधिक शत्रु महिं जानहिं जोइ। तिह को जतन करहि बुधि सोइ ।।३८।।
(रा० ६ : १५)

सुनि गुर उचर्यो जबि जुग फूटैं। तिसको शत्रु तुरत ही कूटैं।
घर लगि जानि न देहिं सुजान। पहुंचहिं तुरत करहिं तिस हान ।।६।।
(रा० ८ : १७)

शसत्र घाव मिलिकै मिटि जाहि। बचन घाव करकति उर माहिं।
(रा० १० : १० : ३४)

जिस महिं संसा सदा निहरीए। बिना बिचारे तिस परहरीए।
नाहिं त पशचाताप करंता। घात पाइ करि दाव चुकंता ।।४८।।
(रा० ११ : ११)

भीर परै रख्यक बनैं भ्राता सुत कै मीत।
तिम दाता दुरभिच्छ महिं तीनहुं लें जसु नीत ।।३१।।

भ्रातनि पर उपकार जो जिम धन संच्यो होति।
परै भीर दारिद जबै सभि संकट को खोति ।।३२।।
(रा० ८ : ११ : ३)

द्वै न्रिप हुइं इक देश महिं क्यों मचहि न रौरा।
परै अंधेरा जगत महिं रबि ससि इक ठौरा।
कानन महिं इक केहरी सुनि कानन नादा।
करहि निकासनि दूसरो सहि सकै न बादा ।।८।।

द्वै पति होइं न भारजा तिम अविनी राजा।
जे मिल जाहिं कदाचिति बिगरहि सभि काजा ।।६।।
(रि० १ : ३८)

* * *

ग्रंथ की समाप्ति

चौपई

दसहुं गुरनि की करुना पाई। दसहूं गुरनि की कथा बनाई।
पुनपुन धर पर धरि धरि सिर को। बंदन करौं प्रेम करि उर को ॥१६॥

श्री गुर की गाथा शुभ गंगा। छंद उमंग उतंग तरंगा।
करामात बरनन जहिं कहां। इहु गंभीरता धारति महां ॥२२॥

रामकुइर गिरवर ते निकसी। सिक्खन बिखे जगत महिं बिगसी।
जोग बिराग भगति अरु ग्यान। बसहिं चार जल जंतु महान ॥२३॥

जप तप संजम दान शनान। धीरज दया छिमा निरमान।
सति संतोख आदि गुन जेते। लघु जलजंतु वास करि तेते ॥२४॥

दस गुर दसहुं घाट को पाइ। पावन भए लोक समुदाइ।
जनम मरन ते आदि कलेशू। इह बड पातक हते अशेशू ॥२५॥

गुर सिख जोगी मुनि रिखि भारी। गुर महिंमा गंगा तिन प्यारी।
पठन सुननि शुभ अरथ विचारन। पान शनान हरख करि धारन ॥२६॥

* * *

दोहरा

शून शून ग्रैह आतमा संमत आदि पछान।
मधूमास शत्रूनि करि भा उतपात महान ॥३५॥

परी लूट कपिथल विखै, मिले चोर बटपार।
आप आप को भज चले तजि पुरि सभि इक बार ॥३६॥

सिंह फिरंगी गहि लए कैद करे वथु छीनि।
संतनि के असथान भी लूटि कूटि भै दीनि ॥३७॥

अस अपदा के दिननि महिं सतिगुर भए सहाइ।
भयो न बंको बार भी दै दै हाथ बचाइ ॥३८॥

चहुं दिश अपन बिरान नर दुशमन भे तिस काल।
मम रच्छा सतिगुर करी सभ महिं बिदत हवाल ॥३९॥

सावन महिं इस ग्रंथ की भई समापति आइ ।
बिघन ब्रिंद ते बच रहे श्री करतार सहाइ ।।४०।।

दास जान करि आपनो जुग लोकनि सुख दैन ।
राखे दे करि हाथ गुर भई कुशल सभि चैन ।।४१।।

(ऐ० २ : ३६)

इति "गुरु प्रताप सूरज ग्रंथावली समापत होई" । इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रिंथ उत्तर ऐने ग्रंथ समापती बरननं कवि संतोखसिंह ब्रिचतायां भाषायां नाम खशट त्रिसती अंसू ।३६। इति ।।

"गुरु प्रताप सूरज ग्रंथावली समापत होई" ।

——: o :——